प्रकाशक —

प्रो. कण्ठमणि शास्त्री

सचालक —

विद्या-विभाग, कांकरोली
[राजस्थान]

यह पुस्तक पृष्ठ १ से १२८ तक (केवल मूल पद-सग्रह) बड़ौदा, रावपुरा-
' अशोक प्रिन्टरी ' में सेठ श्री रमणलाल नानालाल शाह ने छापी और
अन्य सर्व शेष भाग बड़ौदा-शियाबाग, श्रीकबीर प्रेस में
पं. श्री. मोतीदासजी चेतनदासजी ने छापा।

प्रथम संस्करण १०००] ता. १५, फरवरी १९५४ — सं. २०१० — [मूल्य— ३-०-०

मुद्रक —

केवल पद-संग्रह :
' अशोक प्रिंटरी ' रावपुरा, बड़ौदा.
भावार्थ और शेष भाग
' श्रीकबीर प्रेस ' शियाबाग, बड़ौदा.

❀ श्रीद्वारकेशो जयति ❀

सम्पादकीय

❀

पूर्वप्रसंग—

प्राय: २० वर्ष पूर्व का प्रसंग है—'काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा 'सूरसागर' का प्रकाशन प्रारंभ किया गया था। इस महान् ग्रन्थ के पाठ-सम्वादार्थ प्रामाणिक, प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों की प्राप्ति का प्रयत्न किया जा रहा था।

कांकरोली 'विद्याविभाग' की स्थापना हुए थोड़ा ही समय व्यतीत हुआ था। उसके विशाल हस्तलिखित संग्रहालय—अस्तव्यस्त उत्ताल तरंगाकुल महासमुद्र—के किस निभृत कोण में किस परिवेष्टन, परिस्थिति में कौनसा ग्रन्थ छिपा पड़ा था, सर्वथा अपरिज्ञात था।

साहित्य-गगन के जैवातृक, सकलकलागुणनिधि, ख्यातनामा विद्वान् तृतीय पीठाधीश गो. श्रीबालकृष्णलालजी महाराज के नित्यलीलास्थ होजाने से साहित्य-जगत् की एक विशेष चहल पहल-जो श्रीरत्नाकरजी, नवनीतजी चतुर्वेद, पं. अंबिकाप्रसाद वाजपेयी और बाबू रामकृष्णवर्मा आदि के आयोजनों से परिचालित होरही थी-सहसा ठप्प-सी होगई थी।

कांकरोली के वर्तमान पीठाधीश्वर की स्वल्प वयस्कता के उप:काल से ही यावदार्य-कुलकमल-दिवाकर महाराणा उदयपुराधीश श्रीफतहसिंहजी का ललाटंतप शासन चल रहा था। साहित्योपवन का सुहावन सावन आने के लिये समय की बाट जोह रहा था।

किन्हीं पुण्यों के प्रताप से उक्त संग्रहालय की व्यवस्था के दो युगंधर नियत किये गये, एक इन पंक्तियों का लेखक, दूसरे उसके सहयोगी मित्र धाफा (सौराष्ट्र) निवासी पं. श्रीजटाशंकर कहानजी शास्त्री। अध्यापन के अतिरिक्त समय ग्रन्थों की सुव्यवस्था का कार्य चल ही रहा था, सहसा राजकीय शासन-परम्परा की सीढ़ियों में ४-५ मास से उतरता चढ़ता 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' का एक पत्र कांकरोली पहुंचा। 'सूरसागर' की हस्तलिखित प्राचीन प्रति भेजने का अनुरोध था।

'बिल्ली के भाग्य से छींका टूटा'। संस्थाओं से परिचयाभिवृद्धि की अभिलाषा ने सीधा पत्राचार चालू कर दिया। निश्चित हुआ कि-सचालक 'विद्याविभाग' स्वयं 'सूरसागर' की प्रतियां लेकर 'सभा' में उपस्थित हो जायगा।

अ. भा ब्रा. महासम्मेलन (प्र अधिवेशन) के अवसर पर उक्त ग्रन्थ की ६–७ प्रतियां कष्ट और लगन के साथ निकालकर काशी ले जाई गई। 'सभा' के कार्यालय में 'नमोनमस्ते' के बाद श्रीरत्नाकरजी से परिचय हुआ। स्वर्गीय महाराजश्री की गुणग्राहकता, और वर्तमान व्यवस्था के प्रसंगोपरान्त 'सूरसागर' के सम्पादन की बात चली। साथ में लाई हुई सूरसागर की पोथिया करकमलों में समर्पित की गईं। उलटा-सुलटा कर ध्यानपूर्वक उनका निरीक्षण होने लगा।

पर हैं? यह क्या? आग्रह-भरा पत्र लिखकर, सानुरोध सुरक्षा का वचन देकर, आयाचित 'सूरसागर' की इतनी प्रतियों को देखकर भी श्रद्धेय चतुर्वेदीजी के गौरवभरे मुखमण्डल में कुछ भी अन्तर की रेखा नहीं झलकी! आयत सघन भ्रुकुटियों की जिम्हता बढ़ती ही गई!! ब्रज-भाषा के सरस कवि की स्मित माधुरी आभासित नहीं हुई!!। वे मुझे और मैं उन्हें २ मिनिट तक निर्निमेष देखते रहे।

अन्ततो गत्वा सहसा मेरे कानों में शब्द पड़े—"पंडितजी? आप मुझे धोखा न दीजिये। ग्रन्थ न देना चाहें न दें? पर इस प्रकार बरगलाने की कोशिश न करें, यह वह प्रति नहीं है-जिसकी हमें आवश्यकता है।"

विदित हुआ कि—"यह सब प्रतियां केवल दशमस्कन्ध की हैं। एक हाथ लम्बी, पौन हाथ चौडी, बारह स्कन्धों वाली प्रति जो-मैंने (रत्नाकरजीने) स्वय कांकरोली में स्वर्गीय महाराजश्री के समक्ष देखी थी, इनमें नहीं है।"

'प्रथमग्रासे मक्षिकापातः'। अस्तु दिष्टम्।

दिव्यवेशधारी, मूर्तिमान् शास्त्र-स्वरूप, प्रकाण्ड पण्डितों के सम्मेलन द्वारा तात्कालिक मार्ग दर्शन पाकर, दुरितहारिणी जान्हवी के अभिषेक से कृतार्थ होकर भी घर आकर रायसागर के तटपर (काकरोली में) 'सूरसागर' का अन्वेषण करने लगा। आरोपित साहित्यिक प्रवञ्चना की कालिमा एक डेढ़ वर्ष तक न धुलसकी, न धुलसकी। क्या किया जाता?

सहसा एक दिन सम्बाद मिला कि–महाराजश्री (वर्तमान पीठाधीश गो. श्रीव्रजभूषणलालजी जो अष्टछाप–साहित्य के विशेषज्ञ और प्रधान संपादक हैं) ने गुजरात की अपनी यात्रा में सखेडा ग्राम में 'सूरसागर' की वही प्रति प्राप्त करली है। यह प्रति एक तथाकथित वैष्णव के पिता के समय–जो कांकरोली में मंदिर के कार्यवाहक थे–कांकरोली से सरक गई थी–दर्शनीय रूप में विराजमान होकर अपने दिन गिन रही थी।

मानसिक अनुतापपूर्ण साधना और अन्वेषण के फलस्वरूप खोई हुई निधि प्राप्त हुई और वास्तव में प्राप्त हुई। श्रीरत्नाकरजी प्राप्तव्य ग्रन्थरत्न पाकर प्रशान्त बन गये। 'विद्याविभाग' को सौजन्यपूर्ण धन्यवाद का पत्र प्राप्त हुआ–और हिन्दीजगत को 'सूरसागर'। सम्पादन में उक्त प्रति का अच्छा सदुपयोग हुआ। हम लोगों का श्रम सफल हो गया अब मनोरथ के पंख ऊगने लगे।

आयोजन—

उसी समय से अष्टछाप की दिव्य वाणी के संकलन, संपादन और प्रकाशन का उत्साह जागरूक हुआ। अध्यवसाय ने करवट बदली। संग्रहालय की व्यवस्था के अनन्तर यावत्प्राप्य पोथीयों से अष्टछापी कवियों के पदों की सूचियां बनाई गई–और पदों का सम्पादन कर क्रमश प्रकाशन की व्यवस्था चालू की गई।

विद्याविभाग के अन्तर्गत 'शुद्धाद्वैत एकेडमी (अष्टछाप–स्मारक समिति) के सम्पादक–मण्डल ने सूरसागर के अनन्तर (जो काशी ना. प्र. सभासे प्रकाशित होनेवाला था)परमानन्ददास कृत 'परमानन्दसागर' को सभा के अर्धशताब्दी महोत्सव (सन् १९५०) के उपलक्ष में प्रकाशित करनेका संकल्प किया–उसका सुव्यवस्थित प्रामाणिक सम्पादन भी किया, पर व्यय–बाहुल्य के कारण (द्वि. महायुद्ध के समय) उसका मुद्रण प्रारभ न किया जा सका। उक्त ग्रन्थ आज भी सम्पादित होकर प्रकाशन की ओर उन्मुख हो रहा है।

सामयिक विषम परिस्थितियों के द्वारा विद्याविभाग के ग्रन्थ–प्रकाशन में पड़ी हुई एक लम्बी यवनिका को देखकर सम्पादकों ने अष्टछाप के छोटे संग्रहों के प्रकाशन को प्राथमिकता दी, जिसके फलस्वरूप गतवर्ष गोविन्दस्वामी के पदों का संग्रह 'गोविन्दस्वामी' के नामसे प्रकाशित किया गया। और अब उसके अनन्तर 'कुंभनदास' के यावत्प्राप्य पदों का संग्रह प्रस्तुत ग्रन्थ रूप में साहित्य–जगत के सम्मुख रखा जारहा है।

आदर्श प्रतियाँ—

कुंभनदास के पद–सम्पादनार्थ कांकरोली के सरस्वती–भंडार में ही इतनी सामग्री मिल गई है, जिससे अन्यत्र की प्रतियों की अपेक्षा ही नहीं हुई। 'कुंभनदास जैसे महानुभावी, मानसीसेवा–परायण भक्तकवि की पद–रचना का इतना विस्तृत आधिक्य भी तो नहीं हैं जो–हमें इस दिशा में अधिक प्रोत्साहित करता। फलत. प्रस्तुत सम्पादन में जिन आदर्श प्रतियों का उपयोग किया गया, उनका परिचय इस प्रकार है।

(१) 'क' प्रति–यह प्रति स भ. के हिन्दी–विभाग में बंध सं. १९/७ पर विद्यमान है। इसमें पत्र १ से ८७ तक पत्रों मे कुंभनदास कृत पद हैं, और बाद में पत्र ८७ से १२२ तक नन्ददास कृत, पत्र १२२ से २२५ तक अन्यके पद संग्रहीत है। इसमें 'जन्मोत्सव के पदों' से प्रारभ होकर 'रथयात्रा' तक पद लिखे गये हैं जिनके बीचमें प्राय: सभी विषयों के पदोंका समावेश हो गया हैं। यहाँ श्लोक सं ७२५ का निर्देश कर पीछे से 'मेरी अँखियनि यह टेव परी' यह पद और लिख दिया गया है। ग्रन्थान्त में–"कुंभनदासजी के पद जेते भाले तेते लखे हैं। श्री श्री" ऐसी पुष्पिका दी गई है। इसके लेखनकाल के सम्बन्ध में—"सवत् १८२९ ना वर्षे फाल्गुन मासे कृष्ण पक्षे षष्ठया रवौ गुर्जरे मेदपाट ज्ञातीय मयारामेण लिखितमिद पुस्तकम्" ऐसा उल्लेख है। पुस्तक का आकार ४" × ५" गुटकारूप में है, काली स्याही में सुवाच्य और शुद्धरूप में लेखन धाराबाहिक रूप से है। कहीं कहीं असावधानीवश एकाध पंक्ति या शब्द छूट गया हैं। इसमें सग्रहीत पदों की एकत्र संख्या १९० है। पदों के प्रारंभ में रागों के नाम दिये गये हैं। 'वर्षोत्सव' या 'नित्यलीला' के पदों का कोई विभाग नहीं है।

इसमें निम्न लिखित विषयों का समावेश है .—

सं	नाम	पद	सं	नाम	पद
१	मंगलाचरण	१	७	श्रीस्वामिनीजीको स्वरूप वर्णन	११
२	भक्तनि के आसक्ति के वचन	२५	८	सखीके वचन श्रीस्वामिनीजू प्रति सुरतांत	१४
३	आसक्ति को वर्णन	९	९	सखिवा के वचन साक्षात् भक्तनि के श्रीप्रभुजू सों	८
४	आसक्ति अवस्था	१	१०	मानापनोदन	२१
५	दान प्रसंग	४			
६	साक्षात्प्रभुजी को स्वरूप वर्णन	८			

सं	नाम	पद	सं	नाम	पद
११	विरह-समय	२५	२१	रास-समय	९
१२	युगल स्वरूप को सौंदर्य वर्णन	२	२२	उराहने के वचन भक्तनि के श्रीयशोदाजू सों	१
१३	प्रभु के आसक्ति वचन भक्तनि सों	१	२३	अन्नकूट-समय	४
१४	गो-दोहन समय	३	२४	प्रभु को बनतें आगमन	४
१५	साक्षात् भक्तनि के वचन प्रभु सों	१	२५	साक्षात् भक्तनि की प्रार्थना प्रभु सों	१
१६	समीप-विरह	२	२६	वर्षारितु वर्णन	४
१७	परस्पर हासवाक्य श्रीस्वामिनी जू के प्रभु प्रति	३	२७	स्वामिनी जू को प्रभु प्रति गवन	१
१८	हिंडोला प्रभु को झूलिवो	४	२८	श्रीप्रभुजी की मुरली श्रीस्वामिनी जू हरन-समय	२
१९	प्रभु की आरती	१	२९	रथयात्रा।	१
२०	वसन्त-समय	६		एकत्र सं.	१९०

२ 'ख' प्रति—यह प्रति स. भ. के हि विभाग में बंध सं १०/६ पर विद्यमान है। इसमें पत्र १६१ से १९५ तक कुंभनदास कृत पदों का लेखन है। मध्य में १६२ वां पत्र अनुपलब्ध है, और १६३, १६७, १७०, १७६, १८०, १८६, १८८, १९० यह आठ पत्र खाली हैं (केवल पृष्ठांक डले हुए हैं)। इसमें 'वाललीला' से प्रारंभ कर 'द्वितीय अवस्था' [विरह] तक २३ विषयों में १५९ पद लिखे मिलते हैं। आकार १०"x८" है। प्रत्येक विषय के पदों की समाप्ति पर पत्र खाली छोड़ दिया गया है। इससे निश्चित होता है कि-लेखक ने भविष्य में उपलब्ध होनेवाले अन्य पदों या विषयों को यथास्थान सन्निविष्ट करने के लिये ऐसा किया है। किसी मूल प्रति के अनुकरण किम्वा अन्य प्रतियों के सम्वाद के लिये भी इस पद्धति को स्वीकार किया गया हो, ऐसी संभावना है।

लेखनकाल-इस प्रति का आदि अन्त नष्ट हो गया है। इसी लिपि तथा आकार-प्रकार में 'सूरदास' आदि अन्य अष्टछापी कवियों की रचनाएं भी लिखी मिलती हैं-मध्यपातिनी पत्र-[१६२] की संख्या भी इसीका बोध कराती है। यह ग्रन्थ जीर्णशीर्ण अवस्था में प्राप्त हुआ था। महत्त्वपूर्ण आद्यांश-सूरपद संग्रह-और अन्तिमांश बहुत कुछ नष्ट हो गया है। एकही लेखक द्वारा सुवाच्य अक्षरों में लिखी हुई यह प्रति यदि सम्पूर्ण रूप में

अथसे इति तक प्राप्त हो जाती तो अष्टछाप के पदों का प्रामाणिक और शुद्ध विश्लेषण [पारस्परिक असंमिश्रण] हो सकता। उस समय नहीं कहा जा सकता था कि-अमुक पद अमुक का नहीं, अमुक का है। इसका लेखन मन को मुग्ध कर लेता है।

प्रस्तुत प्रकाशन में पदों के नीचे फुट नोट में जहां भी सूरकृत, परमानन्दकृत, कुमनदासकृत पदों का आदि का विश्लेषण किया गया हैं इसी प्रति के आधार पर किया गया है। [देखो पद सं. ५४, ५६, ९९, १००, १०५, १३७ आदि]

इस प्रति के लेखनकाल का निर्धार मैंने "परमान्ददास और उनका परमानन्दसागर" नामक लेख [सुधा लखनऊ] में किया था। फलतः इसका लेखनकाल स १५६६ से १५८० के बीच निश्चित होता है। अत यह प्रति अष्टछाप के कीर्तन-सग्रह, विचारणा के लिये सबसे अधिक शुद्ध प्रामाणिक और प्राचीन सिद्ध होती है। अत. इसी के पाठ को प्राथमिकता दी गई है।

सं	नाम	पद
१	बाललीला	२
२	गो दोहन-प्रसग	२
३	[परस्पर हासवाक्य]	१
४	स्वामिनीजू कों स्वरूप वर्णन	११
५	दान प्रसग—	
	प्रभुके वचन	१
	गोपिकाजू के वचन	३
६	बनतें व्रज कों पांउ धारिबौ (आवनी)	२
७	आसक्ति—	
	सखी प्रति वचन	१९
	आसक्तिकौ वर्णन	१०
	आसक्ति साक्षात प्रभुप्रति	२
८	मानापनोदन	३१
९	[श्रीस्वामिनीजू कों प्रभु प्रति गवन]	१
१०	पौंढे समय के पद	१
११	खंडिता	८
१२	सुरतांत	१२
१३	[मुरली हरन]	२
१४	[हिंडोला]	४
१५	[वर्षारितु वर्णनु]	४
१६	अन्नकूट-समयके पद	५
१७	रास उत्सव समयके पद	६
१८	वसंत	५
१९	फागु धमारि	३
२०	द्वितीय अवस्था (विरह)	२४
	एकत्र	१५९

अन्य प्रतियाँ—

उक्त प्रतियों के अनन्तर कीर्तन-संग्रह की अनेक पोथियों से 'कुंभनदास' की छापवाले पदों की प्रतीक-सूची बनवाकर उनका मिलान किया गया और पदों को लिपिबद्ध। सर. भं. के हिन्दी-विभाग के जिन बंधो में पद प्राप्त हुए वे इस प्रकार हैं :—

बंध और पुस्तक संख्या :—

१/२-२। २/३-४-५। ३/१। ४/४। ५/१-६। ६/३-५। ७/४ ८/८। ९/३-५-६। ११/५-६। १२/३। १३/१-३। १४/२। १५/१-२ १७/३-४। १८/१-२। १९/१-७। २०/१०। २१/९। २४/९। २५/५ २७/४। २८/३। २९/१। ३०/६-१०। ३८/४। ४६/२। ११५/९। ११६/१ १३३/७। १३९/६। १४५/१-२। १४६/२। १४७/२। १५५/२। २१५/५

उक्त प्रतियां समय २ पर लिखी गईं हैं-जिसमें किन्हीं में लेखनकाल है और किन्हीं में नहीं। यह सब प्रतियाँ या तो वर्षोत्सव, नित्यलीला के क्रम से हैं-या राग के क्रमसे। इसमें पुष्टिसम्प्रदाय की सेवा-पद्धति में गाये जानेवाले अन्य कवियो के पद-कीर्तनो का भी संकलन है।

इन सब प्रतियों के पाठ-भेद को 'क' 'ख' प्रति के अनन्तर ही प्रामाणिकता दी गई है। बहुतसे पद 'कुभनदास' की छाप होते हुए भी दूसरी अन्य प्रतियों में उपलब्ध नहीं हुए। कुछ ऐसे भी पद लिखे मिले जो अन्य की छाप से प्रसिद्ध और प्रचलित हैं। अतः इस पद-संग्रह में उन्हीं पदों का समावेश किया गया है जो एकसे अधिक प्रतियों में मिले हैं।

उसके अतिरिक्त बहादरपुर [संखेडा गुजरात] गोवर्द्धननाथजी के कीर्तन सेवाकार, वयोवृद्ध, भगवदीय श्रीछगनभाई ने भी कई पद अपने संग्रह से लिखकर दिये। इन्होने कई वर्ष तक कांकरोली में भी सेवा की थी। कीर्तन के विशेषज्ञ और संगीतज्ञ थे-अब हरि.शरण हो चुके हैं, वे संग्रह के लिये संस्मरणीय हैं। इसके अनन्तर पद-मुद्रण के समय उक्त नगर के निवासी भाविक सेवापरायण, सेठ श्रीपुरुषोतमदासजी ने भी सूचियो से मिलान कर कई पद लिखकर भेजे-फलतः इनका सहयोग भी हमें प्राप्त हुआ और संग्रह को परिपुष्टि।

'दानलीला' और 'श्याम-सगाई' पृथक् रचना के रूप में भी मिलती है और संयुक्तरूप में भी। इसकी दो प्रतियाँ सरस्वती-भंडार कांकरोली में ही विद्यमान हैं।

उनके पदों का सकलन किया गया है। श्याम-सगाई, और दानलीला, यद्यपि असावधानी वश यहाँ संकलित हो गई है, पर इनका उपयोग वर्षोत्सव प्रसग में भी होता है।

(२) 'नित्य-लीला' में प्रातःकाल से लेकर शयन-पर्यन्त और शृंगार के संयोग एवं विप्रयोग रूपी दोनों दलों की पदरचना का समावेश होता है।

शृगार के दोनों दलों की एकरसता के विना रस की परिपुष्टि असभव है-साक्षात् सेवा में सयोग और सेवा के अनवसर में विप्रयोग (विरह) की सानुभावता जबतक हृदयगम नहीं होती- 'सानदाश्रुकलाकुलेक्षणता' के साथ गुण-लीला-गान की परिस्थिति जबतक प्रगट नहीं होती-भक्त के हृदय में एक अभाव-सा रहता है, न्यूनता-सी रहती है। दोनों का महत्व अन्योन्याश्रित है, एतदर्थ सभी भक्त कवियों ने लीला वर्णन-व्याज से उनका कथोपकथन कर भावना से भाव की सिद्धि समधिगत की है। वास्तविकतया इस प्रकार के उच्च परमकाष्ठापन्न भक्तकवियों का क्या काव्य-सौन्दर्य, क्या वर्णन-वैचित्र्य, क्या रसपुष्टि और क्या वर्णनात्मक तन्मयता इसी प्रकार के पदों में समधिगत होती है। वर्षोत्सव-वर्णन तो एक सामयिक उल्लास है जो-क्रिया-प्रधानता के कारण आता और चला जाता है। हृदय पर अनुभूति की गहरी छाप, चित्त की तन्मयता, और मानसिक उद्वेग की शान्ति के साथ आत्मिक परमानन्द की लहरें तो इसी में आविर्भूत-तिरोभूत होती है-यहीं वे उठती और विलीन होकर एक ऐसी अनन्त परम्परा स्थापित कर जाती हैं जो-स्वानुभवैक सवेद्य हो जाती हैं, वर्णनातीत अतएव अलौकिक।

सूरदास आदि अन्य समकक्ष महानुभावों के समान कुंभनदास भी इस रससिद्धता में साधारण नहीं हैं-उन्होने सयोग-विप्रयोगात्मक उभय दलों का वर्णन किया है। आसक्ति और विरह के पद अपनी मौलिकता से पाठक को जिस गहराई में उतार देते हैं उससे उबरना कठिन-सा हो जाता है।

अत. परपराप्राप्त मौलिकता को परिलक्षित कर "गोविन्दस्वामी' के पदसग्रह के समान यहाँ भी पदों को उक्त दो विभागों में विभाजित कर ग्रन्थ के सौष्ठवार्थ प्रयत्न किया गया है।

(३) 'प्रकीर्ण' विभाग में ऐसे पदों का समावेश किया गया है जो 'कुंभनदास' की छापसे प्रचलित हैं- सभव है उनका कोई शुद्ध रूपान्तर हो, पर वे वर्तमानरूप में साधारण रचना प्रतीत होते हैं-और कुछ प्रक्षिप्त-से भी प्रतीत होते हैं। उनके सम्बन्ध में भी कुछ निर्देश करना अप्रासगिक न होगा।

प्रक्षिप्त पद—

कुंभनदासजी की छाप से ऐसे कई पदों की रचना हुई है, जो–प्रारंभिक तुक से तो भव्य लगते हैं–पर अध्ययन से उनकी वास्तविकता प्रगट हो जाती है। इस प्रकार के पदों की रचना में अन्य पदों की तुकों, शब्द–योजना का समावेश मिलता है—मानना पडेगा कि–ऐसे पद किसी अभाव का अनुभव कर बनाये और गाये गये हैं–जैसे भोगदर्शन के अवसर पर 'टिपारा' या 'कुलह' या 'पगा' किसी भी शृंगार का दर्शनकर इधर–उधर की शब्द–योजना द्वारा कीर्तन की सपूर्ति करदी गई हैं।

वार्ता के अध्ययन से ज्ञान होता है कि–'सूरदास' के समय ही उनकी प्रसिद्धि का लाभ उठाकर ऐसे कई पद उनकी छाप से प्रचलित होगये थे–बाध्य होकर अकबर बादशाह को उनकी वास्तविकता की परीक्षा का एक उपाय करना पड़ा था *जलमें पद लिखकर डाले जाते थे, वास्तविक होते थे वे तर जाते थे, नकली होते-वे डूब जाते थे। सो–इस प्रकार अन्तस्तल के स्वच्छ मीमांसा–नीर में ऐसे पद डुबोकर देखे जा सकते हैं। प्रकीर्ण–विभाग में कुंभनदासजी की छाप के इस प्रकार के कई भीजें हुए पद दीख पड़ेंगे। वर्षोत्सव और नित्यलीला–संग्रह में भी वे क्वचित दृष्टिगोचर हो जायगें।

यह तो मानना पडेगा ही प्रक्षिप्त पदोंका रचना-कार संगीतज्ञ तो अवश्य था–उसने ऐसे पदों पर 'राग और ताल' की छाप लगाकर उन्हें सुदृढ बनाया है–वह प्रसिद्धि लोलुप भी नहीं था, वैष्णवता की सद्भावना और स्वकीय वाणी को भगवत्–सेवा में विनियोग करने की लालसा ने ऐसे पदों से उसके अहंभाव को समाप्त कर उन पदों को महानुभावी कवियों के नामपर उत्सर्ग कर दिया था। ऐसा सभी के साथ हुआ है।

इसका एक कारण यही भी था कि–पुष्टिमार्ग में उन्ही भक्तों के पदों का कीर्तन होता है, जिन्हें लीला की सानुभावता थी। लगभग १५० वर्ष के इधर फिर किसी भी कीर्तनकार की रचना का समावेश नहीं हुआ और एक रेखा–सी खिचगई, सूची–सी बनगई।

'व्रज में बडी मेवा टेंटी' इस पद को कई गुजराती भावुक वैष्णव 'व्रज' और उसकी 'मेवा टेंटी' के प्रेम के कारण अच्छा महत्व देते हैं। सम्पादन के समय जो पद सन्मुख आया वह इस प्रकार था —

---

* देखो–अष्टछाप वार्ता [सूरदास पत्र ५५] कांकरोली प्रकाशन.

प्रस्तुत प्रकाशन को लेकर अष्टछाप-साहित्य की लड़ी में अद्यावधि निम्न लिखित महानुभावी कवियों की रचनाएं प्रकाशित हो गई हैं जो-हिन्दी साहित्य के एक महान अंश की पूर्ति करती हैं :—

(१) 'सूरसागर'-सूरदासकृत । प्रकाशक-काशी नागरी प्रचारिणी सभा ।

(२) 'गोविन्दस्वामी'-[पद संग्रह] गोविन्दस्वामी कृत । प्रकाशक-विद्याविभाग कांकरोली.

(३) 'नंददास-ग्रन्थावली'-नन्ददासकृत [ग्रन्थ-सग्रह] प्रकाशक-विश्वविद्यालय, इलाहाबाद.

(४) 'कुम्भनदास' [पद-सग्रह] कुंभनदास कृत । प्रकाशक-विद्या-विभाग कांकरोली.

अवशिष्ट चार अष्टछाप कवियों में 'परमानन्ददास' कृत 'परमानन्द सागर' [१५०० पद] सम्पादित कर लिया गया है । समुचित अर्थ-सौकर्य प्राप्त कर प्रकाशित करने की प्रतीक्षा में रखा हुआ है । इसके अतिरिक्त कृष्णदास का 'कृष्ण सागर' चतुर्भुजदास एवं छीतस्वामी तथा नन्ददास के पदों के संग्रह का प्रकाशन अवशिष्ट रह जाता है ।

श्रीप्रभु के बुद्धि-प्रेरणानुग्रह द्वारा यह मनोरथ भी सफल होगा, ऐसी आशा सेवित करते हुए 'श्रीकुंभनदास' कृत भगवल्लीला-गुण-वर्णनात्मक उनकी पदरचना भगवान, उनके भक्त और भावुक साहित्य-रसिकों की सेवा में सादर समर्पित की जा रही है । इति शुभम्

बड़ौदा
शरदुत्सव
सं २०१०

विधेय,
पो. कण्ठमणि शास्त्री
सञ्चालक,
विद्याविभाग, कांकरोली.

गो. वा. सद्गत सेठ श्रीत्रीकमलाल भोगीलाल
अहमदावाद ना
स्मरणार्थ
सेठ श्रीरतिलाल नाथालाल ना
जय श्रीकृष्ण

दैवीसम्पत्तिके अन्यतम प्रतीक

— महानुभाव श्रीकुंभनदास —

[एक चारित्रिक विश्लेषण] —प्रो० कण्ठमणि शास्त्री—

लक्ष-लक्ष जागतिक जीवन-परम्परा की साधनात्मक अन्तिम ज्वलन्त ज्योति मानव-जन्म की प्राप्ति और उसका सदुपयोग, करुणावरुणालय स्वानन्दतुन्दिल श्रीप्रभु की परम कृपा की देन है। अन्यथा 'जायस्व म्रियस्व' की आपूर्यमाण परिस्थिति एक ऐसा प्रबल प्रवाह है जो-कभी अवरुद्ध नहीं होता, घर्घर रव करता हुआ निर्बाध अगाध धारा के रूप में बहता ही चला जाता है, जिसका न ओर दीखता है न छोर। वह मानव की बुद्धि से अपरिज्ञेय और उसकी शक्ति से अशक्य संतरण है।

लीलामय की ललित लीलाओं के परिदर्शनोपकार में सतत निरत, स्वयं संतरण के दृष्टान्त, परकीय संतारण की साधन-सुलभता के सम्पादक, 'मनुष्याणां सहस्रेषु' के उदाहरण स्वरूप, लोकवन्द्य अनेकों महापुरुष समय-समय पर भूतल पर अवतरित होकर स्वीय आचरण और उपदेश की विविध ज्वलन्त ज्योतियों के द्वारा सृष्टि के पथ को सदा आलोकित करते रहते हैं-जो कष्टों से ऊबड़ खाबड़, यातनाओं से अस्तव्यस्त एवं बाधा और चिन्ताओं से टेढ़ामेढ़ा होता रहता है, और निराशा के सूचीभेद्य संतमस के कारण जहां कुछ भी परिलक्षित नहीं होता। उनकी इस दिव्य चेतना, प्रेरणा एवं भावना से स्वरूपज्ञान का आलोक पाकर सहस्रश जीव आत्मिक उल्लास का परिदर्शन पाते, कृतकृत्य और धन्य होते आए हैं।

इसी मानवीय महनीयता की एक कड़ी भक्तप्रवर, कविवर, महानुभावी श्रीकुंभनदासजी थे, जो-जगदुद्धारक, क्षोण्युद्धारोद्धृतिक्षम श्रीवल्लभ महाप्रभु के शिष्य और 'येषां त्वन्तगतं पापं०' की प्रकाशमान परिभाषा थे। 'अभयं सत्त्वसंशुद्धि' इत्यादि दैवी लक्षणों से लक्षित, 'विगतेच्छाभयक्रोध' के स्वच्छ आदर्श के रूप में उनका दिव्य जीवन हमें एक विलक्षण प्रकाश प्रदान करता है।

भौतिक विलास से चकचौंधिया देनेवाले महान् सम्राट अकबर के राजवैभवसम्पन्न, दबदबाभरे दरबार में "भक्त कों कहा सीकरी काम" की तान छेड़ कर आश्चर्यचकित कर देनेवाला, "आवत जात पन्हैयां टूटीं" की पुट देकर वैभव पर तिरस्कार फेंकनेवाला, "जाकौ मुख देखत दुःख उपजत" की मूर्च्छना पर निर्भयता की ठोकर से शाहंशाह के हृदय को तिलमिला देनेवाला क्या साधारण यावदायुष्य जीनेवाला मर्त्य जन हो सकता है? नहीं, वह स्वयं अभय की प्रतिष्ठा था। परिश्रमोपार्जित कृषिधान्य–बेजर और टेंटी बेरों–से जीवनवृत्ति–निर्वाहक, राजा मानसिंह की ओर उदासीन रहकर परिहास में भी याञ्चावृत्ति दर्शाने वाली भतीजी को झिड़क देनेवाला 'सत्वसशुद्धि' का उदाहरण था, और भगवत्साक्षिध्य में अमर गेय पदों की रचना के द्वारा जन–जन के साथ आत्मिक परम सुख का उपासक 'ज्ञानयोग' व्यवस्थिति का केन्द्र–बिन्दु था।

इस प्रकार वार्ता के अध्ययन से अनावश्यक भौतिक परिचय की अपेक्षा कुंभनदास के दैवी गुणों का हमें अधिक परिचय प्राप्त होता है। महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य के ८४ और प्रभुचरण श्रीविट्ठलनाथजी के २५२ शिष्य वैष्णवों का महत्व इन्ही दैवी सम्पत्ति के गुणों पर आश्रित है–सख्या के न्यौन्य और आधिक्य से उसे आँकना तथा इतिहास के जीर्णशीर्ण पत्रों से उसे टांकना एक बडी सी त्रुटि है।

प्रस्तुत पद–सग्रह के सम्बन्ध में पद–रचयिता का इत्थभूत दिव्य परिचय और क्या दिया जा सकता है? निर्विकार रूप में चिरन्तन परिस्थित, आलोकमय, आदर्श यश काय के सम्मुख अशाश्वत पार्थिव परिचय कुछ महत्व भी तो नहीं रखता? फिर भी लेखिनी को पावन करने के लिये साधारणतया उसका दिग्दर्शन आवश्यक है, जो इस प्रकार है* —

जन्म और परिवार—

स १५२५ में (का कृ. ११ के दिन) जमनावतौ (व्रजमण्डल) नामक ग्राम में इनका जन्म हुआ। श्रीगोवर्द्धननाथजी की प्राकट्य वार्ता के अनुसार स. १५३५ में जबकि श्रीगोवर्द्धननाथजी का प्राकट्य हुआ था, कुंभनदासजी की वय १० वर्ष की थी। अनुश्रुति के अनुसार कुंभ-

* इनका जीवन वृत्त "चौरासी वैष्णवन की वार्ता" में स ८३ और "अष्टसखानन की वार्ता" में स. ३ पर उपलब्ध होता है।

संक्रांति के पर्व में तीर्थयात्रा के समय इनके पिता को पुत्रप्राप्ति का आशीर्वाद किसी महात्मा ने दिया, जिसके सस्मरण में इनका 'कुंभनदास' नामकरण किया गया था।

इनके पिता गौरवा* क्षत्रिय थे। पिता का नाम और परिचय प्राप्त नहीं होता। 'धर्मदास' नामक इनके एक काका थे–जो एक धर्मशील व्यक्ति थे। सभवतः पिता के दिवंगत हो जाने पर कुंभनदासजी पर उनके काका की धार्मिक वृत्ति का अधिक प्रभाव पड़ा। 'परासौली' गांव के पास थोडी सी भूमि इस वंश के अधिकार में थी, जहाँ रह कर यह अपना निर्वाह चलाते थे। कृषि के द्वारा ही कुटुम्ब का निर्वाह होता था। 'श्ववृत्ति' [नौकरी] द्वारा जीवन-निर्वाह कुंभनदासजी को अभीष्ट नहीं था। 'यावल्लब्धेन सन्तोष' के अनुसार साधारण रूप में कुटुम्ब का परिपालन कर लेने में ही इन्हें आनन्द एवं आत्म-गौरव का अनुभव होता था।

धर्मदास की धार्मिक चर्या से बाल्यावस्था में ही भगवद्-भक्ति एवं सदाचरण की ओर इनकी प्रवृत्ति हो गई थी। सांसारिक वाद-विवादों, झगड़ा-झंझटों और ईर्ष्या-द्वेष से जीवन को कटु बनाना उन्हें अभीष्ट नहीं था। उनको बाल्यकाल से ही गृहासक्ति नहीं थी। असत्य भाषण और पापकर्म से सदा दूर रहकर सीधे-साधे व्रजवासियों की रीति से रहना इनकी एक विशेषता थी। अध्ययनादि की न्यूनता होने पर भी कथा-शास्त्र-पुराणादि-श्रवण के द्वारा बहुश्रुतता और गंभीर ज्ञान इन्हें प्राप्त हो गया था-यह मानना ही पडेगा। चाहे सत्संग से हो, चाहे अध्ययन से ? इनका साहित्य-संगीत-कला का ज्ञान पराकाष्ठा को पहुंचा हुआ था, इसमें कोई शंका नहीं है। पदरचना-शैली, संगीत-सेवा और प्रख्याति से सहज ही इस कथन की पुष्टि होती है।

समय आने पर इनका विवाह हुआ। 'जेत' गाँव के पास 'बहुला वन' में इनका ससुराल था। इनकी स्त्री यद्यपि साधारणतया ग्रामीण थी पर उस पर इनकी संगति का प्रभाव पड़ा, जिसके कारण इन्हें गृहस्थाश्रम कभी सेवा में प्रतिबन्धक सिद्ध नहीं हुआ।

---

* मिश्र 'बन्धुओं'ने इन्हें गौरवा ब्राह्मण लिखा है जो-ठीक नहीं है। इनकी जाति और वंश के कई लोग अब भी व्रज तथा मेवाड़ में विद्यमान हैं।

शरणागति-दीक्षा—

सं १५५० के आसपास महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य जब अपनी परिक्रमा करते हुए झारखंड में विद्यमान थे, श्रीगोवर्द्धननाथजी की प्रेरणा से उनकी सेवा-प्रतिष्ठार्थ गिरिराज पधारे। यहाँ उनके अनेक व्रजवासी शिष्य हुए-जिनमें 'सदू पांडे', 'माणिकचद पाडे' और 'नरो भवानी' आदि मुख्य थे। इसके अनन्तर जब 'रामदास चौहान' को श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवा सौंपकर उसका प्रकार बढाया गया तब [संभवत स. १५५६ के लगभग] कुंभनदासजी श्रीमहाप्रभु के शरण आए। उन्होंने 'अष्टाक्षर' और 'ब्रह्मसम्बन्ध' की दीक्षा देकर पत्नी-सहित कुंभनदासजी को अपना शिष्य बनाया। दीक्षा और गुरु के सिद्धान्तोपदेश से कुंभनदासजी पर अहेतुकी भक्ति का प्रभाव पड़ा। भगवल्लीलाओं की इन्हें स्फूर्ति होने लगी। संगीत-विद्या में तो यह प्रवीण थे ही, कण्ठ भी मधुर था, निर्दिष्ट अवसर पर उपस्थित होकर यह श्रीनाथजी की अहर्निश कीर्तन-सेवा करने लगे।

पुष्टिमार्गीय भावपूर्ण सेवा के कारण इनके सात्विक हृदय में दिव्य अनुभूतियों का प्रकाश होने लगा। नित्य नई पद-रचना और गायन के द्वारा प्रभु को रिझाने और उनके सुमधुर मुखारविन्द के दर्शन करने में ही इन्हें परमानन्द प्राप्ति का अनुभव होने लगा। दास्य, वात्सल्य, सख्य एव माधुर्य भाव की ऊर्मियों ने इनके हृदय और जीवन दोनों को आप्लावित, रसपूर्ण कर दिया, जिससे हिन्दी-साहित्य में ब्रजभाषा-काव्य की एक विशेष धारा को परिपुष्टि मिली।

सं १६०२ के लगभग जब महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य के स्वनामधन्य आत्मज, आचार्य गो. श्रीविट्ठलनाथजी ने 'व्रजभाषा के अष्टछाप' की स्थापना की, तब उसमें कुंभनदासजी और उनके पुत्र चत्रभुजदासजी को सम्मिलित किया गया। इस अष्टछाप की स्थापना में तथाकथित साम्प्रदायिकता की मनोवृत्ति का पुट नहीं था। इसका वैशिष्ट्य, साहित्यिक पद-रचना के उत्कर्ष, भाव के माधुर्य, सगीत के सौष्ठव और भक्ति के उस प्राञ्जल दिव्य सौन्दर्य पर आधारित था जो-रक से-लेकर सम्राट् तक, गृहस्थ से लेकर त्यागी महात्माओं तक को मुग्ध करता था। राधावल्लभी

सम्प्रदाय के संस्थापक 'श्रीहित हरिवंशजी' का कुंभनदासजी के समीप आ कर पद सुनकर प्रशंसा करना इसी ओर संकेत करता है। *

कुंभनदासजी का परिवार बड़ा था। सात पुत्र, उनकी सात पत्नियाँ और एक विधवा भतीजी तथा दम्पति कुल १७ प्राणी थे। बड़े पांच पुत्र सांसारिक व्यवहारों में आसक्त थे, अत उनके प्रति इनका कोई ममत्व नहीं था +। छठे पुत्र कृष्णदास थे जो-श्रीगोवर्द्धननाथजी की गायों की सेवा किया करते थे। कृष्णदास गोरक्षा करते हुए सिंह के द्वारा आहत होकर 'हरिशरण' हो गये। सप्तम पुत्र चत्रभुजदास थे जो-अपने पिता के अनुरूप भक्त, साहित्यचतुर तथा कीर्तन-सेवा परायण हुए। अष्टछाप में इनका समावेश हुआ। भगवद्-भक्ति के कारण 'पुत्रे कृष्णप्रिये रति' के कथनानुसार कुंभनदासजी का चत्रभुजदास पर अधिक ममत्व था और वे इन्हें अपना 'पूरा बेटा' कहते थे। कृष्णदास को आधा बेटा कहा जाता था। जिसका कारण यह था कि-चत्रभुजदास जहाँ प्रभु की नाम-सेवा और स्वरूप-सेवा दोनों में निष्ठ थे, वहां कृष्णदास केवल रूप-सेवा (गोचारण) में ही मग्न थे। इस प्रकार श्रीगुसांईजी के समय हास्यवार्ता-प्रसंग में इनके लिये 'डेढ़ पुत्र' की बात प्रचलित थी ×।

सात्विक जीवन—

जैसा कि प्रथम कहा जा चुका है-'कुंभनदासजी अपनी आजीविका कृषि द्वारा चलाते थे। धान्य की उपज के ऊपर ही आश्रित होने और

---

* देखो-अष्टछाप वार्ता-'कुवरि राधिका तू सकल सौभाग्य०' नामक पद और प्रसग [पत्र २५८] कांक० प्रकाशन।

+ स. १६९७ वाली वार्ता के अतिरिक्त अर्वाचीन अन्य वार्ताओं में कुभनदासजी की स्त्री द्वारा शरण आने के अनन्तर श्रीवल्लभाचार्य से पुत्र-प्राप्ति का वर मागने और महाप्रभु द्वारा सात पुत्र होने के वरदान का उल्लेख मिलता है, जो ठीक नहीं है। महापुरुषों द्वारा आशीर्वाद से प्राप्त पुत्र ऐसी साधारण कोटि के नहीं होने चाहिये जिनके प्रति कुभनदास जैसे श्रद्धालु शिष्यों को वैराग्य हो? सन्तत्यर्थ वर-याचना का उल्लेख यदि सत्य माना जाय तो कृष्णदास के जन्म के पूर्व होना चाहिये। फिर भी 'सात' पुत्रों का कथन तो असगत ही जँचता है।

× कुभनदासजी की षष्ठ वार्ता [अष्टछाप पत्र २७०, कांकरोली प्रकाशन]

भगवद्‌गुणगान के अतिरिक्त अन्य व्यापार से विमुख रहने, याचना-वृत्ति का सर्वथा परित्याग करने के कारण कभी २ इन्हें विषम परिस्थितियों का भी सामना करना पड़ता था। महाराजा मानसिंह के प्रसग में वार्ता से स्पष्ट होता है कि-करील और बेर जैसे वृक्षों के फल से भी यह स्वकीय निर्वाह चला लेते थे। स १६२० मे मानसिंह ने एक सहस्र स्वर्णमुद्राओं की थैली, जमुनावता ग्राम का पट्टा और किसी साहूकार को इनका व्यय चलाते रहने के आदेश का इन्होंने सहज परित्याग कर दिया था। राजा ने भी अपने जीवन में कई सन्त, महन्त, त्यागी और भक्तों का सग किया था, पर गृहस्थ त्यागी कुभनदासजी को देख कर तो वह आश्चर्यमग्न हो गया। कुंभनदासजी की अपरिग्रह वृत्ति का राजा पर तब और भी प्रभाव पड़ा जब उसने कुभनदासजी की भतीजी द्वारा कहे हुए "आसन खाइक आरसी पडिया पी गई" वाक्य का तात्पर्य समझा। सोने की आरसी (दर्पण) में देखकर तिलक करने की लालसा के अभाव और फिर कभी आकर तग न करने की स्पष्टोक्ति से राजा दग रह गया, श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर उसे वहाँ से विदा हो जाना पड़ा। *

प्रस्तुत प्रसग की अपेक्षा कुंभनदासजी के जीवन की महत्वपूर्ण घटना फतहपुर सीकरी का बादशाही दरबार था। कुभनदासजी की साहित्य, सगीत एव भक्ति की चन्द्रिका से भारतीय प्रागण धवलित हो रहा था। स १६३८ में गुणग्राही महान् सम्राट् अकबर के मन में उत्सुकता हुई और उसने राजवैभव के प्रखर आलोक में सगीत की साधना को परखना चाहा। 'जमुनावता' गाव की धूलि से धूसरित होता हुआ-रथ, घोड़ा, पालकी आदि का शाही वाहन-परिकर दबदबे के साथ 'परासोली' के खेतों की मुडेर पर जा पहुंचा। कुभनदासजी को दरबार का आह्वान था।

"चित्तोद्वेग विधायापि हरिर्यद्यत्करिष्यति, तथैव तस्य लीला" इस गुरु-वाक्य के अभ्यासी ने इसे भी नटनागर की एक लीला समझी। घोड़ा और रथ के बैलों जैसे मूक पशुओं और पालकी के वाहक नरपशुओं को आधि-व्याधि पहुंचाना क्या अच्छा काम था? फटी पाग, छोटी अंगरखी, पुरानी अँगोछी, ऊची धोती और टूटी पन्हैया, टेढ़ी लकुटी लिये हुए वे पैदल ही हरिनाम गुनगुनाते हुए फतहपुर सीकरी जा पहुंचे। जड़ाव की रावटी,

* अष्टछाप वार्ता [पत्र २४६ से २५०] कांक० प्रकाशन।

मोतियों की झालरों, सुगन्धि की लपटों, मखमली गलीचों तथा सोने चांदी के सिंहासनों ने माया, मोह, लालसा की अपेक्षा उनके वैराग्य को और भी उद्दीप्त कर दिया। श्यामसुन्दर के बिना यह सब वैभव-विलासमय दरबार में उन्हें काटने-सा लगा।

बादशाह अकबर के यथोचित आदर सत्कार को पाकर भी कुंभनदास-जी का उत्तप्त हृदय शीतल नहीं हुआ। संगीत सुनाने का निदेश पाकर उन्हें श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवा-संगीत का स्मरण हो आया। झुंझलाहट और विवशता का कडवा घूंट पीकर उन्होंने तानपूरा के तार झनझनाये, कुंठित अंगुलियों की ठोकर खाकर भी तारों ने अपनी मजुल स्वरलहरी का परित्याग नहीं किया, श्रान्त तृषार्त कण्ठ के माधुर्य ने सारे दरबार को विमुग्ध कर दिया। "भक्त कौ कहा सीकरी काम" [पद सं ३९७] की धुन में दरबारी झूमने लगे। मानों बादशाह संगीत की धारा में बहता चला गया-पर सहसा वह-"जाकौ मुख देखत दुख उपजै ताकौं करनी परी प्रनाम" की कठोर चट्टान से आ टकराया। गुणग्राहकता की प्रख्याति-वश उसे सावधानतया धैर्य का अवलम्बन लेना पड़ा। पारितोषक के प्रलोभन पर मुंहतोड़ उत्तर पाकर तो उसे निर्भीक, त्यागी और निर्लोभी सन्त महानुभाव को सादर घर पहुचा देने में ही निज श्रेय दीख पड़ा।

समय आने पर बादशाही साम्राज्य नष्टभ्रष्ट हो गया पर कवि की स्पष्टोक्ति आज भी उनकी स्मृति को प्रदीप्त करती रहती है। +

कुंभनदासजी की इस अपरिग्रह, असंचय एव अकिंचन वृत्ति द्वारा संभूत सीदत्कुटुम्बता का करुणामय प्रभाव एक बार प्रभुचरण श्रीविट्ठल-नाथजी पर भी पड़ा। उन्हें दृढ विश्वास था कि-सर्वस्व समर्पण कर देने-वाला शिष्य गुरु के द्रव्य को स्वीकार नहीं करेगा, अतः तीर्थयात्रा के व्याज से प्रदेश-परिभ्रमण में धनी-मानी वैष्णवों के द्वारा उसकी सहायता करा देने का विचार उनको आया। सं. १६३१ में द्वारिका-यात्रा में साथ चलने के उनके आदेश को कुंभनदासजी कैसे टाल सकते थे? राजभोग सेवा के अनन्तर गिरिराज के समीप में ही 'अप्सराकुण्ड' पर सायंकालीन विश्राम हुआ। प्रातःकाल आगे कूच करने का निश्चय था। अनिश्चित काल के लिये क्षणिक विप्रयोग की ऊष्मा से ही कुंभनदासजी के हृदया-काश में विरह की अकाल जलद-घटा घिर आई। "कहिये कहा कहिये

+ देखो-अष्टछाप वार्ता [पत्र २२७-३३] कांक० प्रकाशन।

की होइ " [पद-स. ३६२] और " किते दिन ह्वै जु गए बिनु देखे " (पद स' ३३७) की लगातार के चलते ही नेत्र-नीरदों से बराबर बरसा होने लगी। सह-यात्रियों का परिकरीय वातावरण करुणा से गीला हो गया। श्रीगोवर्द्धन-धरण के एक पहर भर के वियोग की व्याकुलता देख द्रवित होकर श्रीविट्ठलेश प्रभुचरण को भी वापिस लौट जानेकी कुंभनदासजी को आज्ञा देनी पड़ी, " गुरोराज्ञा बाधन " के अपराध एवं प्रभु की विप्रयोग-व्यथा दोनों से बचकर कुंभनदासजी को जिस आन्तरिक परमानन्द की उपलब्धि हुई वह-" जो पै चौंप मिलन की होइ " [स. २२१] इस पद में मूर्तिमती होकर प्रत्यक्ष हो उठती है। *

अष्टछाप के कवियों में कुंभनदासजी सब से अधिक दीर्घजीवी थे। परोपकार और भगवद्भक्ति के बिना वे जीवन का मूल्य ही क्या समझते थे? उत्तमश्लोक वासुदेव के चिन्तन के अतिरिक्त जीवन का जो भी क्षण बीतता है-वह एक-अपूरणीय हानि, महच्छिद्र, और वृहद् विभ्रम है-यह सिद्धान्त था जो-कुंभनदासजी जैसे भगवद्भक्तों का ध्येय है। अत. कहना होगा कि उन्होंने अपनी आयु का अधिकांश क्या सर्वांश ही स्वकीय ध्येय-प्राप्ति में सफलतया व्यतीत किया था। जीवन के ११५ वर्षों में १०-११ वर्ष ही उनके खेल-कूद बाल्यकाल में व्यतीत हुए होंगे। श्रीवल्लभाचार्य के द्वारा पुष्टिमार्ग में शरण आने के पूर्व भी भगवत्कथा-व्यासङ्ग, सत्संग और सदाचार वृत्ति से उनका समय व्यतीत होता था। दीक्षा के अनन्तर तो उन पर कुछ ऐसा रंग चढ़ा जो-वे भक्ति की पराकाष्ठा रूप भगवल्लीलाओं का साक्षात्कार करने लगे। शरण आने के समय से ही इनकी इस लीलानुभूति के पद सुनकर स्वयं महाप्रभु श्रीवल्लभ ने इनके भाग्य को सराहा और सदा हरि-रसमग्न रहनेका आशीर्वाद दिया था। ×

स. १६४० के लगभग एक दिन नित्य सेवा का लाभ लेते हुए वे भौतिक शरीर का परित्याग कर यश कायाधारी हो गये। भगवत्सान्निध्य और लीला-साक्षात्कार की प्रबल लालसा ने उनके तनुनवत्व का संपादन कर दिया। प्रभुचरण श्रीविट्ठलनाथजी का वरद आश्रय पाकर भगवद्-गुणगान करते वे द्विव्य शाश्वत लोक को पदार्पण कर गये, जिसे आम्नाय में " यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद् धाम परमं मम " इन शब्दों से अभिव्यक्त किया जाता है।

---

* अष्टछाप वार्ता [पत्र २६०-६९]। × अष्टछाप वार्ता [पत्र २११] कांक० प्र०।

एक भाव-विश्लेषण

क गोकुलानंद तैलंग.

अष्टछाप की अमर काव्य-वाणी ने भारतीय साहित्य में जो अविरल रस-निर्झरिणी प्रवाहित की है, वह भारतीय वाङ्मय के लिये ही नहीं, विश्व-साहित्य के लिये एक अनूठी देन है। अष्टछाप के महानुभावों ने 'अष्टसखा' के रूप में जहां अपने सुहृद् वृन्दावन-विहारी के साथ सख्य-भाव की प्राप्ति की है, वहा उन्हें अविरल अगाध भक्ति-भावना का अनुगामी एक सरस कवि-हृदय भी मिला है, जो उसी मनमोहन की विश्व-विमुग्धकारिणी वेणु-स्वर-लहरी से प्रतिक्षण अभिगुञ्जित रहता है और जिसके साथ उनकी काव्य-वाणी ने स्वर में स्वर मिला कर समग्र जन-जीवन को अनुपल अनुप्राणित करने की अपूर्व क्षमता पायी है।

इन महानुभावों में एक ओर उस नन्दनन्दन की रूप-माधुरी में गहन आसक्ति है-तन्मयता है-भाव-विभोरता है, तो दूसरी ओर जगत् के सुखमय भासमान् यावन्मात्र पदार्थों के प्रति एक गहरी विरक्ति है। इसी अनुराग और विराग के अद्भुत सम्मिश्रण के साथ उनकी वाणी-वीणा से अविरत निस्सृत भाव-गीतों की धारा ने काव्य-कला का प्रशस्त आधार लेकर भावुक भक्त, कवि और कलाकारों के समक्ष साहित्य-सङ्गीत-कला के एक मनोरम कल्पना-रूप को प्राण-प्रतिष्ठा दी।

इस प्राणवान् त्रिवेणी-सङ्गम-साधना ने एक ऐसा पावन केन्द्र-बिन्दु दिया है, जिसमें जन-जन की बिखरी भाव-धाराएँ एकत्र परिनिष्ठित हुईं और उनके सामने एक दिव्य पुण्य आराध्य की साकार सजीव प्रतिमा खड़ी हो गयी-एक ओर नटवर-वेष नन्दनन्दन मुरली-मनोहर के रूप में और दूसरी ओर युगल प्रिया-प्रियतम, श्याम-श्यामा रूप में। इस आराध्य के प्रति सख्य, वात्सल्य और शृङ्गार, इन त्रिविध रूपों में अष्टसखाओं की पुनीत भावना प्रस्फुटित हुई। इन महानुभावों ने इसी त्रिविध भावना से समय-समय पर निज-निज रुचि के अनुरूप मधुर गीति-धारा बहायी और सभी ने उसमें गति एवं जीवन देकर जन-जन का अशेष कल्याण सम्पादन किया।

एक भाव-विश्लेषण

※

क. गोकुलानंद तैलंग.

अष्टछाप की अमर काव्य-वाणी ने भारतीय साहित्य में जो अविरल रस-निर्झरिणी प्रवाहित की है, वह भारतीय वाङ्मय के लिये ही नहीं, विश्व-साहित्य के लिये एक अनूठी देन है। अष्टछाप के महानुभावों ने 'अष्टसखा' के रूप में जहां अपने सुहृद वृन्दावन-विहारी के साथ सख्य-भाव की प्राप्ति की है, वहा उन्हें अविरल अगाध भक्ति-भावना का अनुगामी एक सरस कवि-हृदय भी मिला है, जो उसी मनमोहन की विश्व-विमुग्धकारिणी वेणु-स्वर-लहरी से प्रतिक्षण अनिगुञ्जित रहता है और जिसके साथ उनकी काव्य-वाणी ने स्वर में स्वर मिला कर समग्र जन-जीवन को अनुपल अनुप्राणित करने की अपूर्व क्षमता पायी है।

इन महानुभावों में एक ओर उस नन्दनन्दन की रूप-माधुरी में गहन आसक्ति है-तन्मयता है-भाव-विभोरता है, तो दूसरी ओर जगत् के सुखमय भासमान् यावन्मात्र पदार्थों के प्रति एक गहरी विरक्ति है। इसी अनुराग और विराग के अद्भुत सम्मिश्रण के साथ उनकी वाणी-वीणा से अविरत निस्सृत भाव-गीतों की धारा ने काव्य-कला का प्रशस्त आधार लेकर भावुक भक्त, कवि और कलाकारों के समक्ष साहित्य-सङ्गीत-कला के एक मनोरम कल्पना-रूप को प्राण-प्रतिष्ठा दी।

इस प्राणवान् त्रिवेणी-सङ्गम-साधना ने एक ऐसा पावन केन्द्र-बिन्दु दिया है, जिसमें जन-जन की बिखरी भाव-धाराएँ एकत्र परिनिष्ठित हुईं और उनके सामने एक दिव्य पुण्य आराध्य की साकार सजीव प्रतिमा खड़ी हो गयी-एक ओर नटवर-वेष नन्दनन्दन मुरली-मनोहर के रूप में और दूसरी ओर युगल प्रिया-प्रियतम, श्याम-श्यामा रूप में। इस आराध्य के प्रति सख्य, वात्सल्य और शृङ्गार, इन त्रिविध रूपों में अष्टसखाओं की पुनीत भावना प्रस्फुटित हुई। इन महानुभावों ने इसी त्रिविध भावना से समय-समय पर निज-निज रुचि के अनुरूप मधुर गीति-धारा बहायी और सभी ने उसमें गति एवं जीवन देकर जन-जन का अशेष कल्याण सम्पादन किया।

इस प्रेमाश्रु-प्लावन में बह जाय ! इसीलिये वह अपने त्राण के लिये प्रभु 'गोवर्द्धनधर' की शरण में आकर आर्त्तभाव से कृपा-याचना करता है। इस युगल-दर्शन के लिये भी तो कवि मानता है कि 'जतन कियो कछु में ना'—अर्थात् उसके आराध्य की अहेतुकी कृपा की ही यह देन है, उसका अपना प्रयत्न कुछ नहीं। यही तो 'अनुग्रह-मार्ग' या 'पुष्टिभक्ति' का सिद्धान्त है और कवि उसका साधक पथिक।

इस प्रकार कुम्भनदास वेसुध और विह्वल दशा में अहर्निश श्यामसुन्दर की सौन्दर्य-सुधा का निर्निमेष दृष्टि से पान करते हुए छके रहते हैं। किसी रूप-ठगी, थकी-सी, चित्र की लिखी-सी ब्रजाङ्गना के शब्दों में ही उनके रस-लोभी हृदय को परखिये—

लोचन मिलि गए जब चार्यौं।
व्है ही रही ठगी-सी ठाढ़ी उर अंचर न संभार्यौ॥
अपनें सुभाइ नंदजू कें आई सुंदर स्याम निहार्यौ।
टगटगी लगी चरन गति थाकी जिउऽब टरत नहिं टार्यौ॥
उपजी प्रीति मदनमोहन सों घर कौ काज विसार्यौ।
'कुंभनदास' गिरिधर रसलोभी भलें तें आरज पथ पार्यौ॥
[पद सं. १९८]

ब्रजराजकुमार नन्दनन्दन की रूप-माधुरी में मोहिनी और मादकता ही ऐसी है कि-एक पल भी जिसने उसका आस्वाद लिया-'आंखें चार' हुई कि वह अपना आपा भूल जाता है-नेत्र और चरणों की गति तो ठीक, हृदय भी उसमें अटक कर, ठिठक कर रह जाता है। फिर कैसा गृह-काज, कैसा 'आरज-पथ' और कैसी लोक-लाज!!

कुम्भनदास में भी यही रूपासक्ति है। उनके प्रभु अपरिमित सौन्दर्य-निधि हैं—ऐसी निधि जो अनुपल नवीन, विलक्षण, और विकासमान है। अङ्ग-प्रत्यङ्ग की अनुक्षण नूतन कान्ति, उनके सौभाग्य-सीमा की परिमिति तथा इयत्ता बताने में उनकी दृष्टि और कल्पना असमर्थ है—उनकी ही चकित वाणी में—

छिनु-छिनु बानिक और हि और।
जब देखों तब नौतन सखि री दृष्टि जु रहति न ठौर॥

परम भावुक कवि 'कुम्भनदास' का इन अष्टसखाओं में एक अन्यतम स्थान है। वे 'यशोदोत्सङ्गलालित', 'गोप-गोकुल-नन्दन' और 'गृहीतमानसा-व्रजस्त्री-रमण—श्रीकृष्ण की इन त्रिविध स्वरूपों की विविध व्रजलीलाओं के दर्शक, उपासक और अन्तरङ्ग सखा हैं। अतएव उनका काव्य भी वात्सल्य, सख्य, और शृङ्गार—इन तीनों भावनाओं से भींगा और पगा हुआ है। तथापि उनके काव्य के निकट अनुशीलन से यह सहज विदित होता है कि—उनका मन श्यामा-श्याम की निकुञ्ज-लीला और युगल-भावना में अधिकांश रमा है। इसमें कवि की रूपासक्ति और गोपी-भाव-विभावित विरहासक्ति की तीखी अभिव्यञ्जना सवलित है देखिये—

जब वे पावस की सघन-घन-घटाओं के बीच श्यामा-श्याम की युगल-लीला का भाव-तन्मयता में अनुचिन्तन करते हैं, तो मानों वे अपने को कालिन्दी के कल-कूलों पर एक अन्तरङ्ग सखी की भाँति खड़ा पाते हैं और उनके अन्तरतम को युगल-स्वरूप के मधुर-दर्शन की उत्कट लालसा विरहाकुल कर उठती है। उनके हृदय-वीणा के सोये तार मानों इन भावों को लेकर झङ्कृत हो उठते हैं—

> भींजत कब देखौंगी नैंना।
> दुलहिन जू की सुरंग चूनरी मोहन कौ उपरैना॥
> स्यामास्याम कदँब तर ठाढे जतन कियो कछू मैं ना।
> 'कुम्भनदास' प्रभु गोवर्द्धनधर जुरि आई जल-सैंना॥
> [पद स १०१]

कवि का चिर-वियोग-तप्त उन्मथित हृदय अन्तर्पीडाओं की उमड़ती घुमड़ती धुँआधार श्याम घटाओं से ढँक जाता है। उसके अन्तर की अधित्यका में घुटती-सिमटती धारा-प्रवाहिनी रस-वर्षा उसके सन्तप्त लोचनों के मार्ग से प्रेमाश्रुओं के रूप में प्रस्रवित हो जाती है और तब उसे मानो 'सुरंग-चूनरी' और 'उपरैना' से विलसित कदम्ब तले खड़े श्यामा-श्याम प्रत्यक्ष दर्शन दे देते हैं। प्रिया-प्रियतम के अनुराग-राग-सम्वलित सुरंग-सौन्दर्य की लालिमा कवि के सजल लोचनों को अनुरञ्जित कर देती है। एक ओर तो वर्षा के सजल जलदों का गगनव्यापी समूह और दूसरी ओर कवि के हृदय-प्रदेश से उमड़ने वाली 'जल-सेनाएँ'—ऐसा न हो कि वह

इस प्रेमाश्रु-प्लावन में बह जाय ! इसीलिये वह अपने त्राण के लिये प्रभु 'गोवर्द्धनधर' की शरण में आकर आर्त्तभाव से कृपा-याचना करता है। इस युगल-दर्शन के लिये भी तो कवि मानता है कि 'जतन कियो कछु में ना'—अर्थात् उसके आराध्य की अहैतुकी कृपा की ही यह देन है, उसका अपना प्रयत्न कुछ नहीं। यही तो 'अनुग्रह-मार्ग' वा 'पुष्टिभक्ति' का सिद्धान्त है और कवि उसका साधक पथिक।

इस प्रकार कुम्भनदास बेसुध और विह्वल दशा में अहर्निश श्यामसुन्दर की सौन्दर्य-सुधा का निर्निमेष दृष्टि से पान करते हुए छके रहते हैं। किसी रूप-ठगी, थकी-सी, चित्र की लिखी-सी ब्रजाङ्गना के शब्दों में ही उनके रस-लोभी हृदय को परखिये—

लोचन मिलि गए जब चार्‍यौ।
व्है ही रही ठगी-सी ठाढ़ी उर अंचर न संभार्‍यौ॥
अपनें सुभाइ नंदजू कें आई सुदर स्याम निहार्‍यौ।
टगटगी लगी चरन गति थाकी जिउऽब टरत नहिं टार्‍यौ॥
उपजी प्रीति मदनमोहन सों घर कौ काज बिसार्‍यौ।
'कुंभनदास' गिरिधर रसलोभी भलौ तें आरज पथ पार्‍यौ॥
[पद स. १९८]

ब्रजराजकुमार नन्दनन्दन की रूप-माधुरी में मोहिनी और मादकता ही ऐसी है कि-एक पल भी जिसने उसका आस्वाद लिया-'आखें चार' हुईं कि वह अपना आपा भूल जाता है-नेत्र और चरणों की गति तो ठीक, हृदय भी उसमें अटक कर, ठिठक कर रह जाता है। फिर कैसा गृह-काज, कैसा 'आरज-पथ' और कैसी लोक-लाज !!

कुम्भनदास में भी यही रूपासक्ति है। उनके प्रभु अपरिमित सौन्दर्य-निधि हैं—ऐसी निधि जो अनुपल नवीन, विलक्षण, और विकासमान है। अङ्ग-प्रत्यङ्ग की अनुक्षण नूतन कान्ति, उनके सौभाग्य-सीमा की परिमिति तथा इयत्ता बताने में उनकी दृष्टि और कल्पना असमर्थ है—उनकी ही थकित वाणी में—

छिनु-छिनु बानिक और हि और।
जब देखौं तब नौतन सखि री दृष्टि जु रहति न ठौर॥

परम भावुक कवि 'कुम्भनदास' का इन अष्टसखाओं में एक अन्यतम स्थान है। वे 'यशोदोत्सङ्गलालित', 'गोप-गोकुल-नन्दन' और 'गृहीतमानसा-व्रजस्त्री-रमण—श्रीकृष्ण की इन त्रिविध स्वरूपों की विविध ब्रजलीलाओं के दर्शक, उपासक और अन्तरङ्ग सखा हैं। अतएव उनका काव्य भी वात्सल्य, सख्य, और शृङ्गार-इन तीनों भावनाओं से भींगा और पगा हुआ है। तथापि उनके काव्य के निकट अनुशीलन से यह सहज विदित होता है कि-उनका मन श्यामा-श्याम की निकुञ्ज-लीला और युगल-भावना में अधिकाश रमा है। इसमें कवि की रूपासक्ति और गोपी-भाव-विभावित विरहासक्ति की तीखी अभिव्यञ्जना सवलित है देखिये—

जब वे पावस की सघन-घन-घटाओं के बीच श्यामा-श्याम की युगल-लीला का भाव-तन्मयता में अनुचिन्तन करते हैं, तो मानों वे अपने को कालिन्दी के कल-कूलों पर एक अन्तरङ्ग सखी की भांति खड़ा पाते हैं और उनके अन्तरतम को युगल-स्वरूप के मधुर-दर्शन की उत्कट लालसा विरहाकुल कर उठती है। उनके हृदय-वीणा के सोये तार मानों इन भावों को लेकर झङ्कृत हो उठते हैं—

> भींजत कब देखोंगी नैंना।
> दुलहिन जू की सुरंग चूनरी मोहन कौ उपरैना॥
> स्यामास्याम कदँब तर ठाढे जतन कियो कछू मैं ना।
> 'कुम्भनदास' प्रभु गोवर्द्धनधर जुरि आई जल-सैंना॥
>
> [पद सं १०१]

कवि का चिर-वियोग-तप्त उन्मथित हृदय अन्तर्पीडाओं की उमड़ती घुमड़ती धुँआधार श्याम घटाओं से ढँक जाता है। उसके अन्तर की अधित्यका में घुटती-सिमटती धारा-प्रवाहिनी रस-वर्षा उसके सन्तप्त लोचनों के मार्ग से प्रेमाश्रुओं के रूप में प्रस्रवित हो जाती है और तब उसे मानो 'सुरग-चूनरी' और 'उपरैना' से विलसित कदम्ब तले खडे श्यामा-श्याम प्रत्यक्ष दर्शन दे देते हैं। प्रिया-प्रियतम के अनुराग-राग-सम्वलित सुरंग-सौन्दर्य की लालिमा कवि के सजल लोचनों को अनुरञ्जित कर देती है। एक ओर तो वर्षा के सजल जलदों का गगनव्यापी समूह और दूसरी ओर कवि के हृदय-प्रदेश से उमड़ने वाली 'जल-सेनाएँ'-ऐसा न हो कि वह

इस प्रेमाश्रु-प्लावन में बह जाय ! इसीलिये वह अपने त्राण के लिये प्रभु 'गोवर्द्धनधर' की शरण में आकर आर्त्तभाव से कृपा-याचना करता है। इस युगल-दर्शन के लिये भी तो कवि मानता है कि 'जतन कियो कछु मैं ना'—अर्थात् उसके आराध्य की अहैतुकी कृपा की ही यह देन है, उसका अपना प्रयत्न कुछ नहीं। यही तो 'अनुग्रह-मार्ग' वा 'पुष्टिभक्ति' का सिद्धान्त है और कवि उसका साधक पथिक।

इस प्रकार कुम्भनदास वेसुध और विह्वल दशा में अहर्निश श्यामसुन्दर की सौन्दर्य-सुधा का निर्निमेष दृष्टि से पान करते हुए छके रहते हैं। किसी रूप-ठगी, थकी-सी, चित्र की लिखी-सी व्रजाङ्गना के शब्दों में ही उनके रस-लोभी हृदय को परखिये—

लोचन मिलि गए जब चार्‌यौं।
व्है ही रही ठगी-सी ठाढ़ी उर अंचर न संभार्‌यौ॥
अपनें सुभाइ नंदजू कें आई सुदर स्याम निहार्‌यौ।
टगटगी लगी चरन गति थाकी जिउऽव टरत नहिं टार्‌यौ॥
उपजी प्रीति मदनमोहन सों घर कौ काज विसार्‌यौ।
'कुंभनदास' गिरिधर रसलोभी भलौ तैं आरज पथ पार्‌यौ॥
[पद स. १९८]

व्रजराजकुमार नन्दनन्दन की रूप-माधुरी में मोहिनी और मादकता ही ऐसी है कि-एक पल भी जिसने उसका आस्वाद लिया-'आखें चार' हुई कि वह अपना आपा भूल जाता है-नेत्र और चरणों की गति तो ठीक, हृदय भी उसमें अटक कर, ठिठक कर रह जाता है। फिर कैसा गृह-काज, कैसा 'आरज-पथ' और कैसी लोक-लाज!!

कुम्भनदास में भी यही रूपासक्ति है। उनके प्रभु अपरिमित सौन्दर्य-निधि हैं—ऐसी निधि जो अनुपल नवीन, विलक्षण, और विकासमान है। अङ्ग-प्रत्यङ्ग की अनुक्षण नूतन कान्ति, उनके सौभाग्य-सीमा की परिमिति तथा इयत्ता बताने में उनकी दृष्टि और कल्पना असमर्थ है—उनकी ही थकित वाणी में—

छिनु-छिनु बानिक और हि और।
जब देखों तब नौतन सखि री दृष्टि जु रहति न ठौर॥

कहा करौं परिमिति नहीं पावत बहुत करी चित दौर।
'कुंभनदास' प्रभु सौभग सींवा गिरिवरधर सिरमौर॥
[पद स १५१]

अनन्त सृष्टि के अणु-अणु के सौन्दर्य-द्रष्टा कवि की उन्मुक्त उड़ान भरी कान्त-कल्पना भी इस माधुर्य के आगे पङ्गु और पराभूत हो गयी!

ऐसे निस्सीम नित-नूतन लावण्य को भला कवि का तरल हृदय कैसे भूल सकता है? मिलन और वियोग दोनों ही क्षणों में उस रूप-मदिरा को पीकर उसकी आँखों में प्रेमोन्माद छलकता रहता है-हृदय से वह माधुरी मूर्ति किसी भी क्षण टाले नहीं टलती। वियोग के क्षणों का रूप तो और भी सजल और मञ्जुल हो जाता है। प्राणों के अन्तरतम से उठी हुई मूक पीड़ा की कसक सम्पूर्ण अङ्गों में एक सिहरन और कम्पन पैदा कर देती है। किसी विरहिणी व्रजाङ्गना की गद्‌गद् वाणी में ही कवि के विरहाग्नि-सन्तप्त उद्‌गार सुनिये—

कहा करौं उह मूरति मेरे जिय तें न टरई।
सुंदर नंद कुँवर के बिछुरें निसिदिन नींद न परई॥
बहुविधि मिलनि प्रान प्यारे की सु एक निमिख न बिसरई।
वे गुन समुझि-समुझि चित नैननु नीर निरंतर ढरई॥
कछु न सुहाइ तलावेली मन, बिरह अनल तन जरई।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर-बिनु समाधान को करई॥
[पद सं. २१४]

कितनी बेबसी है? प्राणप्यारे की 'बहुविधि मिलनि' के बीते मधुर क्षणों की मादक स्मृतियां कवि-हृदय की अलसाई भावनाओं को कितनी गहरी वेदना के साथ अंगड़ाइयां लेने को विवश कर देती हैं। आँखों में समाई साँवली सलोनी मूर्त्ति भला नींद को अवकाश क्यों देगी? फिर जहां निरवधि वियोगाश्रु-सलिल का स्रोत उमड़ा करता है और प्रियतम के विरह की धूँ-धूँ ज्वाल-मालाएँ रग-रग, प्राण और आत्मा को झुलसा रही हों, वहाँ 'तलावेली' का क्या कहना? इस उन्मनता का शमन 'लाल गिरिधर' के ही हाथ है! 'सुन्दर नन्दकुंवर' में आकर्षण और उनके गुणों में मोहिनी ही ऐसी है। प्रेम की इसी तीखी पीर का अनुभव करके ही तो वे प्रेम-बटोहियों को सावधान कर रहे हैं—

प्रीति तौ काहू सौं न कीजै ।
बिछुरत कठिन परै मेरी माई कहु कैसें कै जीजै ॥
रति-रति कै करि जोरि-जोरि कै हिलिमिलि सरबसु दीजै ।
एक निमिष सम सुख के कारन जुग समान दुख लीजै ॥
'कुंभनदास' इह जानिबूझि कै काहे बिखु जल पीजै ।
गोवर्द्धनधर सब जानतु हैं उपजि खेद तन छीजै ॥
[पद सं. २२२]

युग-युग की सञ्चित अनुराग-निधि को-हृदय की सरल और तरलतम भावनाओं को, जिन्हें कण-कण करके सहेजा गया है, मिलन के अल्पकालीन क्षणों में सर्वस्व-समर्पण के रूप में अपने प्रियतम को सौंप देना और दूसरे ही क्षण में उन्हें बिछोह के शून्य रिक्त पलों में हार देना-कितनी विडम्बना है । एक पल के सुख के बदले में युग-युगीन अतृप्ति और पीड़ाओं को समेटना है-अमिय तुल्य मिलन का अवश्यम्भावी परिणाम है, वियोग-विष की जलन-यह जानते हुए भी, सर्वाङ्ग में उस जलन और तड़पन की टीस देनेवाले विषाक्त विरहानल को अङ्गीकार कर लेना कितना करुण और जीवन के अस्तित्व के लिये घातक हैं । कुभनदास-से भुक्तभोगी ही अनुभव कर सकते हैं ।

किन्तु इन भोले प्रेमियों से कोई पूछे कि-फिर जान-बूझ कर इस ' बिखु-जल ' के लिये तुम्हारा हृदय क्यों लालायित है ? " प्रीति सौं काहू सौं न कीजै " के शब्दों में उन्मुक्त उद्घोष या निषेधादेश करनेवाले भक्त के हृदय में फिर भी उस ' सुन्दर स्याम मनोहर, के साथ केलि की एक अतृप्त लालसा होती है-कितनी विलक्षण और अनिवार्य स्वाभाविक स्थिति है-

कब हौं देखि=हौं भरि नैननु ।
सुन्दरस्याम मनोहर इह अँग-अँग सकल सुख दैननु ॥
वृन्दावन विहार दिन-दिन प्रति गोप वृन्द संग लैननु ।
हँसि-हँसि हरखि पतौआ पीवनु बांटि बाटि पय फैननु ॥
'कुंभनदास' किते दिन वीते किये रैनि सुख सैननु ।
अब गिरिधर बिनु निसि अरु वासर मन न रहत क्यों हू चैननु ॥
[पद सं ३३४]

कितनी बेचैनी, कितनी तन्मयता है ! वृन्दावन-विहारी की विविध लीला-माधुरी के दर्शन के लिये नेत्रों में कितनी उत्कट प्यास है-आकुल उत्कण्ठा है ! एक-एक निमिष कोटि-कोटि युग-कल्पों के समान बीत रहा है-उन गिरिधर सुन्दर-श्याम के बिना। कवि की उस वियोग-कथा की मार्मिक पीड़ा को कौन जान सकता है ? ये विष के बुझे विरह-बाण मर्मस्थल को सीधा ही बेधते हैं और विरही का रग-रग उनकी चोट से सिहर उठता है। यह वर्णनातीत है-वाणी से परे की अनुभूति है, तथापि एक क्षीण आभास तो इन शब्दों से प्रतिबिम्बित होता ही है—

विरह-बान की चोट जु जाहिं लागै सोई जानैं।
भोगइये ते समुझि परै जिय कहैं कहा मानैं॥
जैसें कांड सु बधिक चनकटि होत हैं बिखु सानैं।
मरमत नख सिख अंग ततछिनु थोरेहु तानैं।
होत न चैनु निमिष निसि बासर बहुत जलद आनैं।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर बिनु बिथा कौन मानैं॥
[पद सं. ३३६]

इस प्रकार उपरिनिर्दिष्ट कतिपय पदों के भाव-विश्लेषण से सहृदय जन समझ सकेंगे कि ब्रजलीला के रसिक-भक्त, कवि-हृदय कुंभनदासजी काव्य और भक्ति के क्षेत्र में, गीति-लालित्य के तरलित आधार पर अष्टछाप के कवियों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। विप्रलम्भ शृंगार से उनका काव्य विलसित है, जिसमें तदाकार, तद्रूप होकर वे अपने प्रियतम श्याम-सुन्दर के सौन्दर्य-सुधा-सागर में सतत सर्वदा अवगाहन, निमज्जन करते रहते हैं।।

विषय-सूची

❀ ग्रन्थ के उत्तरार्ध में पदसंख्या के अनुसार ही भावार्थ दिया गया है।

[मूल पदों की क्रमसंख्या और विषय के अनुसार भावार्थ देखा जा सकता है]

सेठश्री साकरलाल बालाभाई (अहमदावाद) ना
जय श्रीकृष्ण
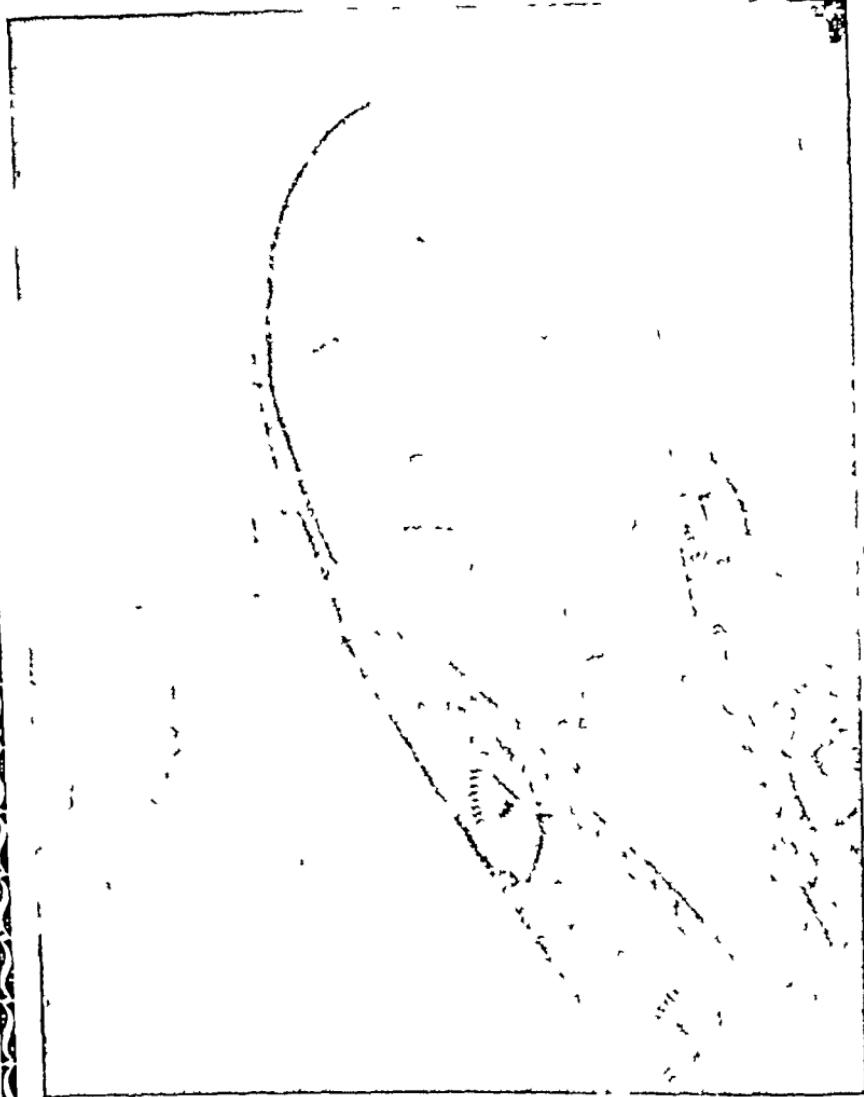
अ. सौ. चंपाबेन सेठश्री साकरलाल बालाभाईनां धर्मपत्नी
(अहमदाबाद) ना
जय श्रीकृष्ण

'कुंभनदास'

वर्षोत्सव

मंगलाचरण—

१

[श्रीराग

जयति जयति श्रीहरिदासवर्य-धरने,
वारि-वृष्टि निवारि, घोप-आरति टारि
देव-पति-अभिमान-भंग करने ॥

जयति पट पीत दामिनि रुचिर, वर मृदुल अंग
सांवल सजल जलद-वरने ॥
कर अधर वेनु धरि, गान कलरव सुशब्द,
सहज व्रज-जुवतिजन-चित्त हरने ॥

जयति वृंदाविपिन-भूमि डोलनि,
अखिल लोक-वंदिनि अंवुरुह चरने ॥
तरनि-तनया-विहार नंदगोप-कुमार,
'दास कुंभन' नवय तवसि सरने ॥

जन्मसमय (बधाई) —

२　　　　[कान्हरो

भयो सुत नन्द कें चलो व्रज-जन सबै
होत मंगल, सकल जगत कौ तिमिर मिटि गयो
तन कौ त्रिविध ताप सुन्यो कानिन जबै ॥
उडत नवनीत, दूध, दधि, हरद, तेल
बहि चली आतुर सिंधु सरिता सबै ॥
'दास कुंभन' प्रगट गिरिवर-धरन
यहै सुख कोउ दिन भयो नाहीं कबै ॥

३　　　　[रायसो

सब व्रज अति आनँद भयो प्रगटे गोकुलचन्द ।
भाग्य सोहागिनि जसुमती पुन्य-पुंज बाबा नंद ॥
भादों कृष्ण पक्ष आठें निशा रोहिणी नछत्र बुधवार ।
व्रज-जन करत कुलाहल निरखत नंद-कुमार ॥
गृह-गृह तें गोपनि सबै आए राइ-दरबार ।
नाचत हेरी गावहीं, ग्वाल करत किलकार ॥
हरद, दूध, दधि माटनि बहुविधि लै जु उठाइ ।
सब मिलि पकरत नंदै हरषित नाच नचाइ ॥
सुन्दरी गान करति सबै सुढार मिल्यो है समाज ।
ताल, परवावज बाजहीं तूर, नगारे बाज ॥
कान परत सुनिये नहीं रह्यो घोष सब गाज ।
व्रज-जन देत असीस हैं, 'जियो ढोटा व्रजराज' ॥
जाचक जुरि सब आए जै-जै शब्द उचार ।
देत दान सनमान सों कीन्हे सब सत्कार ॥
फूले आनँदराइजू, फूली जसुमति माइ ।
गोद लिए हुलसति बडी कमलनैन सुखदाइ ॥

फूली श्रीजमुना वहै, फूले श्रीगिरिराइ।
फूल्यौं श्रीवृंदा-विपिन व्रज-मंडल हरषाइ ॥
फूले कीर्ति, वृषभानजू प्रगटी सुंदर जोर।
'दास कुंभन' की जीवनि जियो राधा नंदकिशोर ॥

पलना —

४ [रामकली]

पलना झूलत गिरिधरलाल।
जननी जसोदा बैठी झुलावति, निरखति वदन रसाल ॥
बालक-लीला गावति, हरषित देति करनि सों ताल।
'कुंभनदास' वड भागिनि रानी वारति मुक्ता-माल ॥

५ [विलावल]

रतन खचित कंचन कौ पलना, ता-मधि झूलत गिरिधरलाल।
जसुमति हरषि झुलावति, गावति सुंदर-गुन दै-दै कर ताल ॥
करि गुलगुली हँसावति हरि कों, कवहुंक मुख सों चुंवति गाल।
'कुंभनदास' किलकत नँद-नंदन अंगुरी गहिके सिखवति चाल ॥

छठी —

६ [धनासिरी]

आजु छठी जसुमति के सुत की चलो वधावन जैए माई!।
भूषन वसन साजि, मंगल लै सकल सिंगार वनाई ॥
भलिय वात सव करी वेद-विधि सुत जायो नँद-रानी।
पुन्य पूरन फल प्रगट भयो है, निरखति नैन अवानी ॥
सव व्रज में सुख-रास भयो है गृह-गृह होत भलाई।
'जुग-जुग राज करो गोकुल में नंद-सुवन सुखदाई ॥'
पूरन काम भए निज-जन के जीवेंगे जसु गाई।
'कुंभनदास' प्रभू की जननी निरखि-निरखि सुख पाई ॥

राधाष्टमी (वधाई) --

७ [सारंग]

राधेजू[1] सोभा प्रगट भई ।
वृंदावन गोकुल-गलियनि में सुख की लता छई ॥
प्रति-प्रति[2] पद संकेत गोवर्धन, उपमा उपजति नई ।
'कुंभनदास' गिरिधर आवहिंगे आगें पठै दई ॥

८ [गधार]

प्रगटी नागरि रूप-निधान ।
निरखि-निरखि फूलति व्रज-वनिता नांहिन उपमा कों आन ॥
उपमा कों जे जे कहियतु हैं ते जु भए निरवान ।
'कुंभनदास' लाल[3] गिरिधर की जोरी सहज समान ॥

९ [देवगधार]

यह सुख देखो री ! तुम माई !
बरस गांठि वृषभान-लली की बहुरि कुसल सों आई ॥
आगम के दिन नीके लागत सबहिन मन सचु पाई ।
धन बड भाग रानी कीरति के पुन्य-पुंज-निधि पाई ॥
प्रगटी लीला सकल या व्रज में आनंद-वेलि बढाई ।
'कुंभनदास' की जीवनि राधे ! जसुमति-सुत-सुखदाई ॥

श्याम-सगाई—

१० [धनाश्री]

परम कुलाहल होइ श्रीवृषभान कें [टेक]
प्रगटी कुवँरि श्रीराधा जाकें आनंद-निधि सुखदाई ।
सुनि गोपी मन मुदित भईं अति घर-घर बजति वधाई ॥ श्रीवृष० ।

---

१ हो गवलि राधा प्रगट भई (व ६/४) श्री राधा सोभा० (वं १४/२)
२ रति-पति (व २/२) ३ गिरिधर कारन यह जोरी (वं २/४)

भवन-भवन प्रति कलस विराजित, बंदन-माल बंधाई।
साजि सिंगार चलीं व्रज-वनिता भान-भुवन में आईं ॥ श्रीवृष० ।
कीरति-सुता-वदन विधु देख्यो, निरखि-निरखि सुख पाई।
प्रेम मगन गावति वृज-सुंदरि प्रफुलित मन हरषाई ॥ श्रीवृष० ।
नन्दीस्वरतें नंद जसोदा गोपनि न्योंति बुलाए।
लली-जन्म सुनि नँद अति आनंदे कीन मनोरथ मन भाए॥ श्रीवृष० ।
बल मोहन कों उबटि न्हवाए रुचि-रुचि कियो सिंगार।
पट भूषन नौतन पहिराए शोभा बढी अपार ॥ श्रीवृष० ।
पीत चोलना श्याम-कटि सोभित पहिरेंपीत झंगुलिया सुदेस।
पीत कुलह सिर ऊपर राजति मन हरलियो नरेस ॥ श्रीवृष० ।
पग नूपुर रुनझुन करें, कटि छुद्र घंटिका सोहै।
मुक्ता के आभूषन ऊपर कुंडल-झलक सब जग मोहै ॥ श्रीवृषभ० ।
बॉहनि बाजूबंद, कडा जटित कर, अंगुरिनि मुदरी राजै।
जगमगात हीरा ज्यों चिबुक छवि निरखत रवि लाजै ॥ श्रीवृष० ।
मोतिन लर तुर्रा सिर सोहत, लटकि, करें मृदु हास।
कर्यो सिंगार विविध विधि नित मन बढत हुलास ॥ श्रीवृष० ।
चले कुॅवर लै बरसाने कों प्रफुलित मन व्रज-राज।
व्रज-जन व्रज-रानी गोपिनि लै निकसी मंगल साजि समाज ॥ श्रीवृष० ।
प्रेम मुदित गावत गीतनि सब व्रज बरसाने आए।
श्रीवृषभान कीरति रानीजू अति आदर करि पधराए ॥ श्रीवृष० ।
कुशल सबै पूंछत नँदजू की निरखि नैन भरि आए।
देखो या बालक की लीला कोटिक विघन नसाए ॥ श्रीवृष० ।
गिरि-प्रताप तें सब सुख लहियतु, जहँ हरि प्रगट दिखावत रूप।
हमरी लली, तुम्हारे लालन यह जग जाए परम अनूप ॥ श्रीवृष० ।
तुम जो-हमारे भवन पधारे भाग्य बडो है आज।
बरसानो रमणीक देखियतु निरखत सकल समाज ॥ श्रीवृष० ।

भीतर भवन पधारिये नंदजू कनक-पटा बैठाए।
कीरति कन्या महरि-गोद दै निरखि-निरखि सचु पाए ॥ श्रीवृष० ।
गोद लियो जसुमति के सुत कों निरखि नैन सिराईं ।
अपनी कुँवरि जसुमती-गोद दै दोऊ उनकी लेत बलाईं ॥ श्रीवृष० ।
सुनो महरि! आपुन बडभागिनि, देखो- एसी निधि पाई ।
विधना ने आपुन दोऊ जन की तन की तपत बुझाई ॥ श्रीवृष० ।
करि भोजन की पांति सबनि कों कनक-पटा बैठाए ।
ढिग-ढिग धरीं सबनि कों झारी जमुनोदक भरि लाए ॥ श्रीवृष० ।
कंचन थार अरु स्फटिक कटोरा, प्रथक्-प्रथक् करि राखे ।
परोसनहारि पुरोहित रस-हित अमृत वचन मुख भाखे ॥ श्रीवृष० ।
बूंदी सेव मनोहर लडुआ, मगद और मोहनथार ।
खुरमा, खाजा, जलेबी, फेनी, घेवर घृत तरेजू अपार ॥ श्रीवृष० ।
गूंझा, मठरी, सकरपारा, तवापुरी रसभीनी ।
उडद दार पूठन भरि हींग देकरि कचौरी कीनी ॥ श्रीवृष० ।
उपरेठा कों खांड पागिके चन्द्रकला रुचि लाई ।
सिद्ध करी रस घृत सों पूरित जेंवत अति सचु पाई ॥ श्रीवृष० ।
खासापूरी, खरमडा, खोवा बासोंदी और मलाई ।
विविध भांति पकवान बनाए साजी बहुत मिठाई ॥ श्रीवृष० ।
कनक बरन बेसन व्यंजन अति कहाँ लगि करों बडाई ।
विविध भांति मेवा जु परोसे आम, अमरस अधिकाई ॥ श्रीवृष० ।
खटरस केउ प्रकार अनगिनत, कहत न आवै पार ।
जेंवत सकल समाज-सहित सुन्दर ब्रज-राजकुमार ॥ श्रीवृष०
जेंइ रहे तब सखरी मंगाई अति रस घृत-भीने ।
दार, कढी अरु पिठोर पकौडी, पापर अति सरसीने ॥ श्रीवृष० ।
भेंडी, परवर और साक सब-भाजी हींग छोंकारी ।
सो जेंवत रुचि उपजी सबकें, स्वाद बढ्यो अति भारी ॥ श्रीवृष० ।

भोजन कियो सबन सुख मानी, सब मिलि अँचवन कीनो ।
हस्त अँगोछि बीडी कर लीनी पान खात सुख दीनो ॥ श्रीवृष० ।
इहि विधि छप्पन भोग कियो सब भयो जु मन-आनंद ।
कुवँर कुवँरि मुख चन्द निहारत कटत सकल दुख-दंद ॥ श्रीवृष० ।
श्रीवृषभान और नंद सब मिलि महामहोच्छव कीनो ॥
नाचत, गावत विवस भए सब प्रगट्यो प्रेम प्रवीनो ॥ श्रीवृष० ।
भान कहत रानी कीरति सों-हरषि कुवँरि की करो सगाई ।
नन्द-गृह बालक अतिसय सुन्दर जोरी परम सुहाई ॥ श्रीवृष० ।
इतनी सुनत कीरती कुवँरि कों जसुमति-गोद बैठाई ।
जसुमति लालन कीर्ति-गोद दै कुवँरी मुदित खिलाई ॥ श्रीवृष० ।
कीरति कही- महरि ! यह लली लला की सगाई कीजै ।
हिलि मिलि के नैननि कौ यह सुख सदा निरंतर लीजै ॥ श्रीवृष० ।
जसुमति कह्यो नंद के आगें- कीरति श्रीवृषभाने ।
सुनत सगाई की बातनि सों आनंद उर न समाने ॥ श्रीवृष० ।
कीरति बोलि सबै व्रज-नारी व्याह के गीत गवाए ।
सुनि सबहिन मन हरप भयो अति भए मनोरथ मन-भाए ॥ श्रीवृष० ।
आज्ञा लै जु चले नँद गृह कों कान्ह कुँवर बल-संग ।
खेलत ख्याल करत गैलनि में मन में बढी उमंग ॥ श्रीवृष० ।
पहुंचे जाइ नंदीस्वर कों वृषभान पठायो करन सगाई ॥
स्यामसुंदर की करी सगाई हरपित वधू वृद्ध बुलाई ॥ श्रीवृष० ।
देति असीस सबै मिलि जुवती- सुबस बसो व्रज-राई ।
चिरजीवो वृषभान-सुता अरु स्यामसुंदर सुखदाई ॥ श्रीवृष० ।
को बरनै यह नंद-कुमार गुन लीला ललित अपार ।
रोम-रोम रसना करो, कोउ कवि कहत न पावै पार ॥ श्रीवृष० ।
लाडिली लाल-पदरज उर राखि गावै 'कुंभनदास' ।
मागों निरंतर दोउ कर जोरि सदा रहों चरननि के पास ॥ श्रीवृष० ।

दान-प्रसंग—

११ [देवगंधार]

गोपीप्रति प्रभुवचन—

हमारो दान दै गुजरेटी !
नित तू चोरी बेचति गोरस आजु अचानक भेटी ॥
अति सतराति क्यों बछूटेगी वडे गोप की बेटी ।
'कुंभनदास' गोवर्धन-धारी भुज ओढ़िनी लपेटी ॥

१२ [देवगंधार]

आजु उहै बन जाइवौ ।
उह मारग आवति दधि बेचन, छीनि सबै दधि खाइवौ ॥
उहै बन घास बहुत देख्यो है, तामें गांइ चराइवौ ।
'कुंभनदास' गिरिधर मोहिं कह्यो राधा-रंग रंगाइवौ ॥

१३ [धनाश्री]

आजु दधि देखों तेरौ चाखि ।
कहे धों मोलु कितै बेचैगी, सत्य वचन मुख भाखि ॥
जोई तू कहै सोई हौं दैहों, संग-सखा सब साखि ।
जो न पत्याइ ग्वालिनी हम कों कंठसरी लै राखि ॥
लै संग चले घर दाम देन कों, तब हि [1]जनायो कटाखि ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्धन-धर सरवसु दियो तताखि ॥

१४ [सारंग]

दान दै रसिकिनी ! चली क्यों जाति है ।
सुनो तुम ग्वालिनि ! आइ मेरी बात
पिए दधि दूध विधि दे ग्वालनि अघाति है ॥

१ जनायो नेकु कटाखि (क)

नैन की सैन सों मीन लज्जित भए
पहिरी तन कंचुकी लिपटी गाति है ॥
पगनि नूपुर बजें, मांग मोतिनि सजें,
भरे जोबन जोर, अंग न समाति है ॥
बैन मुख सों बोल, नेकु घूंघट खोल,—
यह सुनि ग्वालिनी मन हिं मुसकाति है ॥
कुचनि अंचल ढांकि, लगी मोतिनि पांति
भरे रस कलस दोउ, मदन ललचाति है ॥
नेकु रस चाहिए अंचल के कलस कौ
कृपा करि प्यारी ! अब कहा कछु बाति है ॥
स्यामसुंदर लह्यो 'दास कुंभन' कह्यो
सोंह ब्रजराज की, दान-दधि खाति है ॥

१५ [सारंग]

गोपीप्रभुप्रति वचन —

जान व देहु, छांडहु मेरो अंचलु लालन! होति है अबार ।
घर तें चलें आजु बडी बेर भई मोहि सुंदर नंद-कुमार ! ॥
कालि दधि जमाइ भली भांति सों तुम कों लाइहों बडी सबार[1] ।
'कुभनदास' प्रभु गिरिवर-धर ! तुम ह्यांई बैठे रहियहु इहै विचार ॥

१६ [सारंग]

काहू तुम चलन न देत इहि बटियां ।
रोकत आइ स्याम घनसुंदर ! निकसत हीं गिरि-घटियां ॥
तोरत हार, कंचुकी फारत, मांग निहारत पटियाँ ।
पकरत बांह मरोरि नंद-सुत ! गहि फोरत दधि-चटियां ॥
'कुंभनदास' प्रभु कब दानु लीनों ? नई बात सब ठटियाँ ।
गिरिधर ! पांइ परिये[2] तुम्हारे, जानत हो सब गटियां ॥

१ पूजिये (क) २ बडी बार (ख)

१७ [सारंग]

इह तौ एक गांउ कौ वास ।
केतकु लै बचिये सखि ! दिन-प्रति निमिख न छांडत पास ।।
इह घाटी पैंडो सब ब्रज कौ, नांहिन और निकास ।
नँद-नंदन कौ सहज थान ह्यो, बालक-संग विलास ।।
कबहुँक भाजन लेत छीनि हठि, कबहुँ करत दधि-नास ।
कबहुँक भुज गहि चलत कुंज लै, इह गति कहिये कास ।।
बोलि न सकौं सकुच अति जिय में, लोक-लाज कौ त्रास ।
गिरिधर लाल ! जानि पाए हो, जानत 'कुंभनदास' ।।

१८ [बिलावल]

अरी ! इह[1] दान जु लैहैं रस गो-रस कौ, यही हमारौ काज ।
हम दानी तिहुं लोक के, चारों जुग में राज ।।
बहुत दिननि की गई अछूती दान हमारौ भाज ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धनधर वृन्दावन में गाज ।।

१९ [बिलावल]

गोपीप्रति गोपीवचन :—

यह कौन है री ! याहिं दान न देहैं गोवर्धन के ग्वैंडे ।
हाटनि, गामनि, खेत, मडैया कान्हर डोलत ऐंडे ।।
बाप देत कर कंस रजा कों, पूत संगाती डोलत मैंडे ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर चले जाउ किन पैंडे ।।

१ इह दान, [ख]

२० [देवगंधार]

मदन गोपाल हठीलो री ! माई !
कौन वेर भई हम ठाढी हैं, रोकै कुंवर कन्हाई ॥
दान दिये विनु जान न दैहों तुम्हें वृषभान-दुहाई ।
काहे कों रारि वढावति सुंदरि ! देहु हमारो दान चुकाई ॥
दान ही दान कहा कहो मोहन ! इह कैसी वरियाई ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर मुसकि ठगौरी लाई ॥

२१ [देवगंधार]

मथनियां आनि उतारि धरी,
दान अटपट मांगत ढोटा दोउ कर जोरि खरी ॥
जव नँदलाल चीर गहि झटक्यो, तव मैं वहुत डरी ।
'कुंभनदास' प्रभु दधि- वेचन की विरियां जानि टरी ॥

२२ [सारग]

दान व्रजराज कौ लाडिलौ लेत है ॥
धरें सिर माट दधि चलो वाही डगर
व्है इक ठौर, करत संकेत है ॥
गई ग्वालिनी प्यभरि सांकरी खोरि,
तहां देखे स्याम ठाढे वात कछु कहत हैं ॥
हँसी मुख मोरि जव एक अंचलु गह्यो,
छांडु अंचल अवै दान तोहिं देत हैं ॥

आइ पूंछत लाल कहां की ग्वालिनी जाति मिस ही
निकरि, कहति हम सवै वृषभानपुर ही वसत हैं ॥
'दासकुंभन' प्रभु स्यामसुंदर ! सकल पियो-
दूध, दधि, तहां ग्वाल संग वहुत लहत हैं ॥

दानलीला —

२३ [विलावल]

गोकुल की[1] व्रज-नारि दह्यो नित वेचन आवै ॥
भूषन विविध सिंगार वनी अति परम सुहावै ॥ (टेक)
एक तें एक विराजहीं सोभा वरनि न जाइ।
बन्यो कुंज फूल्यो सखी ! हो रंग-रस धरयो है वनाइ ॥१॥
कहति व्रज-नागरी ॥

प्रात उठे नँदलाल सखा सब सैन वुलाए।
सुनी (है) दान की बात, सकल आतुर उठि धाए ॥
पैंडो रोक्यो जाइके कालिंदी के तीर।
नवल कुंज सुख-दाइका हो तहां वैठे बल-वीर ॥२॥
कहति[2] व्रज-नागरी ॥

बन में देखे स्याम सकल मिलि भईं इक ठाईं।
लागीं करन बिचार अवै कहा करि हो माई ! ॥
या मार्ग्ग तुम छांडिके और हि मारग जाहिं।
इहि[3] ढोटा है नंद कौ, सो छीनि-छीनि सब खाहिं ॥३॥
कहति व्रज-नागरी ॥

सुनिके धाए ग्वाल रोकिके ठाढी कीन्ही।
कहां जाहुगी भाजि, दुहाई नँद की दीन्ही ॥
दान कृपा करि दीजिये, छांडो अधिक सयान।
लाग हमारौ लेहु अब, आली ! राखों तेरौ मान ॥४॥
कहत नंद-लाडिलौ ॥

कब तुम लीन्हो दान, कबै तुम भए जु दानी ?
सुनी न कब हूं बात, जाइ वूझौ नँद-रानी ॥
उदर वसे तुम देवकी, आए गोकुल माजि।
जीए[4] जूठौ खाइके हो अब क्यों नहिं आवै लाजि ॥५॥
कहति व्रज-नागरी ॥

१ तें २ चली ३ इहां तो ढोटा नद. ४ अब ही जेहो खाईके (३६/४).

जोवन कौ अति गर्व ग्वालि ! तू बोल सँभारी ।
दही, दूध के मद सु देति है हम कों गारी ?
नंद-दुहाई करत हों, लेउं सबनि कों लूटि ।
भूषन, बसन छिडाइके हो हार[१] सबनि के टूटि ॥६॥
कहत नंद-लाडिलौ ॥

लेत लूट कौ नांउ, कहा कोउ तेरी चेरी ?
कब लीन्हो तुम दान ?, कबै जु दुहाई फेरी ?
सिर पर राजा कंस है, बोलो बचन बिचारि ।
जो अब कें सुनि पाइ है तो दुख पावै नँद-नारि ॥७॥
कहति ब्रज-नागरी ॥

तुम हो ग्वालि ! गॅवारि कहा मोकों समुझावै[२] ?
सिव, विरंचि. सनकादि निगम मेरौ अंत न पावै ॥
भक्तनि की रच्छा करों दुष्टनि कौ संहार ।
कंस केस धरि मारि हों सो धरनी उतारों भार ॥८॥
कहत नंद-लाडिलौ ॥

बंधन पाए मात, तबै क्यों न ऐसी कीन्ही ?
मथुरा छांडी राति, सरन गोकुल में लीन्ही ॥
बहुत बडाई करत हो सोचो मन हिं विचार ।
खाए आधे बेर के हो सो बन[३] में होत कुमार ॥९॥
कहति ब्रज-नागरी ॥

तप करिके नँद-नारि मांगि मो पे वर लीन्हो ।
बचन वेद वपु धारि, आइ गोकुल सुख दीन्हो ॥
तुम कहा जानो बावरी ! हम त्रिभुवन-पति राइ ।
जो[४]ब जलस्थल में बसै, सो घट-घट रह्यौ समाइ ॥१०॥
कहत नंद-लाडिलौ ॥

१ ओर सबनि के टूटि (३६/४). २ डर पावै (२२/१२) ३ सो बत होत (बंध ३६/४)
४ जीवजल (पाठ)

जो-तुम ऐसे कान्ह ! करत क्यों घर-घर चोरी ।
मैं झगरी जब जाइ लियो पीताम्बर छोरी[1] ॥
तनक दही के कारने बांधे जसुमति मात ।
हम निज बंध छुडावहीं, सो बोलत कहा इतरात ? ॥११॥
कहति व्रज-नागरी ॥

नल कूवर के हेत जानि हम आपु बंधाए ।
तोरे तरुवर जाइ, वचन मुनि सत्य कराए ॥
मन में सोचो राधिका ! चीर-हरन की बात ।
नगन जमुना तें निकसिके सो आईं हा हा खात ॥१२॥
कहत नंद-लाडिलौ ॥

ढीठ भये तुम कान्ह ! बचन बोलत जु कठोरे ।
वन हिं चरावो गांइ, फिरो ग्वालनि-संग दोरे ॥
वा दिन विसरे सांवरे ! छाक हिं चुनि-चुनि खात ।
ऐंडे-ऐडें जात हो सो-बोलत कहा इतरात ? ॥१३॥
कहति व्रज-नागरी ॥

अवनि-असुर अति प्रबल मुनीजन-कर्म छुडाए ।
गऊ संतनि के हेत, देह धरि व्रज में आए ॥
जेते संगी ग्वाल हैं, ते ते सब हैं देव ।
हमनि गर्व इन्द्र कौ हरयो सो करत तुम्हारी सेव ॥१४॥
कहत नंद-लाडिलौ ॥

वन में बोलत बोल कहा अब मोहि सुनावै ?
जानों तेरी रीति कहा बलवंत कहावै ॥
जो एसे हो सांवरे ! तो काटौ वसुदेव-फंस ।
सात बालक जब मारियों हो तो क्यों न मारथौ-कंस ॥१५॥
कहति व्रज-नागरी ॥

---
१ फोरी (वध ३६/४)

केसी कंस हिं मारि, बंध वसुदेव छुडाऊं ।
उग्रसेन कों राज देउं, कर चँवर दुराऊं ॥
भुवन चतुर्दस गावहीं अहनिसि अतुल प्रताप ।
मल्ल कुवलया मारि हों, सो तोरोंगो गहि चाप ॥१६॥
कहत नंद–लाडिलौ ॥

कहा अधिकाई देत कान्ह हौं नीकें जानों ?
जाति–पांति–कुल–रीति कछू हम तें नहिं छानों ॥
लरकनि के संग खाइके नांउ धर्‍यो है ग्वाल ।
अब कैसें दधि खाउगे, सो– हम तो हैं व्रज–बाल ॥१७॥
कहति व्रज–नागरी ॥

दधि–भाजन लेऊं छीनि कंठ–मुकावलि तोरों ।
धरों पानि पर पांइ भलें नव तनिया तोरों ॥
तुम ग्वालिनि वृषभान की, हम हैं नंद–कुमार ।
जाऊ बल पर आई हो– सो तापे जाउ पुकार ॥१८॥
कहत नंद–लाडिलौ ॥

हम हैं जाति अहीर दह्यो नित बेचन आवें ।
सुन्यो न दधि कौ दान कहा अब नई चलावें ? ॥
तुम अनवीगे सांवरे ! रोकत हो बन मांहि ।
या मुख सों दधि खाउगे, सो– बैठि कदम की छांहि ? ॥१९॥
कहति व्रज–नागरी ॥

ग्वालि ! नचावति नैन–सैन सूधे नहिं बोलति ।
हम अनवीगे नांहि, तुम हि अनवेगी डोलति ॥
जब तें व्रज में हौं भयो, तब तें लीन्हो दान ।
जाइ कहो व्रजराज सों हो दूरि करो अभिमान ॥२०॥
कहत नंद–लाडिलौ ॥

टेढी बांधी पाग स्याम! टेढे रहो ढाढे।
रोकत हो व्रज-नारि रावरे घर के वाढे॥
जाके आसरे पाइके भले बने हो? नाथ!
सखा भाजि सब जाइंगे तेरे कोउ न आवै साथ॥२१॥
कहति व्रज-नागरी॥

एसो भूपति कौन? जो-हम पे हाथ उठावै।
बंदीजन जुग वेद पढै, द्वारे नित गावै॥
ब्रह्म-रूप उतपति करों, रुद्र-रूप संहार।
विष्णु-रूप रक्षा करों, सौ मैं हों नंद-कुमार॥२२॥
कहत नंद-लाडिलौ॥

जो-तुम एसे ब्रह्म हमारे छींके ढूंढो?
घर-घर माखन खाइ कान्ह! तिरियनि-संग खूंढो॥
तुम हिं दोस नहिं सांवरे! जाए काली रात।
वन में ब्रह्म कहावहीं सो-क्यों तजे पिता अरु मात?॥२३॥
कहति व्रज-नागरी॥

स्वर्ग, मर्त्य, पाताल सबै मेरी ठकुराई।
हौं वृंदावन-चंद रह्यो सब मांझ समाई॥
तू जो वदति है बावरी! मेरो कहा है नांउ।
गज[1] पिपीलिका आदि दै हो सब ही मेरौ ठांउ॥२४॥
कहत नंद-लाडिलौ॥

दधि-खैवे की बात मांगि सुधेई लीजै।
काहे करत विवाद लाल! ऐसी नहिं कीजै॥
जो-ऐसे बलवंत हो तो मथुरा लैन किन जाहु?
कंस मारि घर आहुगे हो तब मेरौ दधि खाहु॥२५॥
कहति व्रज-नागरी॥

---
[1] गजद पछद विपील ये हो सो है मेरौ ०। (पाठ)

सुनु राधे ! नवनारि ! जबै हौं मथुरा जैहौं ।
करनो है वहु काज, फेरि गोकुल नहिं ऐहौं ॥
कौतकु देख्यौ चाहही, अबहिं दिखाऊं तोहिं ।
अबकौ गयो नहिं आइ हों फिरि देखौ नहिं मोहिं ॥२६॥
कहत नंद-लाडिलौ ॥

काहेकों मथुरा जाहु, वैन ऐसे नहिं बोलो ।
हम तुम रहें समीप सदा गोकुल में खेलो ॥
दही, दूध की को गनै नित प्रति मांगो दान ।
तुम्हें लाज या बात की सो हमें होत अति[1]मान ॥२७॥
कहति व्रज-नागरी ॥

तुम अवला अज्ञान हमारे कृत्य न जानों ।
पठयों काली देस, कियो दावानल पानों ॥
सुरपति व्रज पर कोपियो गिरिवर लियो उठाइ ।
वन हिं वकासुर मारियो हो वालक वच्छ छुडाइ ॥२८॥
कहत नंद-लाडिलौ ॥

मुदित भई व्रज-नारि दह्यो लै आगें राख्यौ ।
ग्वालनि दीन्हों बांटि, रह्यौ[2] प्रभु आपहि चाख्यौ ॥
प्रीति पुरातन जानि मिली वृषभान-कुमारी ।
तन मन अर्प्यौ[3] स्याम कों सो वस कीन्हें गिरिधारी ॥२९॥
कहति व्रज-नागरी ॥ (१)

तुम त्रिभुवन-पति नाथ ! करो सोई जिय भावै ।
तुम्हरे गुन अरु कर्म कछू हम कहत न आवै ॥
सेस सहस्र मुख गावहीं ध्यान धरें त्रिपुरारि ।
हम अहीरि व्रजवासिनी हो क्यों हू करि पावें पारि ॥३०॥
कहति व्रज-नागरी ॥

---

१ अभिमान (३६/४). २ कछू एक आपुन चाख्यौ (३६/४). ३ सौंप्यो (३६/४)

राधाकृष्ण–विवाद परस्पर गाइ सुनावै ।
मन–वांछित फल होइ हिदै के ताप समावै ।।
स्यामा स्याम विराजहीं अवलोकें सुख–रास ।
यह बानिक मो–हिय बसो हो बलि २ 'कुंभनदास' ।।३१।।
कहत नंद–लाडिलौ ।। (?)

दशहरा —

२४ [सारंग]

आजु दसहरा सुभ दिन नीकौ ।
गिरिधरलाल जवारे पहिरत, बन्यौ है भाल कुमकुम कौ टीकौ ।।
मात जसोदा करति आरती, वारति हार देति मोतिनि कौ ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन–धर त्रिभुवन कौ सुख लागत फीकौ ।।

२५

धनि दिन आजु विजय–दसमी कौ ।
ग्वाल बाल सब बनि–बनि आए, नंद–नँदन तामें सोभित नीकौ ।।
लाल पाग झीनी रंग भीनी, ता–मधि लसत मृग–मद कौ टीकौ ।
'कुंभनदास' प्रभु श्रीविट्ठलेस, पूजत वृच्छ समी कौ ।।

रास —

२६

मोहन मधुर कूजत वेनु ।
सरस गति संगीत उघटत, धरत मन नहिं चैनु ।।
जाइ मिलिए प्रानपति सों अंग व्याप्यौ मैनु ।
' दास कुंभन ' लाल गिरिधर, चलीं सब सुख दैनु ।।

२७ [विलावल]

चलहि राधिके ! सुजान, तेरे हित सुख-निधान,
रास रच्यौ कान्ह तट-कलिंद-नंदिनी ॥
निर्तत जुवती-समूह, रागरग अति कुतूह,
बाजति रस-मूल मुरलिका अनंदिनी ॥

वंसीवट निकट तहां, परम रमन भूमि जहां,
सकल सुखद वहत मलय वायु मंदिनी ॥
जाति ईषद् विकास, कानन अतिसय सुवास ।
राका-निसि सरद्-मास विमल चंदिनी ॥

'कुंभनदास' प्रभु निहारि, लोचन भरि घोप-नारि,
नख-सिख-सौन्दर्य काम-दुख निकंदिनी ॥
विलसहु भुज ग्रीवा मेलि, भामिनी सुख-सिंधु झेलि,
गोवर्द्धन-धरन-केलि जगत वंदिनी ॥

२८ [गौंडो-इकताल]

कमलनयन प्यारे अवघर तान जानत ।
अलग सों लग, अरु राग सों रागिनि, वहुत अनागत आनत ॥
रसिक-राइ सिर-मौर, गुनिनि मँह गुनी तुम हिं जानत ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धनधर हरत लाल सब कौ मन, जब गानत ॥

२९ [श्रीराग-चर्चरीताल]

गोपाल[1] तरनि-तनया-तीर रास-मंडल रच्यौ,
अधर कल मधुर सुर[2] वेनु बाजै ॥
जुवति-जन जूथ-संग नृत्तत अनेक रंग,
निरखि अभिमानु तजि काम लाजै ॥

१ तरनि तनया-तीर (क) २ धुनि (क).

स्याम तनु पीत कौसेय, सुभ पद नखनि–
चंद्रिका सकल भुव–तिमिर भाजै ॥
ललित अवतंस, भ्रुव धनुष, लोचन चपल–
चितवनि जनु मदन–बान साजै ॥
मुखर मंजीर, कटि किंकिनी कुनित रव
बचन गंभीर जनु मेघ गाजै ॥
'दास कुंभन' नाथ हरिदासवर्य–धर
नख–सिख सुरूप अद्भुत विराजै ॥

३० [केदारौ]

पूरत मधुरे[1] वैनु रसाल ।
चारु धुनि वह सुनत स्रवननि, विमोही व्रज–बाल ॥
राज रितु, गिरि गोवर्धन–तट रच्यौ रास गोपाल ।
देखि कौतकु चंद भूल्यौ, तजी पश्चिम चाल ॥
थकित सुर, मुनि, पवन, पसु, खग, सुधि न रही तिहि काल ।
'दास कुंभन' प्रभु हरयौ मन गोवर्द्धन–धर लाल ॥

३१ [केदारौ]

गोविंद[2] करत मुरली–गान ।
अधर कर धरि स्याम सुंदर सप्त सुर बंधान ॥
विमोही व्रज–नारि[3], पसु, पंखि सुनै दै धरि कान ।
चर स्थिर[4] हौ फिरत चल, सब की भई गति आन ॥
तजि समाधि जु मुनि रहे, थके[5] व्योम विमान ।
'कुंभनदास' सुजान गिरिधर रची अद्भुत ठान ॥

१ मधुर (ख) २ मोहन (वध ९/२ ५५). ३ बाल (क). ४ स्थिर रह्यो फिरै अचल. (क)
५ सब थके व्योम. (क)

३२ [मालवगौरो]

रास–मंडल बने गिरिवर–धरन लाल।
सुभग यमुना–पुलिन अति प्रफुलित कदंब,
सरद–निसि चंद निरखि थकित व्रजवाल ॥
भूषन, वसन अंग–अंग नौतन सखी!
चले दोऊ मदन करत अधर पान।
बनी गौर स्याम–छवि कोटिक सोभा–
कहा कवि कहै? 'कुंभनदास' जिय जान ॥

३३ [मालवगौरो]

रास–विलास रंग भरि नाचत नवल किसोर, नवीन[१] किसोरी।
एक हि वैस, रूप सम एक[२] हि गिरिधर स्याम, राधिका गोरी ॥
नव पट पीत, अरुन नव भूषन, नव किंकिनि कटि-तट धुनि थोरी।
सकल सिंगार विचित्र[३] विराजित मानहु सोभा–त्रिभुवन चोरी ॥
तान, बंधान, मान रव सों मिलि[४] विधिना रची सरस जोरी।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्धन–धर सुरति–केलि कंचुकी छोरी ॥

३४ [केदारो]

रास–रंग नृत्य मान अद्भुत गति लेत तान,
जमुना–पुलिन परम रवन गिरिवर–धरन राजै ॥
वनिता सत–जूथ मंडल गंडनि पे झलकैं कुंडल,
गावत केदार राग, सप्त सुरनि साजै ॥
दोऊ स्यामा–मध्य मोहन रचित मरकत मनि कंचन खचित,
सिथिल वसन कटि–तट तें आपुने हाथ साजै।
'कुंभनदास' प्रभु नव रंग सकल कला गुन–निधान,
स्वर–जाति हिं लेति स्यामा अंग हि अंग बिराजै ॥

१ नवल (क) २ सम एक, गिरिधरन स्याम. (ख) ३ विराजित मानों सोभा त्रिभुवन की है चोरी (क) ४ रव संमिलित (क)

३५ [केदारौ]

गावति गिरिधरन-संग परम मुदित रास-रंग,
उरप, तिरप लेत तान नागर नागरी ॥
सरि-गम-पध-धनि, गम-पधनि, उघटित सप्त सुरनि,
लेति लाग, दाट, काल अति उजागरी ॥
चर्वन ताम्बूल देत, ध्रुव ताल हिं गति हिं लेत,
गिडि-गिडि तत-थुंग-थुंग अलग लाग री ॥
सुरति-केलि रास-विलास बलि-बलि ' कुंभन दास '
श्रीराधा नंद-नँदन वर सुहाग री ॥

३६ [केदारौ]

चलहु नव नागरी रूप गुन-आगरी,
रास ठान्यौ स्याम सुभग जमुना-तीर ॥
साजि भूषन सकल, मुदित कर मुख कमल,
बिविध सौरभ मिल्यो पहिरि दच्छिन-चीर ॥
अधर मुरली लसै, प्रान तोमें बसै,
नाहिं भावै कछु, बढी अति स्मर-पीर ॥
जाइ मिलि बिमल मति, छांडि सब आन गति,
ज्यों-जिय सुख लेहु मीन पावै नीर ॥
कटि जटित पीत पट, सीस लटकत मुकट,
कुनित भर कुसुम-मध्य मधुप, कोकिल, कीर ॥
' दास कुंभन ' प्रभु सप्त सुर सों मिले--
गावत हैं केदारौ राग गिरिवर-धरन धीर ॥

३७ [मालव]

नाचति रास में गोपाल-संग मुदित घोष-नारी ।
तरु तमाल स्यामलाल, कनक-बेलि प्यारी ॥

चल नितंब, किंकिनि कटि लोल, बंक ग्रीवा।
राग, तान, मान-सहित बेनु-नाद सींवा ॥
स्रम-जल-कन सुभग धरे रैनि-रंग सोहैं,
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर ब्रज-जुवतिनि मोहैं ॥*

३८ [केदारौ]

नव रंग दूलह रास रच्यौ।
आसपास ब्रज-जुवती राजति सुघर राग केदारौ सच्यौ ॥
ललितादिक मृदंग बजावति तान-तरंग, सुरंग खच्यौ।
' कुंभनदास ' प्रभु गोवर्द्धन-धर लाग, दाट मिलि नीकें नच्यौ ॥

३९ [बिलावल]

मंजुल कल कुंज-देस, राधा हरि बिसद बेस,
राका कुमद-बधु सरद-जामिनी ॥
सांवल दुति कनक अंग, बिहरत मिलि एक सँग
मानों नील नीरद-मधि लसति दामिनी ॥
अरुन पीत पट दुकूल, अनुपम अनुराग मूल,
सौरभ सीतल अनिल मंद-मंद गामिनी ॥
किसलय-दल रचित सैन, बोलत पिक चारु बैन,
मान-सहित प्रति पद प्रतिकूल कामिनी ॥
मोहन मन्मथन-मार, परसत कुचनि बिहार,
बेपथु जुत बदति नेति-नेति भामिनी ॥
'कुंभनदास' प्रभु केलि, गिरिधर सुख-सिंधु झेलि
सौरभ त्रैलोकनि की जगत-पाविनी ॥

* ' कृष्णदास ' छाप से भी प्राप्त-मुद्रित [वर्षोत्सव पद सं. जे. आ. ट्रस्ट बंबई]

४० [श्रीराग]

यह गति नांचि-नांचि लई ।
वृन्दावन में रास-विलास सुख चाढत सई ॥

भांति-भांति राग गावत सुर अलापत कई ।
उरप, तिरप, मान लेत ताता-तत-थई ॥

स्यामसुंदर करत क्रीडा प्रेम-घटा छई ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर छिनु-छिनु प्रीति नई ॥

४१ [सारंग]

या तें तू भावति मदन गोपालै ।
सारग रागै सरस अलापति, सुघर मिलत इक तालै ॥

अतीत, अनागत, अवघर आनति, ससक कंठ भरी (इक) चालै ।
अलप, सुलप, सच बहु मिलवति, किंकिनी कूजत जालै ॥

'कुंभनदास' प्रभु रसिक-सिरोमनि सोहति रतिपति-चालै ।
गावति हस्तक-भेद दिखावति गोवर्द्धन-धर लालै ॥

४२ [सारग]

रास में गोपाल लाल नाचत, मिलि भामिनी ।
अंस-अंस भुजनि मेलि, मंडल-मधि करत केलि,
कनक-बेलि मनु तमाल स्याम-संग स्वामिनी ॥

उरप, तिरप, लाग, दाट ग्रग्र-ताता-थेई-थेई थाट,
सुघर सरस राग तैसी-ए सरद-जामिनी ॥

'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर नटवर-वपु-भेष धरें
निरखि-निरखि लज्जित कोटि काम-कामिनी ॥

४३

राग रच्यौ नंदलाला

एहो लीन्हे सकल व्रज-बाला ।। [टेक]

एहो अद्भुत मंडल कीन्हे ।

अति करु गान सरस सुर लीन्हे ।।

लीन्हे सरस सुर राग-रंग बीच मिलि मुरली कढी ।
होन लाग्यौ नृत्य बहु विधि, नूपुरनि-धुनि नभ चढी ।।
डुलत कुंडल, खुलत बेनी, झूलति मोतिनि-माला ।
धरत पग डगमग विवस रस रास रच्यौ नद-लाला ।।१।।

पगनि-गति कौतुक मचै, कटि मुरि मुरि मध्य लचै ।
सिथिल किंकिनी सोहै, ता-पर मुकुट लटक मन मोहै ।।
मोहै जु मन्मथ मुकुट लटकनि, मटक पग-गति धरन की ।
भँवर भरहर चहूं दिसि छवि, पीत पट फरहरन की ।।
गिर्यौ लखि मन्मथ मुरछ लै, भजी रति मुख मधु अचै ।
नचत मनमोहन त्रिभंगी, पगनि-गति कौतुक मचै ।।२।।

चित्त हाव भावनि लुटै, अभिनव दग मोहन सर छुटै ।
ललित ग्रीव भुज मेलत, कबहुंक अंकमाल भरि झेलत ।।
झलत जु भरि-भरि अंक निसंकनि, मगन प्रेम आनंद में ।
चारु चुंबन अरु उगारै धरत तिय-मुख चंद में ।।
उडत अंचल, प्रगट कुच वर-ग्रंथि कटि-तट पट छुटै ।
बढ्यौ रंग सु अंग स्यामा चित्त हाव भावनि लुटै ।।३।।

वृंदावन सोभा बढ्यौ, ता पर व्योम विमाननि सौं मढ्यौ ।
दुंदुभि देव बजावैं फूलनि अंजुलि बहु बरखावैं ।।
बरखैं जु फूलनि अंजुली बहु अंबर घन कौतुक पगे ।
विवस अंकनि निज-बधू लिए निरखि मनमथ-सर लगे ।।
व्है गए थिर चर, अचर चर, सरद-पूरन ससि चढ्यौ ।
'दास कुंभन' रास-औसर वृंदावन सोभा बढ्यौ ।।४।।

४४ [विहागरो]

रास-रस गोविंद करत विहार ।
सूर-सुता के पुलिन-मधि मानों फूले कुमुद कल्हार ।।
अद्भुत सतदल विकसित मानों, जाही जुही निवार ।
मलय पवन वहै सरद-पूरन चंद, मधुप-झंकार ।।
सुघरराइ संगीत कला-निधि मोहन नद-कुमार ।
व्रज-भामिनि-संग प्रमुदित नांचत, तन चरचित घनसार ।।
उभय सुरूप सुभगता-सीवां कोक-कला सुख-सार ।
'कुभनदास' प्रभु स्वामी गिरिधर पहिरें रसमय हार ।।

४५ [विहाग]

रसिक रास सुख-विलास, तरनि-तनया-तीर रच्यौ,
नंदलाल-संग, कोटि कामिनी ।।
प्रफुलित नव-नव निकुंज, त्रिविध पवन लै झकोर,
चंद-जोति छिटकि रही, सरद-जामिनी ।।
मंडल-मधि नाइक हरि, नांचत भुज असनि धरि,
गौर स्याम अंगनि मानों, मेघ दामिनी ।।
उरप, तिरप तांडव करें, ता-थेई रचि उघटि तान,
सुधँग चाल लेत हैं, संगीत स्वामिनी ।।
अद्भुत रस-केलि निरखि, मदन-मान हारि रह्यो,
मुरली अधर गुजत रस-रग भामिनी ।।
बलि-बलि 'कुंभनदास' तन, मन, धन देत वारि,
गिरिवर-धर संग खेलें, राधा भामिनी ।।

४६

स्याम-संग स्वामिनी विलास रास में बनी ।
निर्तत दोऊ सुधंग, रूप राखि अंग-अंग,
नाइका-समाज मानों, राजति घन दामिनी ।।

मिलवत संगीत तान, वेनु कल मधुर गान,
थेई-थेई उच्चरति, रास-रंगिनी ॥
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर, रीझि लिये
ललना उर, मानों मनि-माल बरसत रस की कनी ॥

४७ [केदारो]

सुंदर करत गान गोपाल।
तरनि-तनया तट मनोहर रास-रंग रसाल ॥
जुवति कंचन-बेलि, मरकत मनि जु स्याम तमाल।
उरप, तिरप संगीत उघटत तत-थेई तत-थेई ताल ॥
जुवती-मध्य गोविंद इंदु हि बनी उडुगन-माल।
'कुंभनदास' प्रभु सुभग-सींवां गोवर्धनधर लाल ॥

धनतेरस —

४८ [देवगधार]

आजु माई! धन धोवति नंद-रानी।
कातिक बदि तेरस दिन उत्तम गावति मंगल बानी ॥
नव सत साजि सिंगार अनूपम आपु करति मनमानी।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर प्रभु देखति हियो सिरानी ॥

गो-क्रीडा (कान जगाई) —

४९ [सारंग]

खेलन कों धौरी अकुलानी।
डाढ मेलि आतुर सनमुख व्है, नंद-नंदन की सुनि मृदु बानी ॥
बडडे गोप थकित भए ठाडे, यह अद्भुत देखी न कहानी।
नाचत गाइ देखत नौतन ब्रज बरसों-बरस कुसल यह जानी ॥
नंदकुवँर झारत मुख अंचल, जै-जै शब्द उचरत कल बानी।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर की सदा रहो ऐसी रजधानी ॥

५०

गांड खिलावत स्याम सुजान।
कूकैं ग्वाल टेरि दै 'ही-ही' बाजत बेनु बिपान॥
कियो है सिंगार धेनु सगरिनि कौ, करि सकै कौन बखान।
बिफरि फिरनि पूछ हिं उन्नत करि, करि-फरि सूधे कान॥
पांइ पैंजनी, मेंहदी राजति, पीठि पुरट के पान।
'कुंभनदास' खेली गिरिधर पें जिहिं बिधि उठी उठान॥

दीपमालिका —

५१ [सारंग]

देखो इनि दीपनि की सुंदराई।
मानो[1] उडुगन राजत नभ-मंडल, तम[2]-निसि परम सुहाई॥
नदराइ अगनित बाती रचि, अद्भुत जुगति बनाई।
बिविध[3] सुगंध कपूर आदि मिलि घृत परिपूरनताई॥
घर-घर घोष[4] परम कौतूहल, आनंद उर न समाई।
'कुभनदास' प्रभु धेनु खिलावत गिरिधर सब-सुखदाई॥

गोवर्द्धन-पूजा —

५२ [सारंग]

गोवर्द्धन पूजन चले गोपाल।
मत्त गयंद देखि जिय लाजत निरखि मंद गति चाल॥
व्रजनारिनि पकवान बहुत करि, भरि-भरि लीने थाल।
अंग सुदेस बिबिध पट भूषन, गावति गीत रसाल॥
वाजे अनेक वेनु रव संमिलित चलत बिबिध सुर-ताल।
ध्वजा, पताका, छत्र, चमर धरें करत कुलाहल ग्वाल॥

१ जनु (क) २ तामें निसि (क) ३ मृगमद मलय कपूर आदि दै क) ४ मगल होत सवहिं के

बालक-वृन्द चहूं दिसि सोभित, मनहु कमल अलि-माल।
'कुंभनदास' प्रभु त्रिभुवन मोहन गोवर्द्धन-धर लाल ॥

८३ [सारंग]

मदनगोपाल गोवर्द्धन पूजत।
बाजत ताल, मृदंग, संख-धुनि मधुर-मधुर मुरली कल कूजत ॥
कुमकुम तिलक ललाट दियें नव बसन साजि आईं गोप-धनी[१]।
आसपास सुंदरी कनक तन, मध्य गोविंद मानों मकरत मनी ॥
आनद मगन ग्वाल सब टेरत 'ही-ही' धौरी धुमरि[२] बुलावत।
राते पीरे बने हैं टिपारे मोहन बानी धेनु खिलावत ॥
छिरकत हरद, दूध, दधि, अच्छित, देत असीस सकल लागत पग।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धनधर गोकुल करु पिय! राज अखिल जुग ॥

८४ [सारंग]

*गोवर्द्धन पूजत परम उदार।
गोप-वृंद गोहन मोहन के सोभा बढी अपार ॥
षट रस ब्रिंजन भोग सकल लै धरत विविध उपहार।
पूजा करि पांइ लागि प्रदछिना देत, दिवावत ग्वार ॥
चहूं ओर गोपी कंचन-तन मानों गिरि पहिरयौ हार।
'कुंभनदास' प्रभु की छवि निरखत रह्यौ विथकि सुनि मार ॥

८५ [सारंग]

गोवर्द्धन पूजत हैं ब्रजराइ।
बल मोहन आगें दै लीन्हे गोप-वृंद सब लाइ ॥
दीप-मालिका महा महोच्छौ, ग्वालनि लेहु बुलाइ।
विविध भांति वस्त्र पहिरावहु, जो जाके मन भाइ ॥

१ घनी (क) २ धेनु (क). * परमानन्दसागर 'ग' प्रति में [स. ५९४] परमानददास की छाप से है।

दूध दही भाजन भरि लीन्हे, पायसु वहुत वनाइ।
बैठे है गोपाल सिखर पर भोजन करत दिखाइ॥
फूले फिरत सकल व्रजवासी खरिक खिलावत गांइ।
'कुभनदास' गिरिधर गिरि पूज्यो– भयो भक्तनि मन–भांइ॥

गोवर्द्धनोद्धारण (इन्द्र–मानभंग) —

५६

[केदारौ]

*नंदलाल[1] गोवर्द्धन कर धारयौ।
व्रज कुल[2]–प्रलय करन कों सुरपति पठए कोपि मेघ वारयौ॥
सात दिवस मूसलधार वरखत, एकौ छितु न वीचु पारयौ।
गोपी[3] गांइ गो–सुत ग्वाल सव अपवल राखि गरवु टारयौ॥
छांडयौ सव अभिमान अमरपति अपनों विगारु जिय विचारयौ।
'कुंभनदास' प्रभु सैल–धरन कें आइ परयो पांइनु हारयौ॥

५७

[सारग]

गोकुल की जीवनि गोपाल लाल प्यारौ।
सुंदर मुख निरखत सखि! नैन सैन पाऊ
गोपी ग्वाल–ऑखिनि कौ तारौ॥
रूप की निधि काम को सिद्धि,
जानत सव प्रेम की विधि
धेनु–सैन लैके घर आवै सकारौ।
'कुभनदास' प्रभु गिरिधर अपने कर
कोमल ऐंचि लियो गोवर्द्धन भारौ॥

---

१ मेरे लालिडे गोपाल गोव० [वंघ १८/१] २ पुर, (क) ३ गोप ग्वाल गो–सुत गाय (क)

* 'नंदके लाल गोवर्द्धन धारयौ' इस प्रारंभ और पाठ भेद के साथ यह 'गोविन्दस्वामी' के पद संग्रह में है। साधारणतया समान रचना है। पर 'क' 'ख' प्रति में होने से कुभनदास कृत ही है। [देखो ' गोविदस्वामी–[पदसग्रह] ' पद स. ७३ विद्याविभाग–काकरोली प्रकाशन]

५८ [सारंग]

व्रज पर स्याम घटा झर लाई।
नंदजू कौ लाल सलौनौ-सो ढोटा ता--पर इन्द्र चढ़ि धाई।।
तव मन में इक बात उठाई (?) नख परवत लै उठाई।
गोप ग्वाल संग लियें परस्पर, 'कुंभनदास' गुन गाई।।

श्रीगुसांईजी की बधाई —

५९ [देवगंधार]

आजु वधाई श्रीवल्लभ-द्वार।
प्रगट भए पूरन पुरुषोत्तम प्रगट करन लीला-अवतार।।
भाग उदै सब दैवी जीवनि के निःसाधन जन किए उद्धार।
'कुंभनदास' गिरिधरन जुगल-वपु निगम-अगम सब साधन सार।।

६० [देवगंधार]

गोकुल घर-घर होत बधाई।
सुत श्रीवल्लभ के गृह प्रगटे, करुना की निधि आई।।
देखि-देखि व्रज-वनिता सब मिलि मोतिनि चौक पुराई।
प्रगट भयो गोवर्द्धन-धारी पुहुपनि वृष्टि कराई।।
देत आसीस सकल गोपीजन उर आनंद न समाई।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर गिरिधर सब सुख-दाई।।

६१

प्रगटे श्रीविट्ठल बाल गोपाल।
कलि-जुग जीव-उद्धारन-कारन संतनि के प्रतिपाल।।
तिलक तिलंगा द्विज-कुल-मंडन, वल्लभ-वंश रसाल।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर नई केलि व्रज-बाल।।

६२ [सारंग]

प्रगट भए फिरि वल्लभ आइ।
सेवा-रस विस्तार करन कों गूढ ज्ञान सब प्रगट दिखाइ॥
निज-जन सकल किये हैं पावन घर-घर वंदनवार बधाइ।
'कुंभनदास' गिरिधर-गुन महिमा बदी-गन चारन गुन गाइ॥

६३ [कानरो]

श्रीविट्ठल जू के चरनकमल भजि रे मन! जो चाहत परमारथ।
मारग नाम काम--हित कारन सब पाखंड परम उदारथ॥
देवी दैव देवता हरि--बिनु सब कोउ जपत आपने स्वारथ।
श्रीभागवत--भजन रस--महिमा श्रीमुख--बचन कहे सो जथारथ॥
तीन हूं लोक विदित यह मारग जीव अनेक हिं किए कृतारथ।
'कुंभनदास' सरन आए--बिनु खोए दिन पाछिले अकारथ॥

६४

श्रीविट्ठल -चरन-प्रताप तें नांहिन और मेरे जिय बाम बाधा।
हस्त कमल माथे जु धरत हैं गए सकल अपराधा॥
महापतित उद्धार करन कों प्रगटे पुहुमि अगाधा।
'कुंभनदास' फूलत आनंद में निडर भए रिपु सब साधा॥

वसन्त-धमार —

६५

सुभ दिन, सुभ घरी, सुभ मुहूरत, साधि राधिका
श्रीपंचमी सदा ही बधाई ब्रज-राज-लाल
वृंदावन कुंज-धाम, विरहत पिया--संग स्याम,
उडत गुलाल, लाल गावत वेनु रसाल॥१॥

कंचन वेलि वनी व्रज-वाल
ज्यों लपटी घनस्याम तमाल, करत परस्पर ख्याल ॥
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर
रीझि परस्पर भरि लीने अंकमाल ॥२॥*

६६ [वसंत]

स्याम सुभग तन सोभित छींटें नीकी लागी चंदन की ।
मंडित सुरंग, अवीर, कुमकुमा अरु सुदेस रज वंदन की ॥
'कुंभनदास' मदन तन-मन वलिहारि कियो नँदनंदन की ।
गिरिधरलाल रची विधि मानों जुवतीजन[1]-मन-फंदन की ॥

६७ [वसंत]

आई रितु चहुं दिसि फूले द्रुम कानन
कोकिला समूहनि गावति वसंत हि ।
मधुप गुंजारत, मिलत सप्त सुर
भयो हुलास तन उमगित[2] सव जंत हिं ॥
मुदित रसिक जन उमग भरे हैं,
नांहिने[3] पावत मनमथ-सुख अंत हिं ॥
'कुंभनदास' स्वामिनी वेगि चलि,
इहि समै[4] मिलि गिरिधर नव कंत हिं ॥

६८ [वसंत]

चलि वन, वहत मंद सुगंध सीतल मलयज समीरे
तुव पथ निहारत[5] सखी ! हरि सूरजा-तीरे ॥
चहुं दिसा फूले लता द्रुम हरखित सरीरे
तुव ।वरन सम स्यामसुंदर धरत पट पीरे ॥

*साधारण एव शिथिल रचना होनेसे कुमनदास कृत होने में सन्देह है ।

१ जुय:(क). २ मन सव (क). ३ नहिं पावत-जुवतिनि सुख (क) ४ औसर (क)
५ निहारत हैं (क)

विविध सुर अलि गुंज, कूजित मत्त पिक कीरे
तुव मिलन-हित नद-नंदन हैं अति अधीरे ॥
'दास कुंभन' प्रभु करत तन बहु जतन सीरे
तुव बिरह व्याकुल, गोवर्द्धन-उद्धरन-धीरे ॥

६९

[बसंत]

जुवतिनि-संग खेलत फागु हरी।
बालक-वृंद करत कोलाहल सुनत न कान परी ॥
कुमकुम वारि अरगजा विविध सुगंध मिलाइ करी
पिचिकाइनि परस्पर छिरकत अति आमोद भरी ॥
बाजत डफ, मृदंग, बांसुरी, किन्नरि सुर कोमल री
तिनहिं मिलत सुघर नँद-नंदन मुरली अधर धरी ॥
टूटत हार, चीर फाटत गिरि जहां-तहां धरनि धरी
काहू नहीं संभार क्रीडा-वस सब तन-सुधि विसरी ॥
अति आनद मगन नहिं जानत, बीतत जाम घरी
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर सब सुख[1]-दानवरी ॥

७०

[बसंत]

उडत वंदन, नव अवीर, बहु कुमकुमा,
खेलत वसंत वन, लाल गिरिवर-धरन ॥
मंडित सुअंग, सुभ स्याम सोभित ललित
मनहुं मनमथ बान साजि आयो लरन ॥
तरनि-तनया तीर ठौर रमनीक अति,
द्रुम, लता, कुसुम मधु कलित सु नाना बरन ॥
मधुर सुर मधुप गुंजार मधुरस-लुब्ध,
पिक-सबद लागे दुहुं दिसि कुलाहल करन ॥

१ सुख दै निवरी (क)

आई बनि-बनि सकल घोष की सुदरी
पहिरें तन कनक नव चीर पट आभरन ॥
मधुर सुर गीत गावति सुघर नागरी,
चारु नृत्तत मुदित कुनित नूपुर चरन ॥
वदन पंकज, अधर-बिंब सोभित चारु
झलकत कपोल अति चपल कुंडल करन ॥
'दास कुंभन' प्रभु घोष सौभग - सींव
नंद-नंदन कुंवर जुवति-जन मन - हरन ॥

७१ [वसंत

देखि वसंत समै व्रज-सुंदरि तजि अभिमान चली वृंदावन
सुंदरता की रासि किसोरी नवसत साजि सिंगार सुभग तन ॥
गई तिहिं ठौर देखि ऊंचे द्रुम लता प्रकासित गुंजित अलिगन ॥
'कुंभनदास' लाल गिरिधर कों मिली कुंवरि राधा हुलसत मन ॥

७२ [वसत]

गिरिधर लाल रस भरे खेलत विमल वसंत राधिका-संग
उडत गुलाल, अबीर, अरगजा, छिरकत भरत परस्पर अंग ॥
बाजत ताल, मृदंग, अधौटी बीना, मुरली, तान तरंग
'कुंभनदास' प्रभु इहि विधि क्रीडत जमुना-पुलिन लजावत अनंग ॥

७३ [वसंत]

खेलत वन सरस वसंत लाल कोकिल कूजत अति रसाल
जमुना-तट फूले तमाल, केतकी, कुंद, नौतन प्रवाल ॥
तहां बाजत वेनु, मृदंग, ताल, बिच-बिच मुरली अति रसाल
नव वसंत साजि आई ब्रज की बाल साजें भूषन, वसन-अंग, तिलक भाल ॥
चोवा, चंदन, अबीर, गुलाल छिरकत हैं पिय मदनगोपाल
आलिंगन, चुंबन देत गाल, पहिरावत उर फूलनि की माल ॥

इहि विध क्रीडत व्रजनृपति-कुमार सुमन-वृष्टि करत सुर अपार
श्रीगिरिधर मन हरत लाल 'कुंभनदास' बलि-बलिहार ॥

फाग—

७४ [नटनारायन]

जुवति-जूथ-संग फाग खेलत नंदलाल
कुवर होरि हो, होरि हो, होरि बोलनां ॥
गावत नटनाराइन राग मुदित देत चैन
फाग चहुं दिसा जुरि ग्वालबाल-बृंद टोलनां ॥
बाजत आवज उपंग, बांसुरि, सुर, वेनु, चंग,
संख, बंस, झांझि, उफ, मृदंग, ढोलनां ॥
चलत सुर अनेक ताल सुघरराइ श्रीगोपाल
वेनु - मध्य गान करत होरि होलनां ॥
पहिरें तन भांति-भांति, सोभा कछु कही न जाति
भूषन आभरन विविध पट अमोलनां ॥
कुमकुमा सुरंग छिरकत पिचकाई भरि-भरि
परस्पर देत कीक व्रज की खोरि-खोरि डोलनां ॥
काहूके चिबुक चारु परसि, काहू की बेसरि, काहू की-
खुंभी, काहूके करत कंचुकी के बंद खोलनां ॥
काहूके लेत हार तोरि, काहू की गहत भुज मरोरि,
काहू कों पकरि छांडि देत करि झंझोलना ॥
गोकुल-बिच कीच मची, सौरभ चहुं ओर बढयौ
सब तनु अनुराग उमग्यौ रस अतोलनां ॥
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर प्रेम-सिंधु प्रगट कर्यौ
सुर विमान विथके देखि व्रज-कलोलनां ॥

७५

होरी कौ है औसरु जिनि कोऊ रिस मोनै
काहू कौ हार तोरै, काहू की चूरी फोरै,
काहू की खुंभी लै भाजै अरु अचानक
काहू कों पिचकाई नेत्रनि तकि तानै ॥
काहू की नकवेसरि पकरि काहू की चोली,
काहू की वेनी गहे, अरु कंठसरी झटकि आनै ॥
'कुंभनदास' प्रभु इहि विधि खेलत,
गिरिधर पिय सब रंगु जानै ॥

७६ [श्रीराग]

खेलत फाग गोवर्द्धन-धारी 'हो होरी' बोलत व्रज-बालक संगे
आई वनि नवल-नवल व्रज-सुंदरि, सुविधि सँवारि सुठि सिंदुर मंगे ॥
बाजत ताल, मृदंग, अघौटी, बाजत डफ, सुर, बीन, उपंगे
अधर बिंब कूजै वेनु मधुर धुनि, मिलत सप्त सुर तान तरंगे ॥
उडत अबीर, कुमकुमा वदन विविध भांति रंग मंडित अंगे
'कुंभनदास' प्रभु त्रिभुवन-मोहत नवल रूप छवि कोटि-अनंगे ॥

७७ [कल्याण]

माई ! हो हो होरी खिलाइए ॥
झांझ, बीन, पखावज, किन्नरी, डफ, मृदंग बजाइए
ताल, त्रिवट, ततकार, चांचर-खेल मचाइए ॥
चोवा, चंदन, मृगमद छिरकिके अबीर गुलाल उडाइए
खेलत फाग व्रजराज-लाडिलौ श्रीवल्लभ-जसु गाइए ॥
नवसत साज सज्यौ व्रज-वनितनि चलो नंद-गृह जाइए
'कुंभनदास' लाल गिरिधर पे अपुनौ सरवसु वारिए ॥

७८ [सारग]

'हो हो होरी' कहि खेलत होरी, अब तो रंग मच्यौ है
कहा कहिए सब समिटि गई मन–मोहन रंग रच्यौ है'॥
खेलहि खेल खेल–सो कीन्हो अब कछु कहा बच्यौ है
रस–गारी तारी दै गावै अब तो उघरि नच्यौ है ॥
चंद वदन मांडत गुलाल सों द्रगनि अति आनि खच्यौ है
पिचकाई प्यारी की छूटति रंग भरि लाल चच्यौ है ॥
रस–निधान ब्रज–लाडिलौ हो ! सोभा–सिंधु खच्यौ है
'कुंभनदास' प्रभु की छवि निरखत मनमथ–मनहिं तच्यौ है ॥

७९ [विहाग]

होरी खेलत कुंवर कन्हाई ।
चोवा चंदन, अगर कुमकुमा धरती कींच मचाई ॥
अबीर, गुलाल उडाई ललिता सोभा बरनी न जाई
अरस–परस छिरकें जु स्याम कों केसरि भरि पिचकाई ॥
नख-शिख अंग प्रतिरूप माधुरी भूषन, वसन बनाई
गिरिवर-धर की इहै छवि निरखत 'कुंभनदास' बलि जाई ॥

डोल —

८० [देवगधार]

मोहन (मन) झूलत बढ्यौ आनंद ।
एक ओर वृषभान–नंदिनी एक ओर ब्रज–चंद ॥
ललिता विसाखा झुलवति ठाढीं कर गहि कंचन–डोल
निरखि–निरखि प्रीतम पिय प्यारी विहसि कहति हंसि बोल ॥
उडत गुलाल, कुमकुमा, चंदन परसत चारु कपोल
छिरकत फूल मदनगोपालें आनंद हृदै कलोल ॥

कहा कहों रस बढ्यौ परस्पर त्रिभुवन वरन्यौ न जाई ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर की वानिक पर बलि जाई ॥

फूल-मण्डली —

८१ [सारंग]

बैठे लाल फूलनि के चौवारे ।
कुरवक, बकुल, मालती, चंपौ, केतकी, नवल निवारे ॥
जाई, जुही, केवरो, कूजो, राइवेलि, सहकारे
मंद समीर कीर पिक कूजत मधुप करत गुंजारे ॥
राधा-रवॅन रंग भरि क्रीडत, नाचत मोर अखारे
कुंभनदास' लाल गिरिधर पर कोटिक मनमथ वारे ॥

श्रीमहाप्रभुजी की वधाई —

८२

श्रीलछमन-गृह आजु वधाई ।
प्रगट भए पूरन पुरुषोत्तम श्रीवल्लभ सुखदाई ॥
देत दान सनमान बहोत करि, सुख की वेलि छवाई
'कुंभनदास' गिरिधर अति हरखे उर आनंद न समाई ॥

८३ [कान्हरो]

वरनों श्रीवल्लभ-अवतार ।
गोकुलपति प्रगटे श्रीगोकुल सकल विश्व-आधार ॥
सेवा भजन बताइ निज-जन कों मेट्यौ जम-व्यौहार
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर आए सब ही उतारे पार ॥

८४ (विहागरो)

हौं श्रीवल्लभ की बलिहारी ।
सबहिनि कों वचनामृत सींचत कहि, अंतर दुख-हारी ॥
नव निकुंज-मंदिर की लीला विहरत नित्य विहारी
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धनधर ! व्है हों दासी तिहारी ॥

८५

ना तरु लीला होती जूनी
जो प श्रीवल्लभ प्रगट न होते, वसुधा रहती सूनी ॥
दिन-दिन प्रति छिन-छिन राजत हैं ज्यों कुंदन पर चुनी
'कुंभनदास' कहि कहां लों वरनै जसु गावै जाकौ मुनी ॥

अक्षय तृतीया—

८६ [सारग]

चंदन पहिरत गिरिधर लाल ।
कंचन वेलि प्यारी राधा कें भुज वामभाग गोपाल ॥
प्रथम ही चित्रित अछित तृतीया वदन, भ्रकुटी भाल ।
स्वेत तहां वागा, पाग लपेटी, पीताम्बर, लोचन बिसाल ॥
कुंकुम कुच-जुग हेम-कलस में कंठ दोई लर बनी मनिमाल ।
'कुंभनदास' प्रभु रसिक-सिरोमनि विलसत व्रज की बाल ॥

८७ [सारंग]

टीक दुपहिरी में खस-खाने रचे तामधि बैठे लाल विहारी ।
खासा कौ कटि बन्यौ पिछौरा चंदन-भींजी कुलह सँवारी ॥
चंदन स्याम - तन ठौर-ठौर लेपन करति वृषभान-दुलारी ।
विविध सुगंध के छुटत फुहाँरे कुसमनि के बिजना ढोरत पियप्यारी ॥
सघन लता द्रुम झरत मालती सरस गुलाब-माल गूंथति है प्यारी ।
'कुंभनदास' लाल छवि-ऊपर रीझि, अँकोरि देत तन मन वारी ॥

रथयात्रा —

८८ [भैरव]

रथ बैठे मदन गोपाल अंग-अंग सोभा बरनी न जाई।
मोर-मुकुट बनमाल बिराजित, पीतांबर अरु तिलक सुहाई॥
गज-मुकता की माल कंठ सोहैं[1] मानों नील गिरि सुरसरि धँसि आई।
श्रीवृन्दावन-भूमि चारु सँग सोहैं
राधा नागरि मानों घन दामिनी की छवि पाई॥
बोलैं पिक, मोर, कीर त्रिगुन बहैं समीर,
पुहुप बरिखा करें अमरपति आई।
'कुंभनदास' प्रभु लाल गिरिधर की या बानिक पर बलि-बलि जाई॥

८९ [मलार]

रथ पर राजति सुंदर जोरी।
श्रीघनस्याम लाडिलौ सुंदर, श्रीराधा जू गोरी॥
व्योम विमान-भीर भई, सुर मुनि 'जै-जै' सब्द उचारी।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर की बानिक की बलिहारी॥

९० [विलावल]

रथ बैठे श्रीत्रिभुवन-नाथ।
बहिन सुभद्रा अरु बल भइया और सखा सब लीन्हे साथ॥
कनक कलस रथ-ऊपर राजत नील बरन मृदु गात
नीलाम्बर, पीताम्बर की छवि चक्र सुदर्शन हात॥
ए दोउ नील-सिखर पर राजत इन्द्र हु देखि लजात।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर कौ जसु गावत न अघात॥

1 सोहैं नंदलाल मानों (क)

वर्षा ऋतु—वर्णन —

९१ [नटनारायण अठताल]

रिमि-झिमि वरखत मेह प्रीतम संग री !
चलो सखी ! भींजत सुख लागैगो ॥
तैसेई बोलत चातक, पिक, मोर
तैसेई गरज मधुरी तैसोई पवन सीतल लागैगो ॥
तैसीये घटा स्याम रही हैं झूमि चहूंधा
तैसिये पहिरी सुरंग चूनरी तैसेई भेप लागैगो ॥
'कुंभनदास' प्रभु तैसोई गोवर्द्धन—धर
लाल रसिक हृदय लागैगो ॥

९२ [मलार]

सारी भींजि है नई ।
अबहिं प्रथम पहरि आई हों पिता बृपभान दई ॥
अपनों पिताम्बर मोहिं उढावहु वरिखा उदित भई ।
सुंदर स्याम ! जाइगौ इह रंगु वहुविध चित्र ढई ॥
कहि हों कहा जाइ घर मोहन डरपति हौं इतई ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर मुदित उछंग लई ॥

९३ [मलार अठताल]

गोवर्द्धन पर्वत के ऊपर परम मुदित बोलत हैं मोर ।
अति आवेस भयो सब के चित ।
ठां ठां नांचत सुनि-सुनि मुरली की मद कल[1] घोर ॥
श्रीअग जलद--घटा सुहाइ वसन दामिनी,
इन्द्र—धनु वनमाल, मोतिनि हार वलाक डोर ।
'कुंभनदास' प्रभु प्रेम नीर वरखत गिरिवरधर[2] लाल नवल नंदकिशोर ॥

---
१ मद सुर कल घोर (ख) २ घ।न (ख)

९४ [मलार]

पहिरें सुभग अँग कसूंभी सारी सुरंग
भूमि हरियारी में चद्र वधू-सी सोहै ॥
हरि के निकट ठाढी, कंचुकी उतंग गाढी
बाल मृगलोचनी देखत मन मोहै ॥
पावस रितु तैसिये, मेघ उनए तैसिये,
तैसिये वानिक बनी उपमा कों को है ॥
'कुंभनदास' स्वामिनी, विचित्र राधा भामिनी
गिरिधर इकटकु मुख जोहै ॥

९५ [मलार]

देखो[1] सखी ! चहुं दिसि तें झर लायौ ।
स्याम घटा जु उठी चहुं दिसि तें, दामिनी अंबर छायौ ॥
रस की बूंद परति धरनी पर ब्रज-जन प्रेम बढायौ ॥
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर राग[2] मलार जमायौ ॥

९६ [मलार]

देहु कान्ह ! कांधे कौ कंबर ।
रिमि-झिमि रिमि-झिमि घन बरसत है भींजै कसूंभी अंबर ॥
घन गरजत डरपति हों भामिनी देखि मेघ कौ डंबर ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर साथ ग्वाल कौ संभर ॥

९७ [मलर]

ब्रज पर नीकी आजु घटा हो ।
न्हीं-नन्ही बूंद सुहावनी लागति, चमकति बिज्जु-छटा हो ॥

[1] आजु माई आगें नई झर लायौ (वध ५/१/९९)
[2] उछग हि हिये लगायौ (,,)

गरजत गगन मृदंग बजावत, नाचत मोर-नटा हो।
तैसेई सुर गावत चातक, पिक, प्रगट्यो है मदन-भटा हो॥
सब मिलि भेट देत नँदलाल हिं बैठे ऊंचे अटा हो।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर सिर कसूंभी पीत पटा हो॥

९८ [मलार]

बोले माई ! गोवर्द्धन पर मोर।
कारी-कारी घटा सुहावनी लागति, पवन चलत अति जोर॥
स्याम घन तन दामिनी दमकति बूंद परति थोर-थोर।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर करत चातक, पिक सोर॥

९९ [मलार]

* दोऊ जन भीजत अटके बातनि।
सघन कुंज के द्वारें ठाढे बुंद बचावत पातनि॥
स्यामा स्याम उमगि रस भरियां अंबर लपटे गातनि।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर नेह बढावत घातनि॥

१०० [सोरठ]

+ भींजत कुंजनि में दोउ आवत।
स्याम सुंदर वृषभान-कुंवरि कों कांवरि तन लिपटावत॥
हिलि-मिलि प्रीति परस्पर बाढी, दोऊ मिलि अंग प्रेम उपजावत।
'कुंभनदास' प्रभु स्याम राधिकै दगा देत कढि भाजत॥

१०१ [मलार]

भींजत कब देखौंगी नैंना।
दुलहिनजू की सुरग चूनरी मोहन कौ उपरैंना॥

* इसी तुक, कुछ पाठ-भेद और परिवर्तन से यह पद 'सूरसागर' (ना. प्र सभा) परिशिष्ट स. ११३ पर छपा है। सम्पादक को इस पद के सूरकृत होने में अद्ध संदेह है। वास्तव में यह पद कुभनदास कृत है (सर० भ व ५/१ पत्र ९३)

+ 'सूरसागर' स. २६१० पर इसी तुक से पद छपा है पर दोनो विभिन्न है।

स्यामा स्याम कदँब-तर ठाढे जतन कियो कछु मैं ना ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर जुरि आई जल-सैंना ॥

१०२ [मलार]

सखी री ! ये वडभागी मोर ।
याके पंख कौ मुकुट वनत हैं सिर धरैं नंदकिसोर ॥
ये वडभागी सकल व्रज-वासी चितवत हरि-मुख ओर ।
निसिदिन स्याम-संग मिलि विहरत आनंद वढ्यौ न थोर ॥
ये वडभागिनि व्रज की ललना गान करति घन-घोर ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर विहरत गोपिनि के चित-चोर ॥

१०३ [मलार]

लाल ! देखौ वरसन लाग्यौ मेहौ ।
भींजति है मेरी सुरंग चूनरी मोहिं जान घर देहौ ॥
तुम मन-मोहन चितव अटपटो मोहि जिय उपजत तेहौ ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर राज करो यह नेहौ ॥

१०४ [मलार]

स्याम ! सुनु नियरें आयौ मेहु ।
भींजेगी मेरी सुरंग चूनरी ओट पीतांवर देहु ॥
दामिनि तें डरपति हों मोहन निकट आपुनी लेहु ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर सों वाढ्यौ अधिक सनेहु ॥

१०५ [मलार]

* सखी री ! वुंद अचानक लागी ।
सोवत हुती मदन-रसमाती घन गरज्यौ तव जागी ॥
दादुर, मोर, पपैया वोलत गुंजत मधु-अनुरागी ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर सों जाइ मिली वडभागी ॥

* सूरसागर परिशिष्ट (१) स. १४२ पर इसी तुक से पद छ्पा है। प्रथम अश समान है, शेप भिन्न है स(. में वध १३/३ पत्र २९१ में कुंभनदास कृत है)

हिंडोरा —

१०६ [केदारो]

सुरंग हिंडोरे झूले नागरि नागर,
दंपति अंग-अंग सब सुखदाई ॥
सुंदर स्याम के संग सोभित गोरी
भामिनि मानों घन में दामिनि,
तैसीये पावस रितु परम सुहाई ॥
पीत पट, लाल सारी सुरंग सु छबि भरी,
तैसेई मनि खचित खंभ, मरुए विधि बनाई ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर कौ सुजसु गावति
ललितादिक, निरखत[1] रतिपति रह्यौ लजाई ॥

१०७ [मलार]

झूलें माई ! जुगल किशोर हिंडोरें ।
ललिता, चंपकलता, विसाखा देति हैं प्रेम-झकोरें ॥
तैसिये रितु पावस सुखदाइक मंद-मंद घन घोरें ।
तैसोई गान करति ब्रजसुंदरि निरखि-निरखि चहुं ओरें ॥
कोटि-कोटि मदन-छबि निरखत होत सखी मन भोरें ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर प्रीति निबाहत जोरें[2] ॥

१०८ [मलार]

हिंडोरें हरि झूलत ब्रजनारी ।
सांवन मास पुही थोरी-थोरी तैसीये भूमि हरियारी ॥
नव वन, नव घन, नव चातक पिक, नवल कसूंमी सारी ।
नवल किसोर-वाम अँग सोभित नव वृषभान-दुलारी ॥

---
१ निरखति, (क) २ डोरें (क)

कंचन खंभ, मनि जटित पेटला, डांडी सुभग संवारी ।
'कुंभनदास' प्रभु मधुर झोंटका देत लाल गिरिधारी ॥

१०९ [गौरी]

आईं सकल ब्रजनारि झूलन हरि कौं[1] हिंडोलनां ।
नवसत साजि कुरंग-नैनी आभूषन चारु[2] सुरंग बसन अमोलनां ॥
कंचन रतन आछे जटित, मानिक मनि पटिला,
सुगंध चंदन-वाही सुमन अरु सुस्वर सुनि सुबोलनां ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर लाल मधुर-मधुर दै झोलनां ॥

११० [पूरवी]

झूलें माई ! गिरिधर सुरंग हिंडोरें ।
रतन खचित पटुली पर वठे नागर नंदकिसोरैं ॥
पीत वसन घनस्याम सुंदर तन, सारी सुरंग हि वोरैं ।
अंसनि बाहु परस्पर जोरें मंद हसनि पिय ओरैं ॥
घोपनारि जुरि आईं चहूं दिसि झुलवति थोरें-थोरैं ।
'कुंभनदास' गिरिधरन लालछबि ब्रज-जुवतिनि चित चोरैं ॥

१११ [मलार]

झूलें माई ! स्यामा स्याम हिंडोरैं ।
मनि कंचन कौ रच्यौ सच्यौ सखि ! राजत जोवन जोरैं ॥
आसपास सुंदरि मिलि गावति श्रीमंडल कल घोरैं ।
बाजत ताल, मृदंग, झांझ, रुचि और बांसुरी थोरैं ॥
पुलकित पुलकि प्रीतम-उर लागति देति बहुत अंकोरैं ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर रसिक प्रीति निरवाहत औरैं ॥

१ के संग (ब. ११।१२४.) २ तन आछे (वं ११।१२४.)

११२ (विहाग)

पिय-संग[1] झूली री ! सरस हिंडोरैं ।
व्रज-जुवती[2] चहुं दिसि तें सजि सजनी ! झुलवति थोरें-थोरैं ॥
[3]नीलांवर पीताम्बर राजत घन-दामिनि चित चोरैं ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर देखत[4] छवि की उठत झकोरैं ॥

११३ [मलार]

* नटवर झूलत सुरंग हिंडोरैं ।
धरत चरन पटुली पर मोहन अरस परस्पर जोरैं ॥
पीत वसन वनमाल बिराजित सारी सुरंग हिं वोरैं ।
सजल स्याम घन, कनक[5] वरन तनु मानिनी-मानहि तोरैं ॥
जोरी अविचल तेज विराजित कुंडल वर हिल्लोरैं ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधरराधा प्रीति निवाहत औरैं ॥

११४

नवल लाल के संग झूलन आई हो हिंडोरैं ।
लपटनि पाग की चुनरी सुरग वंदसि परी सखी ओरैं ॥
सगसगाति गिरिधर पिय के संग बतियां कहति प्रीतम चित चोरैं ।
'कुंभनदास' प्रभु रमकि-झमकि झूलति कछुक हँसति मुख मोरैं ॥

११५ [मलार]

मोहिं घरी इक झूलन देहु हिंडोरना
हो पिय! रमकि झुलावौं ।
तैसेई स्याम तन हो हो प्रानपति !
हमें न डर आवै एसेई अति रस-रंग बढावौं ॥

---

१ हों तो झूलीरी रमकि २ सुरंग० (व ४/२/४०) २ आसपास व्रज-जुवती राजति (व ४-२-४०) ३ नील पीत पट की दुति राजति (व ४-२-४९)
४ तुहिं देखत (व ४-२-४०)

* इसी तुक से संक्षिप्त पद 'गोविंदस्वामी' में पद स २०१ पर छपा है—देखा काकरोली प्रकाशन। आदि अन्त में साम्य होने पर भी दोनों प्रथक है ।

कबहुंक पटुली बैठिय प्रानपति !
और सखिनि सब निकट बुलावों ॥
तिनसों मिलत मंद मुरली-सुर
प्रमुदित राग मलार हि गावों ॥
जब हौं उतरों तुम तब झूलो प्रीतम !
झौंटा देहौं एसें-जैसें तुम्हें दिखावों ॥
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर !
सोई करों जैसे तुव सुख पावों ॥

११६ [नट]

मुदित झुलावति आपु अपने औसरें
माई ! नवल हिंडोरो सज्यौ नवल किसोर ॥
नवल कसूंभी सारी ओढें नव वधू प्यारी
नव भूमि हरियारी सोभित चहुं ओर ॥
नवल गीत झुंडनि गावति, कंचन खंभ की ढिग
तैसेई बन में नव बोलत चातक मोर ॥
नवल घटा सुहाई, परत थोरी-थोरी बुंद
बिच-बिच ए नव घन की घोर ॥
राधे-तन नव चूनरी नव पीत सुंदर स्याम कें
अरु मनिगन खचित पटेला बैठे इक जोर ॥
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्धन-धारी लाल
नव रस भींजे देत मधुरें रोर ॥

११७ [नट]

× हिंडोरें झूलत स्यामा स्याम ।
गौर स्याम तन, पीत कसूंभी पहिरें, आनंद मूरति काम ॥
मरकत मनि के खंभ मनोहर, डांडी सरल सुरंग
पांच पिरोजनि की पटुली बनी झूमक अति बहु रंग ॥

× सूरसागर पद सं. ३४५२ पर भी इस तुक से एक पद है पर दोनो प्रथक है ।

ललिता, विसाखा देति झोंटा गावति राग रसाल
हंस, मोर, कोकिला, चकोर हि चातक शब्द रसाल ।।
अद्भुत केलि कौतूहल देखत चढि विमान सुर आए
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्धन-धर बहुविध पुहुप बरसाए ।।

११८ [पूरवी]

× हिंडोरें व झुलवन आई ।
नवसत साज सज ब्रज-वनिता लागति परम सुहाई ।।
वनि-ठनि वैठे स्याम मनोहर स्यामा संग विराजें
नख-सिख की सुंदरता निरखत कोटिक रति-पति लाजें ।।
प्रमुदित व्है सहचरी झुलावति मुख मधुरे स्वर गावें
तान, मान, बंधान, भेद, गति, ताल, मृदंग बजावें ।।
नव निकुंज जमुना-तट सुंदर माच्यौ रसिक-विलास
गुन-निधान राधा गिरिधारी गावत 'कुंभनदास' ।।

११९ [नट]

पावस-रितु कुंज-सदन, जमुना-तट, वृन्दावन,
झूलत ब्रजराज-कुंवर नव हिंडोरनां ।।
कनक खंभ सरल मांहि, चारि डांडी अति सुहाँहि,
झूमका नवरंग पटुली अति अमोलनां ।।
वैठे वनि गोपाल लाल, सग ब्रज की नवल बाल,
चहुं दिसि राजें रसाल गोपी-टोलनां ।।
गावत नटनाराइन राग, नाचत मुदित नारि,
झोंटा देति वैसि-वैसि वृंद-टोलनां ।।
वाजत बांसुरी, पखाज, ठाठ बन्यौ मधुर साज,
छायो गान गगन, मगन जुवती-टोलनां ।।

× इसी तुक से स ३४५५ पर सूरदास कृत पद सूरसागर में है-पर दोनों प्रथक है ।

माच्यौ नवरंग विलास, निरखि हरखि 'कुंभनदास'
लै बलाइ कहत हैं, गुन गिरिवरधर लोलनां ॥

१२० [मलार]

नवल हिंडोरना हो ! साज्यौ नवल किसोर ।
जहां भूमि हरित सुरंग देखियत कल्पद्रुम के पुंज
पारिजात, मंदार प्रफुल्लित घूर्नित अलि-कुल गुंज ॥ (टेक)
हंस चातक मोर कूजत कोकिला कल कीर
चक्रवाक चकोर बोलत तरनि-तनया-तीर ॥
मल्लिका मालती विकसति विविध खंड कदंब
नीप और प्रवाल चंपक बकुल जम्बू अंब ॥
उनई घटा घन घोर मानें इंद्र-धनु अवकास
फूली भार सुडार सोभित विविध सौरभ-वास ॥
द्वै खंभ मरकत मनि विराजित रतन पटिला चारु
बठि जुगल किसोर सुन्दर परम रसिक उदारु ॥
सुभग सरस जराउ डांडी मियार मरुवा-सारि
उछंग गिरिधर लाल के सँग बैठी सुन्दरी नारि ॥
वेनु, वीना, ताल उघटित मुरज, मृदंग रबाब
महुवरी, किन्नरि, झांझ बांजत शंख, ढप पिनाक ? ॥
सरस सरोवर मांझ देखियतु फूले कुमुद कल्हार
तान, मान, सुगान गावें जम्यौ राग मल्हार ॥
कुंज-कुंज झुलाइ झुलवति सब सखी सोहें संग
चंद्रावली, ललिता, विसाखा उपजे कोटि अनंग ॥
लेत झोंटा जुगल सुंदर करत केलि-विलास
देवगन मिलि कुसुम बरस बलि-बलि 'कुंभनदास' ॥

पवित्रा —

१२१ सारग]

पवित्रा पहिरत गिरिधर लाल।
रुचिर पाट के फोंदना करि-करि पहिरावत सब ग्वाल ॥
आसपास सब सखा-मंडली मनों कमलअलि-माल।
'कुंभनदास' प्रभु त्रिभुवन मोहत गोवर्द्धन-धर लाल ॥

१२२ (सारग)

* पवित्रा पहिरें श्रीगिरिधरलाल।
वाम भाग वृषभान-नंदिनी बोलत वचन रसाल ॥
आसपास सब ग्वाल-मंडली मानहुं कमल अलि-माल।
'कुंभनदास' प्रभु त्रिभुवन-मोहन नंदनँदन वृजपाल ॥

१२३ [सारग]

पवित्रा पहिरें श्रीगोकुलराइ।
श्याम अंग पर अमित माधुरी सोभा कहिय न जाइ ॥
वाम भाग वृषभान-नंदिनी अंग-अंग रस माइ।
गोपी सनमुख ठाढीं चितवतिं दुति दामिनि-दमकाइ ॥
भक्त-हेत मनमोहन लीला गूढ़ रहसि उपजाइ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर कौ रूप न वरन्यौ जाइ ॥

१२४ [सारंग]

पवित्रा पहिरें राज-कुमार।
तीनों लोक पवित्र किये हैं श्रीगिरिधर सुकुमार ॥
सावन सुदी बिदित एकादसी होत है मंगलचार।
करि सिंगार सिंघासन बैठे सब बालक परिवार ॥
व्रज-सुंदरि मिलि गावति, आवति मोतिनि भरि-भरि थार।
'कुंभनदास' प्रभु 'तुम चिर जीवो' देत पवित्रा उदार ॥

* इसी तुक से गोविन्द स्वामी का एक पद है जो प्रथक है। (देखो-'गोविंद स्वामी' पद स २ ६) काकरोली प्रकाशन। सं १२१ और १२२ एक ही पद है।

राखी —

१२५ (सारंग)

मात जसोदा राखी बांधै बल के श्रीगोपाल क ।
कनक-थार अच्छित, कुंकुम लै तिलकु कियो नंदलाल कें ॥
बसन विविध आभूपन साजें पीताम्बर वनमाल कें ।
मृगमद, अगर, घनसार, अरगजा लावति मदन गोपाल कें ॥
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर उर राजत मनिमाल कें ।
देत असीस सकल गोपीजन, नव घनस्याम तमाल कें ॥

१२६ [सारंग]

राखी बांधति है नँदरानी ।
रत्नजटित की सुभग बनी अति मोहन के मन मानी ॥
विप्र बुलाइ दई बहु दच्छिना जसुधा हिय हरपानी ।
'कुंभनदास' गिरिधर के ऊपर रसबस वारति पानी ॥

१२७ [सारंग]

* रच्छा बांधति जसुधा मईया ।
विविध सिंगार किए पट भूपन पुनि-पुनि लेति बलईया ॥
तिलक करति, आरती उतारति हरपि-हरपि मन-मईय ॥
नाना भांति भोग आग धरि कहति- जेंउ बल-भईया ! ॥
नरनारी सब आए तहां मिलि निरखन नंद-ललईया ।
'कुंभनदास' गिरिधर चिर जीवो सकल घोप सुख-दईया ॥

❀

इति वर्षोत्सव-पद

* इसी तुक से गोविंदस्वामी का पद है, जो प्रथक हैं। देखो:—'गोविंदस्वामी' पद स २२० काकरोली प्रकाशन,

अब कहुं बाहरि जान न दैहों मेरौ हियो जुडायो ।
घर ही ब्रोहोत खिलौना तेरें काहेकों बाहरि धायो ॥
एक ठोंई दैन उराहनो आई, 'मैं काहू कौ दधि नहीं खायो' ।
'कुंभनदास' गिरिधर यों कहैं तब करत आपुनो भायो ॥

१३५ [गौरी]

अरी माई ! देखत कौ कान्ह बारौ ।
निर्मल जल जमुना कौ कीन्हो, घीसि आन्यौ नाग कारौ ॥
अति सुकुमार कमल हू तें कोमल, गिरि गोवर्द्धन धारयौ ।
बूडत तें ब्रज राखि लियो है—मेटि इन्द्र कौ गारयौ ॥
है कोउ देव, बडौ देवनि में जसुमति ! पूत तिहारौ ।
'कुभनदास' भक्त की जीवनि सर्वसु प्रान हमारौ ॥

ब्रजभक्त—प्रार्थना —

१३६ [देवगधार]

तुम नीकें दुहि जानत गईयां ।
चलिये कुँवर रसिक नंदनंदन ! लागों तुम्हारे पईयां ॥
तुम[1] हिं जानिके कनक—दोहिनी घर तें पठई मईयां ।
निकटि हिं है इह खरिक हमारो नागर ! लेऊं बलईयां ॥
देखी परम सुदेस सुंदरी चितु चिहुटयौ सुंदरईयां ।
'कुंभनदास' प्रभु मानि लई मन[2], गिरिगोवर्द्धन—रईयां ॥

१३७ [ ]

* कान्ह ! तिहारी सौं हौं आउंगी ।
सांझ सजोखन खरिक वछरुवा, स्याम ! समौ जो— पाउंगी ॥

१ रति (क)

* इसी तुक से पाठ—भेद के साथ यह पद परिशिष्ट २ स. २३४ पर सूरसागर में छपा है । सपादक को इस के सूरकृत होने पूर्ण सन्देह है । इस में छाप की तुक इस प्रकार है—" सूरदास प्रभु तुमसों छल करि कब लों आपु छुडाऊ गी । यह कुमनदास कृत ही है ।

जो–मेरे भवन भीर नहिं व्है है, तौ हौं तुम्हें बुलाउंगी।
बाल गोपाल–झुलावन के मिस ऊंचौ सुर लै गाउंगी॥
होत अवार दूरि घर जैबो ऊतर कहा बनाउंगी ?।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन–धर! अधरसुधा–रस पाउंगी॥

१३८ [गोरी]

कान्ह ! दुहि दीजै हमारी गईयां।
तुम्हें जानि सतभाइ लडैते नित उठि पठवति मईयां॥
सब कोउ कहत–'परम उपकारी संकरषन कौ भईयां'।
लेहु कुंवर! कर कनक–दोहिनी नंद–नंदन! हौं लेउं बलईयां॥
हम तें बहुत तिहारें गोधन, बहुत दूध–दधि, घईयां।
'कुंभनदास' प्रभु करो कृपा नेंकु गिरि गोबर्द्धन–रईयां॥

परस्पर हास–वाक्य —

१३९ [नटनारायण]

गोपाल ! तोसों खेलै कौन बहोरि ?
रहु मोहन! इह कौन चतुराई मोतिनि–लर लई तोरि॥
इह विनोद नीकौ तुम पहियां पकरत बांह मरोरि।
हौं अपनें घर कहा कहोंगी ? चुरियां डारि सब फोरि॥
'कुंभनदास' प्रभु कहत–'खिझति कत ? ल्याउ देऊ'गौ जोरि।
लाल गोवर्द्धन–धारी सों मुसकाइ चली मुख मोरि॥

१४० [आसावरी]

ग्वालिनि ! तैं मेरी गेंद चुराई।
अब ही आइ परी पलका पे ॲगिया–बीच दुराई॥
एहो गोपाल! झूठ जिनि बोलो, एते पर कहा सीखे चतुराई ?
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन–धर! छतियां छुओ न पराई॥

मुरली-हरण —

१४१ [विलावल]

नंद-नंदन के अंक तें मुरली सुंदरि चतुर हरति ।
नूपुर मुखर मूंदि, अछन-अछन पांइ धरति ।।
कनक-वलय, कंकन जुग भुजानि उछिप्त करति ।
'कुंभनदास' गिरिधर के मुदित नैंन देखति
चकृत मंद हास कौतुक-रस तें जागनि तें डरति ॥

१४२ [विलावल-जतिताल]

नागर नंद-कुमार मुरली हरत न जानी ।
गिरिवर-धर के अंक तें अचानक लई राधिका सयानी ।।
व्रजसुंदरि जतनतु मूंदन की नूपुर कंकन-बानी ।
'कुंभनदास' मुसकात मंद गति अछन-हिं अछन पयानी ॥

१४३

आवत ही जु करी चतुराई ।
नव नागरी निकुंज-ओट व्है लै मुरली कहुं अनत दुराई ॥
मृदु मुसकाइ, कही इक बतियां सो ब तियनि वरनी नहिं जाई ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर नौतन प्रीति आजु ही पाई ॥

प्रभु-स्वरूप वर्णन—

१४४ [धनासिरि]

सुंदरता की सींवा नैंन ।
अति हि स्वच्छ, चपल, अनियारे, सहज लजावत मैंन ॥
कॅवल, मीन, मृग, खंजन आदिनि तजि अपने सुख चैंन ।
निरखि सबनु सखि ! एक अंस पर सरवसु कीयो दैंन ।।
जब अपने रस गूढ भाव करि कछुक जनावत सन
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर जुवतिनि मन हरि लैंन ।।

१४८ [धनासरी]

वदन की भांति सबै सखि ! चारु ।
कर कपोल की मदन कोटि–छवि लोचन भरि व निहारु ॥
सुंदरता–सिंधु तजि है मरजादा वाढ्यौ अति विस्तारु ।
जुवतिनि–नैन रहे थकि तामें तरत न पावत पारु ॥
सरद–कमल, ससि की उपमा कौ आवै न जिय हिं विचारु
'कुंभनदास' लाल गिरिधर कौ अद्भुत रूप सुढारु ॥

१४६ (धनासरी)

देखो[1]री सोभा श्याम–तन[2] की ।
मानहुं लई कुंवर नँद–नंदन गति सब नव घन की ॥
तडिदिव पीत वसन जु पुरंदर–धनु जनु माला घन की ।
मुक्ताहार कंठ उर पर सखि ! पंगति वक–गन की ॥
रूप–वारि वरखत निसि वासर सींचत वृत मन की ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन–धर जीवनि व्रज–जन की ॥

१४७ [सारंग]

नंद–नंदन नवल कुँवर व्रज वर सौभाग्य–सींव
वदन–ओप देखि सखी ! नैननि मन हरत री ! ।
स्याम सेत अति हि स्वच्छ, वंक चपल चितवनी
मानहुं सरद–कमल ऊपर खजन द्वै लरत री ! ॥
अलकावलि मधुप–पांति अंगर छवि कहि न जाति ।
निरखत सौन्दर्य मदन–कोटि पाइनु परत री !
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर स्यामरूप–मोहिनी,
दिवि–भुवि–पाताल जुवति सहज ही वस करत री ! ॥

१ तुम देखो री (प्रचलित पाठ) २ नागर नट की (व. १५५–२–९२)

मुरली–हरण —

१४१ [विलावल]

नंद–नंदन के अंक तें मुरली सुंदरि चतुर हरति ।
नूपुर मुखर मूंदि, अछन–अछन पांइ धरति ।।
कनक–वलय, कंकन जुग भुजानि उछिप्त करति ।
'कुंभनदास' गिरिधर के मुदित नैंन देखति
चकृत मंद हास कौतुक-रस तें जागनि तें डरति ।।

१४२ [विलावल–जतिताल]

नागर नंद–कुमार मुरली हरत न जानी ।
गिरिवर–धर के अंक तें अचानक लई राधिका सयानी ।।
व्रजसुंदरि जतनतु मूंदन की नूपुर कंकन–बानी ।
'कुंभनदास' मुसकात मंद गति अछन–हिं अछन पयानी ।।

१४३

आवत ही जु करी चतुराई ।
नव नागरी निकुंज–ओट व्है लै मुरली कहुं अनत दुराई ।।
मृदु मुसकाइ, कही इक बतियां सो ब तियनि वरनी नहिं जाई ।
' कुंभनदास ' प्रभु गोवर्द्धन–धर नौतन प्रीति आजु ही पाई ।।

प्रभु–स्वरूप वर्णन—

१४४ [धनासिरि]

सुंदरता की सींवा नैंन ।
अति हि स्वच्छ, चपल, अनियारे, सहज लजावत मैंन ।।
कॅवल, मीन, मृग, खंजन आदिनि तजि अपने सुख चैंन ।
निरखि सबनु सखि ! एक अंस पर सरवसु कीयो दैंन ।।
जब अपने रस गूढ भाव करि कछुक जनावत सैन
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन–धर जुवतिनि मन हरि लैंन ।।

१८३ [विभास]

तरनि-तनया तीर आवत प्रभात समै
गेंदुका खेलत देख्यौ आनंद कौ कंदवा ।
नूपुर कुनित पग, पीतांबर कटि बांधे,
लाल उपरेना, सिर मोरनि कौ चंदवा ॥
पंकज नैन सलोल, बोलत मधुरे बोल,
गोकुल नारी-संग बनी दस छंदवा ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धारी लाल,
चारु चितवनि, खोलै कंचुकी के बंदवा ॥

१८४ [पूरवी]

जमुना के तट ठाढो मुरली बजावत
मोहन मदन-गोपाल ।
सीस टिपारो, कटि लाल काछिनी,
पीत उपरेना, उर राजति बनमाल ॥
कमल फिरावत, गति उपजावत,
गावत अति रस-गीत रसाल ।
'कुंभनदास' प्रभु त्रिभुवन मोहत
गोवर्द्धन-धर लाल ॥

१८५ [आसावरी]

जमुना-तट ठाढो देख्यौ आली! मोहन मदनगोपाल री ।
कसूंभी पाग, पीत उपरेना, उर गज-मोतिनि माल री ॥
देखत ही मन मोहि रहत सखि! अँग-अग रूप रसाल री ।
'कुंभनदास' प्रभु त्रिभुवन-मोहन गोवर्द्धन-धर लाल री ॥

१४८ [सारंग]

कहत न बनि आवै हरि के मुख की सुंदरता ।
नख-सिख अंग विचारत ही नित यहै पचत हारयौ करता ॥
सरद-चंद जे जलजात सवनि की ओप कांति-हरता ।
'कुंभनदास' प्रभु सौभग-सींवा ललनु गोवर्द्धन-धरता ॥

१४९ [गौरी]

हरि के नैंननि की उपमा न बनै ।
खंजन, मीन, चपल कहियतु ए एसेनि कोन गनै ॥
राजीव, कोकनद, इंदीवर और जाति सब रही विचारि जिय अपनै ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिवर-धर ए परम निचोल रचे सुठनै ॥

१५० [धनाश्री]

रंगीले री! छबीले नैना रस भरे, नाचत मुदित अनेरे रे ।
खंजरीट मानों महामत्त दोउ कैसे हू घिरत न घेरे रे ॥
श्याम, सेत, राते, रँग-रंजित मानों चित्र चितेरे रे ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर स्याम-सुभग तन हेरे रे ॥

१५१ [केदारो]

छिनु-छिनु बानिक और हि और ।
जब देखों तब नौतन सखि री! दृष्टि जु रहति न ठौर ॥
कहा करों परमिति, नहीं पावत बहुत करी चित दौर ।
'कुंभनदास' प्रभु सौभग[1]-सींवा गिरिवर-धर सिरमौर ॥

१५२ [केदारो]

सरद-सरोबर सुभग अंग म वदन कमल चारु फूल्यौ री माई! ।
ता-ऊपर बैठे लोचन दोउ खंजन मत्त भए मानों करत लराई ॥
कुंचित केस सुदेस सखी री! मधुपनि की माला फिरि आई ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरि(वर) धरन लाल हैं भए जुवतिनि सुखदाई ॥

१ गोवर्द्धन धर, रसिकराइ सिर० [वंध २७-८-१४१]

१८३ [विभास]

तरनि-तनया तीर आवत प्रभात समै
गेंदुका खेलत देख्यौ आनंद कौ कंदवा ।
नूपुर कुनित पग, पीतांबर कटि बांधे,
लाल उपरेना, सिर मोरनि कौ चंदवा ॥
पंकज नैन सलोल, बोलत मधुरे बोल,
गोकुल नारी-संग बनी दस छंदवा ।
' कुंभनदास ' प्रभु गोवर्द्धन-धारी लाल,
चारु चित्तवनि, खोलै कंचुकी के बंदवा ॥

१८४ [पूरबी]

जमुना के तट ठाढो मुरली बजावत
मोहन मदन-गोपाल ।
सींस टिपारो, कटि लाल काछिनी,
पीत उपरेना, उर राजति बनमाल ॥
कमल फिरावत, गति उपजावत,
गावत अति रस-गीत रसाल ।
' कुंभनदास ' प्रभु त्रिभुवन मोहत
गोवर्द्धन-धर लाल ॥

१८५ [आसावरी]

जमुना-तट ठाढो देख्यौ आली ! मोहन मदनगोपाल री ।
कसुंभी पाग, पीत उपरेना, उर गज-मोतिनि माल री ॥
देखत ही मन मोहि रहत सखि ! अँग-अग रूप रसाल री ।
' कुंभनदास ' प्रभु त्रिभुवन-मोहन गोवर्द्धन-धर लाल री ॥

१५६　　　　　　　　　　(सारंग)

× सोभित लाल परधनी झीनी।
ता–पर एक अधिक छवि देखियतु जलसुत–पांति वनी कटि छीनी ॥
उज्वल पाग स्याम–सिर राजति अलकावलि मधु–पीनी।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन–धर चपल नयन जुवतिनि बस कीनी ॥

१५७　　　　　　　　　　[किदारो]

सखी ! तू देखि मदनगोपाल ठाढे, आजु नव निकुंज।
रसिक, रूप–निधान, सुदर स्याम आनंद–पुंज ॥
कमल नैंन विसाल, चंचल, सरस चितवनि–दैन।
मंद मुसकनि, बदन–छबि पर वारों कोटिक मैन ॥
हिंदै माल, मराल गजगति परम मधुरे हास।
श्रीगिरिधरन–छबि सुजस चित धरि गाइ 'कुंभनदास' ॥

१५८　　　　　　　　　　[विभास]

श्रीस्वामिनी–स्वरूप वर्णन —

सखि ! तेरे चपल नयन, अरु बडे–बडे तारे।
हरि–मुख निरखि न मात पटनि में खनु,
निसि–दिनु रहत उघारे ॥
जो आगें तें पंथु रोकते नाहिं स्त्रवनु तौ
नां जानों कहां चलेजात[१] अपढारे।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधरन रसिक ए
कृपा–रस सींचि[३] अति सुख बाढे भारे ॥

× इसी प्रकार "ओढे लाल उपेरनी झीनी" इस तुक से परमानंददास कृत पद भी है।

१ जाते (क)　　२ सींचे (क)

१५९ [देवगधार]

कुंवरि राधिका ! तू[1] सकल-सौभाग्य सींव
या वदन पर कोटि-सत चंद्र वारों ।
खंजन कुरंग-सत कोटि नैननि-ऊपर
वारनें करत जिय में न विचारों ॥
कदलि सत-कोटि जंघनि-ऊपर,
सिंह सत-कोटि कटि पर न्योंछावरि उतारों ।
मत्त गज कोटि-सत चाल पर
कुंभ सत-कोटि इनि कुचनि पर वारि डारों ॥
कीर सत-कोटि नासा-ऊपर,
कुंद सत-कोटि दसननि-ऊपर कहि न पारों ।
पक्व किंदूर बंधूक सत-कोटि
अधरनि-ऊपर वारि रुचि गर्व टारों ॥
नाग सत-कोटि वेनी ऊपर
कपोत सत-कोटि ग्रीव-पर वारि दूरि सारों ।
कमल सत-कोटि कर-जुगल पर वारने
नांहिन कोउ लोक उपमा जु धारों ॥
'दास कुंभन' स्वामिनी-सुनख सिख
अंग अद्भुत सुठान कहां लगि संभारों ? ॥
लाल गिरिवर-धरन कहत मोहि तौलौं सुख
जौलौं - उह रूप छिनु-छिनु निहारों ॥

१६० (कल्यान)

सखि ! कहा कहौं तुव रूप की निकाई ।
नख-सिख अंग-अंग लाल गिरिधरन-हित
रचि-पचि विरंचि अद्भुत वनाई ॥

---

1 राधिका सकल (क)

चाल मत्त मराल, जंघ कदली-खंभ
कटि सिंघ, गौर तन सुभग-सींवा ।
उरज श्रीफल पक्व, अलक केकी-छटा
बचन पिक मोहत, कपोत ग्रीवा ॥

तरल जुग लोचने नलिन-श्री-मोचने
चिबुक सॉवल बिंदु चारु वेस ।
स्रवन ताटंक हाटक रत्न खचित
सुमधिक छवि सोभित कपोल वेसं ॥

अधर बंधूक-दुति कुंद दसनावली,
ललित वर नासिका तिल-प्रसूने ।
निरखि मुख चंद्रमा रयनि संभ्रम चित्त
चलत ततच्छिन बिछुरि कोक दूने ॥

सकल श्री-सिंधु इहिं कहां लगु वरनिये ?
कोटि मुख जीभ परमिति न पावै ।
'दास कुंभन' स्वामिनी कौ सुजसु
अंतरंगिनी सहचरी मुदित गावै ॥

१६१ [नटनारायण]

सखि ! तेरे तन की सुंदरता ।
नख-सिख अंग-अंग अवलोकन करि चक्रत भयो करता ॥
गति अनूप, कटि कृस अनूप, अति उर अनुपम सुभरता ।
छवि अनूप उपजति छिनु-छिनु सखि ! अनुपम उज्वलता ॥
परमिति करत विचार बिबिध चित नांहिन रहत सुमिरता ।
'कुंभनदास' स्वामिनि ! तोहि-वस गोवर्द्धन-धरता ॥

१६२ (नट नारायण)

विधाता एकौ विधि न बच्यौ ।
लै सब सबु[1] कौ सार राधिका ! तेरे तन आनि सच्यौ ॥
कर पद कमल, जंघ कदली, गति मत्त गयंद मराल
ग्रीवा कपोत, उरज श्रीफल, कटि केहरि, भुजा मृनाल ॥
मुख चंद्रमा, अधर बिंबा, विद्रुम बंधूक सुरंग ।
तिल प्रसून शुक नाक, नयन-जुग खंजन, मीन कुरंग ॥
दसनावली वज्र, बिज्जुलता दारयों कुंद-कली ।
छवि-रुचि कनक, बचन पिक के सम मयूर मधुप-अवली ॥
अद्‌भुत रचना रची प्रजापति नख-सिख अंग सुख दै ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर-हित पच्यौ परम चित दै ॥

१६३ [नट नारायण]

गिरिधर पिय के हृद बसी तेरे बदन की परम सुदेस छबि ।
एक अंग के रूप के आग जात[2] सखि! कोटिसत चंद्रमा दवि[3]॥
नैन अंस की सोभा वरनि सकै एसौ कौन कवि ?
'कुंभनदास' स्वामिनि राधिका ! इहै गति तोहि कों यों आइ फबि ॥

१६४ [नट नारायण]

विधि कै रचे विधाता माई री !
तेरे नैन परम रंजन ।
सहज सुतिक्ष, सौभाग्य-सींव, गिरिधरलाल[4] के
हृदै में बसत, निसि-दिनु उपमा कों कंज न ॥
जब तू ब्रज-कुमारि! मुदित अपनें रस,
सकल सुहथ धरि हरि-हेत अजन ।
'कुंभनदास' निरखत हीं गरबु छांडत,
अपनी रुचि कौं खंजन ॥

१ सचु (क) २ भाजत (क) ३ रवि (,क) ४ गिरिधरनलाल (क)

१६५ [कानरो]

री राधे ! वदन तेरौ विधि कैं रच्यौ ।
त्रिभुवन की कृति छांडि विधाता चितु दै पच्यौ ॥
कमल, इंदु, बंधूक, शुक, पिक, अलि सबु कौ रूप लै छांई सच्यौ ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधारी कों दै भेंट नच्यौ ॥

१६६ [केदारो]

सखि ! तेरी मोहिनी टेढी भौंहैं ।
मोहिनी सुगति टेढी दुंहुं नैननि की
अरु[1] चितवनि टेढी अधिक सोहैं ॥
मोहिनी अलक टेढी – वेढी बहु भांतिनि
अरु टेढिये चलनि, पग धरनि धरति सुठोहैं ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन–धर इहि छबि
मोहे री ! इकटकु जोहैं ॥

१६७ [विलावल]

सखी री ! जिनि व सरोवर जाहि–
अपनें रस कौं तजि चक्रवाकी बिछुरि चलति सुख चाहि ॥
सकुचत कमल अकाल पाइकें, अलि व्याकुल दुख दाहि ।
तेरौ सहज आन सब की गति, इह अपराधु कहि काहि ॥
इक अद्‌भुत ससि रच्यौ विधाता सरस रूप अतिसाहि ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर नागर देखे फूलें ताहि[2] ॥

१६८ [विलावल]

तेरे तन की उपमा कौं[3] देख्यौ
मैं विचारि के कोउ नांहिन भामिनि !
कहा बापुरो कंचन, कदली, कहा केहरि, गज,
कपोत, कुंभ, पिक कहा चंद्रमा कहा वापुरी दामिनि ? ॥

---
१ अति (क) २ चाहि (क) ३ क्यों रच्यौ (क)

कहा कुरंग, सुक, बंधूक, केकी, कमल या आगें
श्री देखिये सब की निःकामिनि ॥
मोहन रसिक गिरि—धरन कहत 'राधे !
परम भांवती तू है' 'कुंभनदास' स्वामिनि ॥

१६९

तेरे नैन चंचल वदन कमल पर जनु जुग खंजन करत कलोल।
कुंचित अलक मनों रस–लंपट चलि आए मधुपनि के टोल ॥
कहा कहौं अँग-अँग की सोभा खुंमीनि परसत चारु कपोल।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन–धर देखत वाढै मदन अमोल ॥

१७०

सींवा नैंननि तेरे की ?
अव नहिं दृष्टि दुरांठ री प्यारी सखि ! सुनु जिय मेरे की ॥
कमल, मीन, मृग–जूथ भुलाने वर कटच्छ फेरे की।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर रिझवति भ्रुव–विलास घेरे की ॥

युगलस्वरूप–वर्णन—

१७१ (सारंग)

वनी राधा गिरिधर की जोरी।
मनहुं परस्पर कोटि मदन रति की सुंदरता चोरी ॥
नौतन स्याम नंद–नंदन वृपभान–सुता नव गोरी।
मनहुं परस्पर वदन चंद्र कों पीवत तृपित चकोरी ॥
'कुंभनदास' प्रभु रसिक लाल बहुविधि व रसिकिनी निहोरी।
मनहिं परस्पर बढ्यौ रंग अति उपजी प्रीति नहिं थोरी ॥

१७२ (विहागरो)

रसिकनी रस में रहति गडी
कनक–वेलि वृपभान–नंदिनी स्याम तमाल चढी ॥

१६५ [कानरो]

री राधे ! वदन तेरौ विधि कैं रच्यौ।
त्रिभुवन की कृति छांडि विधाता चितु दै पच्यौ ॥
कमल, इंदु, बंधूक, शुक, पिक, अलि सबु कौ रूप लै ह्यांई सच्यौ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधारी कों दै भेंट नच्यौ ॥

१६६ [केदारो]

सखि ! तेरी मोहिनी टेढी भौंहैं।
मोहिनी सुगति टेढी दुंहुं नैननि की
अरु[1] चितवनि टेढी अधिक सोहैं ॥
मोहिनी अलक टेढी - बेढी बहु भांतिनि
अरु टेढिये चलनि, पग धरनि धरति सुठोहैं।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन–धर इहि छवि
मोहे री ! इकटकु जोहैं ॥

१६७ [बिलावल]

सखी री ! जिनि व सरोवर जाहि–
अपनें रस कों तजि चक्रवाकी बिछुरि चलति सुख चाहि ॥
सकुचत कमल अकाल पाइकें, अलि व्याकुल दुख दाहि।
तेरौ सहज आन सब की गति, इह अपराधु कहि काहि ॥
इक अद्भुत ससि रच्यौ विधाता सरस रूप अतिसाहि।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर नागर देखे फूलें ताहि[2] ॥

१६८ [बिलावल]

तेरे तन की उपमा कों[3] देख्यौ
मैं विचारि के कोउ नांहिन भामिनि !
कहा बापुरो कंचन, कदली, कहा केहरि, गज,
कपोत, कुंभ, पिक कहा चंद्रमा कहा बापुरी दामिनि ? ॥

१ अति (क) २ चाहि (क) ३ क्यों रच्यौ (क)

उमडि-घुमडि झूमि-झूमि चहुं दिसि तें घटा आई
निधरक भए डोलत देखो निहारि ॥
हाहा ! कहि भली भांति टेरि ग्वाल कीन्ही पांति
अर्जुन ! तुम लेहु भईया पनवारे देहु डारि।
'कुंभनदास' गोवर्द्धन-धरन लाल छाक'बांटि-
जैंमन लागे, आग्यां दीनी तिहीं वारि ॥

१७७ [मलार]

गरजि-गरजि रिमि-झिमि रिमि-झिमि बरसन लाग्यौ
वन में लै आई छाक औचक गई हौं अटकि ॥
दूजें गई भूलि बाट, निकसी औघट घाट
कठिन पाई गैल तातें फिरी हौं भटकि ॥
भींजें उर व्यंजन ढिग जोवन की संक मानि,
देखि ढाक सधन छांहि धर्यौ डला भूमि लटकि ॥
'कुंभनदास' गोवर्द्धन-धरन-कूक स्रवन सुनत
छाक ढांपि पातनि सों, चली सटकि ॥

१७८ [मलार]

मोहनलाल, बाल हरखि निरखि रीझि रहे,
भींजे सब बसन देखि कहत 'लै री ! पलटि ।
पीतांबर पहरि लीजै छाक बांटि सबनि दीजै
बरखा रितु आई घर कों सिदोसी जाओ उलटि ॥
भूख तें अकुलाइ रहे, खीजत कहत रटत भए,
सकल दुख गए भटू ! तोकों तो भए सुलटि ।
'कुंभनदास' गोवर्द्धन-धर लाल ! अनत जात रहे
तेरे भागि तोहिं पाए अति हि निकटि ॥

१७९ [मलार]

बरजि-बरजि हारे बरजत न डारे
जूठनि मांझ बिंजन, भयौ भोजन हरि।
नीकें सब लिये अघांइ कौर न मुख दियो जाइ
जमुनोदक पान करत अचवन करि॥
सुबल, तोष, मधुमंगल-परिवृत अर्जुन, भोज, बाहु-सहित
हरि — समीप श्रीदामा कोरि भरि।
बाँटत है बीरा ग्वाल गोवर्द्धन-धरन लाल
'कुंभनदास' बरखा - रितु बरसत झरि॥

१८० [मलार]

आजु हरि जैंवत अति सुख दीनौं।
बरसत मेह नेह उपजावत रुचि-रुचि भोजन कीनौं॥
बिडरी धेनु करै इकठौरी भेजि सुबल कों दीनौं।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर भक्ति कृपा-रस भीनौं॥

१८१ [मलार]

लाल! बन भयो सकल हरियारौ।
चहूं ओर करि नहारौ लागत है अति प्यारौ॥
यही ठौर भौजन करिवे की बिंजन कहा संभारौ।
सघन कुंज बरसौ किन बादर झूलन और बिचारौ॥
आग्यां दई गोपाल ग्वालनि कों भलौ मतौ जिनि टारौ।
'कुंभनदास' मंडल-मधि सोभित गिरिधर नंद-दुलारौ॥

१८२ [मलार]

आरोगत मोहन मंडल-जोर।
बिंजन स्वाद मेल अति लागत ज्यों गरजै घन-घोरि॥
नन्हीं-नन्हीं बूंद सुहावनी लागत तैसीय पवन-झकोरि।
बौछारनि की फुही परत, कर मेलत मुख में कोरि॥

देखी लाल गांइ सब इत-उत बछरनि घेरत दोरि ।
गिरिधर पिय कों देखि महासुख 'कुंभनदास' तृन तोरि ॥

भोजन —

[टोडी]

१८३

जेंवत मैं री ! मोहन अब जिनि जाओ तिवारी ।
सिंहपेरि तें फिरि-फिरि आवति बरजी हौं सौ वारी ॥
रोहिनि आइ निकसि ठाढी भई दैदै आडि मुख सारी ।
तुम तरुनी जोबन-मदमाती एसी जु देखन-हारी ॥
कोउ गरजत कोउ लरजत आवति कोउ बजावति तारी ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर अब हौं बैठे थारी ॥

[टोडी]

१८४

आजु हमारें मोहन जेंवें सोई कीजै व्रजरानी !
कहा भवन मो दूरि जु रहे अब दधि-ओदन भरि धरि हों पानी ॥
वडी वार की उठी बहू विटिया, कोउ है भोरी कोउ है सयानी ।
रचि-रचि विंजन खाटे-मीठे करि-करि लांउ जोई मनमानी ॥
कहति रोहिनी सुनु हो जसोमति ! प्रेम लपेटी बानी ।
सैननि-सैननि समझि-समझि करि मन-ही मन मुसकानी ॥
बलदाऊ कों टेरि लिये हैं, दिये सखा पठै, विधि जानी ।
'कुंभनदास' गिरिधर लै आए महलनि - सुरति-निसानी

आवनी —

[धनासिरि]

१८५

देखि री ! आवनि मदनगोपाल की ।
सक्र-वाहन मत्त निरखि लाजत जिय, गति अनूप लटक-चाल की ॥
स्याम-तन कटि-बसन मन हरत, सुन्दर्यता उरसि माल की ।
भौंह धनु साजि मानों, मदन-सर चितवनि लोचन विसाल की ॥

रेनु-मंडित कुटिल अलक सोभा कस्तूरिका तिलक भाल की।
'दास कुंभन' चारु हास मोहै जगतु गोवर्द्धन-धर कुवर लाल की॥

१८६ [गोरी इकताल]

देखो[१] वे आवें हरि धेनु लियें।
जनु प्राची दिसि पूरन ससि रजनी-मुख उदौ कियें॥
मंडल विमल सुभग वृन्दावन राजत व्योम बियें।
बालक-वृंद नछत्र, सोभा मन चोरत दरस दियें॥
गोपिनि नैन-चकोर सीतल भए रूप-सुधा हि पियें।
'कुभनदास' स्वामी गिरिधर व्रज-जन आनंद दियें॥

१८७ [श्रीराग]

आवत मोहन[२] चित्त हरयो।
हौं अपने गृह सचु सों बैठी निरखि वदन अचरा विसरयौ॥
रूप-निधान[३] रसिक नंद-नंदन देखि नयन धीरजु न धरयौ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धनधर अँग-अँग प्रेम-पीयूप भरयौ॥

१८८

एरी! यह फेंटा ऐंठवा सीस धारें।
चारु चन्द्रिका राजति तापै राजतार हिं सुधारें॥
ताढिग लटकि रही अलकाबलि बहु मोतिनि के भारें।
सुंदर मुख पर रज राजति है [सखनि सहित] गऊ चारे॥
वन तें वने री! आवत वनवारि जुवती-जूथ निहारें।
'कुभनदास' गिरिधर की छवि पर तन-मन-धन सब वारें॥

---

१ देखो हरि आवत धेनु (क) २ आवत गिरिधर मन जु हरयो हो। (वार्ता)
३ रूप अनूप स्याम सुदर कों देखत मन. (व १-९/१८९)

१८९ [मलार]

गांइ सब गोवर्द्धन तें आईं ।
बछरा चरावत श्रीनँद-नंदन वेनु बजाइ बुलाईं ॥
घेरी न थिरतिं गोप-बालनि पें अति आतुर व्है धाईं ।
बाढी प्रीति मदन-मोहन सों दूध की नदी वहाईं ॥
निरखि सरूप ब्रजराज-कुंवर कौ नैननि हरखि सिराईं ।
'कुंभनदास' प्रभु के चहुं दिसि ते मानों चित्र लिखाईं ॥

१९० [गौरो]

फुटिफट किन लै हौं घेरि ।
बहुतक फैलि रहीं खादर में मुरली सुनावो टेरि ॥
चारि अंजुली न पानी पीजै जमुना कौ, बहुरि अघानी फेरि ।
हुलकत हुँकत करति बछरनि-सुधि धावति खरिकनि हेरि ॥
जो कोउ रहीं और लहेडे में ताहिव लैहों निवेरि ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर भई दुहुन की वेरि ॥

१९१ [केदारो]

गोपाल[1] के वदन पर आरती वारों
एकचित्त मन करों साजि नीकी जुगति
वाती अगनित घृत कपूर सों वारों ॥

संख[2]-धुनि, भेरि, मृदंग, झालरि,
झांझ, ताल, घंटा जे बहु विस्तारों ।
गाऊं सांवल-सुजसु-रस नेकु सुस्वाद रस
परम हरषित नित चंवर कर टारों ॥

१ लाल के (अष्ट छाप-वार्ता काकरोली)

२ ताल डफ मृदंग सख झांझ झलरी घटा बाजै आनग विस्तारों [वं. २७।४ १४१]

कोटि रवि उदित मानों कांति अँग-ॲग[1] प्रति
करि सकल लोक क्रेतिक वारि डारों।
'दास कुंभन' कहै लाल गिरिधरन कौ-
रूप, नयन भरि-भरि निहारों॥

आसक्ति वर्णन —

१९२　　　　　　　　[धनासिरी]

तू तो[2] नंद-भवन आवन के कारन कौन कौन मति[3] ठानति।
नागरि! वृथा[4] काज की बातें कैसें कैसें वानति॥
भोर हि तें संध्या लों[5] चितवति बारंबार पयानति।
परम चतुर विद्या-संपूरन ठांचे[6] हि ऊतर आनति॥
होत[7] न चैन भवन एकौ छिनु वरज्यो कह्यौ न मानति।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर सों मन अटक्यौ हौं जानति॥

१९३　　　　　　　　[धनासिरी-जतिताल]

कहति तू तो नैननि ही मो बतियां
मानहु कोटिक रसना इनि मॅह-रचि घाली बहु भतियां॥
हमसों कौन चाड व्रज-सुंदरि! छांडि बिकाज बिनतियां।
ए भए चपल बसीठ चतुर अति जानत[8] सकल जुगतियां॥
जो तरंग उपजति चित-अंतर सोई मिलवति बिधि-मतियां
सुंदरश्याम मदनमोहन की तर्कें रहति है घतियां॥
आपुन करति मनोरथ पूरन सदा परम सुख छतियां।
'कुंभनदास' गिरिधरन लाल के बसति जीऊ दिन-रतियां॥

---

(१) अंग अग की काति मानों प्रगट करि सकल लोक तिमिर हारौं [ब. २७।४/१४५]
(२) नदभवन आवन (क) (३) मिस (क) (४) मृषा (क) तें आगम की (बा २७।२/३४)
(५) लगु देखति [ब २७।४] (६) ठाए (क) (७) रह्यौ न परत भवन
(८) आनत (क)

१९४ [धनासिरी-अठताल]

कहा नंद कें तू आवति-जाति ?
यो भेदै हौं जानति नांहिन?
कहु री? कवन ग्वालि! तोहि नाति ॥
सांझ सवारें हौं एहि देखति हौं
ना जानौं क्यों तोहि रैनि बिहाति।
अब तो काज सकल बिसराए
गृह-पति तें नांहिन सकुचाति ॥
मदनमोहन सौं तेरौ मन अरुझानौं
गृह नहिं चैन होत किहिं भांति।
'कुंभनदास' लाल गिरधर कौ-
रूप, नयन पीवत न अघाति ॥

१९५ [सारंग]

देखत स्याम-सरूप सखी री! तेरे नैनां रहि गए एक हिं टक।
नागरि! मनहुं चितेरे चितेरी थकित चरन भूली अक-बक ॥
परी सिरसि अति कठिन ठगौरी सुधि-बिनु को मानें काकी सक?
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर तनु-मनु चोरि लियो जु अचक ॥

१९६ (सारंग)

तू भांई गोपाल हिं चितै जु हँसी।
नंद-कुमार[1] देखि अति रीझे मृगनैनी जिय मांझ बसी ॥
गज-गति, चपल सुदेस, किसोरी कुच कठोर चोली सुविधि कसी।
कचन बरन नवल ब्रज[2]-सुंदरि वदन चारु मानों सरद-ससी ॥
बोलत चले सुंदर ब्रज-नाइक जहाँ नव निकुंज द्रुम-बेलि गसी।
'कुभनदास' प्रभु[3] गिरिधर देखत आरज-पथ तें को न खसी? ॥

---

१ मदन गोपाल (क) २ गुन (क) ३ गिरिधर मुख देखत (क)

कोटि रवि उदित मानों कांति अँग-अँग[१] प्रति
करि सकल लोक केतिक वारि डारों।
'दास कुंभन' कहै लाल गिरिधरन कौ-
रूप, नयन भरि-भरि निहारों॥

आसक्ति वर्णन —

१९२ [धनासिरी]

तू तो[२] नंद-भवन आवन के कारन कौन कौन मति[३] ठानति।
नागरि! वृथा[४] काज की बातें कैसें कैसें वानति॥
भोर हि तें संध्या लौं[५] चितवति बारंवार पयानति।
परम चतुर विद्या-संपूरन ठांचे[६] हि ऊतर आनति॥
होत[७] न चैन भवन एकौ छिनु वरज्यो कह्यौ न मानति।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर सों मन अटक्यौ हौं जानति॥

१९३ [धनासिरी-जतिताल]

कहति तू तो नैननि ही मो बतियां
मानहु कोटिक रसना इनि मँह रचि घाली बहु भतियां॥
हमसों कौन चाड ब्रज-सुंदरि! छांडि बिकाज बिनतियां।
ए भए चपल बसीठ चतुर अति जानत[८] सकल जुगतियां॥
जो तरंग उपजति चित-अंतर सोई मिलवति विधि-मतियां
सुंदरश्याम मदनमोहन की तर्कें रहति है घतियां॥
आपुन करति मनोरथ पूरन सदा परम सुख छतियां।
'कुंभनदास' गिरिधरन लाल के बसति जीऊ दिन-रतियां॥

---

(१) अंग अ ग की काति मानों प्रगट करि सकल लोक तिमिर हारौं [ब. २७।४/१४५]
(२) नदभवन आवन (क) (३) मिस (क) (४) मृषा (क) तें आगम की (वा २७।२/३४)
(५) लगु देखति [ब २७।४] (६) ठाए (क) (७) रह्यो न परत भवन
(८) आनत (क)

१९४ [धनाश्रिरी-अठताल]

कहा नंद कें तू आवति-जाति ?
यो भेदै हौं जानति नांहिन?
कहु री? कवन ग्वालि ! तोहि नाति ॥
सांझ सवारें हौं एहि देखति हौं
ना जानों क्यों तोहि रैनि विहाति ।
अब तो काज सकल बिसराए
गृह-पति तें नांहिन सकुचाति ॥
मदनमोहन सों तेरौ मन अरुझानों
गृह नहिं चैन होत किहिं भांति ।
'कुंभनदास' लाल गिरधर कौ-
रूप, नयन पीवत न अघाति ॥

१९५ [सारंग]

देखत स्याम-सरूप सखा री ! तेरे नैनां रहि गए एक हिं टक ।
नागरि ! मनहुं चितेरे चितेरी थकित चरन भूली अक-वक ॥
परी सिरसि अति कठिन ठगौरी सुधि-बिनु को मानें काकी सक ?
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर तनु-मनु चोरि लियो जु अचक ॥

१९६ (सारंग)

तू भांई गोपाल हिं चितै जु हँसी ।
नंद-कुमार[1] देखि अति रीझे मृगनैनी जिय मांझ बसी ॥
गज-गति, चपल सुदेस, किसोरी कुच कठोर चोली सुविधि कसी ।
कचन बरन नवल ब्रज[2]-सुंदरि वदन चारु मानों सरद-ससी ॥
बोलत चले सुंदर ब्रज-नाइक जहाँ नव निकुंज द्रुम-बेलि गसी ।
'कुभनदास' प्रभु[3] गिरिधर देखत आरज-पथ तें को न खसी ? ॥

१ मदन गोपाल (क) २ गुन (क) ३ गिरिधर मुख देखत (क)

कोटि रवि उदित मानों कांति अँग-अँग[1] प्रति
करि सकल लोक कैतिक वारि डारौं।
'दास कुंभन' कहै लाल गिरिधरन कौ-
रूप, नयन भरि-भरि निहारौं॥

आसक्ति वर्णन —

१९२ [धनासिरी]

तू तो[2] नंद-भवन आवन के कारन कौन कौन मति[3] ठानति।
नागरि! वृथा[4] काज की बातें कैसें कैसें वानति॥
भोर हि तें संध्या लौं[5] चितवति बारंबार पयानति।
परम चतुर विद्या-संपूरन ठांचे[6] हि ऊतर आनति॥
होत[7] न चैन भवन एकौ छिनु वरज्यो कह्यौ न मानति।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर सौं मन अटक्यौ हौं जानति॥

१९३ [धनासिरी-जतिताल]

कहति तू तो नैननि ही मो बतियां
मानहु कोटिक रसना इनि मॅह रचि घाली बहु भतियां॥
हमसों कौन चाड ब्रज-सुंदरि! छांडि बिकाज बिनतियां।
ए भए चपल बसीठ चतुर अति जानत[8] सकल जुगतियां॥
जो तरंग उपजति चित-अंतर सोई मिलवति बिधि-मतियाँ
सुंदरश्याम मदनमोहन की तर्कें रहति है घतियां॥
आपुन करति मनोरथ पूरन सदा परम सुख छतियां।
'कुंभनदास' गिरिधरन लाल के बसति जीऊ दिन-रतियां॥

---

(१) अंग अ ग की काति मानों प्रगट करि सकल लोक तिमिर हारौं [ब. २७१४/१४५]
(२) नदभवन आवन (क) (३) मिस (क) (४) मृषा (क) तें आगम की (वा २७१२/३४)
(५) लगु देखति [व २७१४] (६) ठाएं (क) (७) रह्यौ न परत भवन.
(८) आनत (क)

१९४ [धनाश्री-अठताल]

कहा नंद कें तू आवति-जाति ?
यो भेद हौं जानति नांहिन?
कहु री? कवन ग्वालि! तोहि नाति ॥
सांझ सवारें हौं एहि देखति हौं
ना जानौं क्यों तोहि रैनि बिहाति।
अब तो काज सकल बिसराए
गृह-पति तें नांहिन सकुचाति ॥
मदनमोहन सों तेरौ मन अरुझानों
गृह नहिं चैन होत किहिं भांति।
'कुंभनदास' लाल गिरधर कौ-
रूप, नयन पीवत न अघाति ॥

१९५ [सारंग]

देखत स्याम-सरूप सखी री! तेरे नैनां रहि गए एक हिं टक।
नागरि! मनहुं चितेरे चितेरी थकित चरन भूली अक-बक ॥
परी सिरसि अति कठिन ठगौरी सुधि-बिनु को मानें काकी सक?
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर तनु-मनु चोरि लियो जु अचक ॥

१९६ (सारंग)

तू भांई गोपाल हिं चितै जु हँसी।
नंद-कुमार[1] देखि अति रीझे मृगनैनी जिय मांझ बसी ॥
गज-गति, चपल सुदेस, किसोरी कुच कठोर चोली सुविधि कसी।
कचन बरन नवल ब्रज[2]-सुंदरि बदन चारु मानों सरद-ससी ॥
बोलत चले सुंदर ब्रज-नाइक जहाँ नव निकुंज द्रुम-बेलि गसी।
'कुंभनदास' प्रभु[3] गिरिधर देखत आरज-पथ तें को न खसी? ॥

---

१ मदन गोपाल (क) २ गुन (क) ३ गिरिधर मुख देखत (क)

१९७ [सारंग]

मोहन हरि मोहनी तोहिं मेली ।
रह्यौ न जाइ बढी चौंप मिलिवे की कठिन जु प्रीति नवेली ॥
जा दिन तें सुभाइ मृगनैनी ! तू स्यामसुंदर[1]-सँग खेली ।
ता दिन तें न सुहाइ भवन सुनि सब बन भँवति अकेली ॥
वा पें प्रान रहत निसि-वासर जहां बनि[2] कुंज द्रुम-वेली ।
'कुंभनदास' गिरिधर-रस अटकी श्रुति[3]-मरजादा पेली ॥

१९८ [सारंग]

लोचन मिलि गए जब चारयौ ।
व्है ही रही ठगी-सी ठाढी उर-अंचर न संभारयौ ॥
अपनें सुभाइ नंदजू कें आई सुंदर स्याम निहारयौ ।
टग-टगी लगी, चरन-गति थाकी, जिउ व टरत नहिं टारयौ ॥
उपजी प्रीति मदनमोहन सों घर कौ काज विसारयौ ॥
'कुंभनदास' गिरिधर रस-लोभी भलौ तैं आरज-पथ पारयौ ?॥

१९९ [केदारो]

देखे-बिनु नैननि चटपटी लागति
नंद-नँदन की ठगौरी तोहिं है परी ॥
सकल काज विसारे री ! अब तोकों-
रह्यौ न परै घर एकौ घरी ॥

आवत-जात संक न मानति काहू की,
हिलग जु कठिन लोक की लाज विसरी ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर मन चोरयौ,
गोवर्द्धन-धर तू अपने वस करी ॥

---

१ नंदनदन सों (क) २ वन (क) ३ चित्त (क)

२०० [केदारौ]

नैननि चटपटि लागिये रहति है।
हौं देखति हों निसि-दिनु माई! निमि-निमेख न सहति है॥
स्यामसुंदर कौ रूप, माधुरी, देखि-देखिके अंग-अंग[1] लहति है।
'कुंभनदास'प्रभु गिरिधर पिय सों तू वितयॉ सैननि हीं[2] कहा कहति है?॥

२०१ [विलावल]

देखो माई! देखहु उलटी रई ग्वालिनि रीती मथनियां (दही) विलौवै।
विनु हि नेत कर चंचल, फुनि तजि नवनीत हिं टकटोवै॥
देखत रूप चिहुँटि चित लाग्यौ इकटकु गिरिधर-मुख जोवै।
'कुंभनदास' विसरयौ दधि अकवक, औरै भाजन धोवै॥

२०२ [विलावल]

रूप मनोहर सांवरो नंदजू कौ छोरा
पाछें-पाछें डोलत फिरै तुम करो झकझोरा॥
लालच विराने अंग की नहीं मानै निहोरा।
'कुंभनदास' गोवर्द्धन-धर प्रीतम मोरा॥

२०३ [देवगधार]

प्रेम सों झुकि-झुकि मिलवत सोवत मुख गोपी कौ।
झंका करत भौंह नैननि हँसि लागत है अरु नीकौ॥
कहा सी? करों अँचरा गहि ऐंचत गोपी गहति कर पी कौ।
झकि-झोरनि अँचरा कपोल गहि चाहत-चाहत जी कौ॥
या रस कौं अनरस नहिं जानत-जानत, हैं हित ही कौ।
'कुंभनदास' गिरिधर कौ ध्यान उर और रुचिर वररस फीकौ॥

२०४ [देवगंधार]

वहुरि निहोरत[3] स्याम धनी।
नंद-नंदन, वृपभान-नंदिनी रति रस-रंग सनी॥

---
१ अंग लहति है (क) २ सैननि कहा (क) ३ निवेरत (३/१)

स्याम सरूप सुन्यौ पिय-तन में ज्यों धन-तडित बनी ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर बस भए गुन गावति सजनी ।।

२०५ (सारंग)

बिसरि गयो माई ! लाल हिं करत गो-दोहनु ।
निरखि अनूप चंद्र मुख इकटकु रह्यौ सांवरौ मोहनु ।।
नवल नागरि विचित्र चतुर अति रूप अँग-अँग सुठोहनु ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर कौ मन हर्यौ कटीली भौंहनु ।।

आसक्ति-वचन

[प्रभुप्रति]

२०६ [सारग]

परम भांवते जिय के हो मोहन ! नैननि आगें तें मति[१] टरहु ।
तौलों जिउं जौलों देखौं वारंवार पा लागों चित अनत न धरहु ।।
तन सुख चैन तोही लों प्यारे ! जौ लों लै-लै आंकौ भरहु ।
रसिकनु मांझ रसिक नँद-नंदन तुम पिय ! मेरे सकल दुःख हरहु ।।
आवहु, जाहु, रहहु गृह[२] मेरे स्याम मनोहर ! संक न करहु ?
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर ! तुम अरि-गजन कातें व डरहु ।।

२०७ [ईमन]

लाल ! तेरी चितवनि चित हिं चुरावै ।
नंद-गांउ वृषभान-पुरी विच मारगु चलन न पावै ।।
हौं हरी भरि होत ही काहूं ललिता दगनि दिखाइ दगनि दिखावै ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर, धर्यौ है तो क्यों न बतावै ।।+

[सखीप्रति]

२०८ [सारग]

छबीलौ लाल दुहत हे धनु धौरी ।
वारक फिरि चितयो मो-महियां निरखि वदन भई बौरी ।।

१ जिनि (क) २ घर (क) + यह पद स्पष्ट रूप में नहीं मिला ।

कंकन कुनित, चारु चल कुंडल, तन चदन की खौरी।
माथें कनक वरन कौ टिपारो, ओढें पीत पिछौरी ॥
कहा करों मोपे रह्यौ न परतु सखि! मेली है कठिन ठगौरी ॥
'कुंभनदास' तब सुख, गिरिधर कों जब भेंटों भरि कौरी ॥

२०९ [सारंग]

दरसन देखन देहु मेरे आतुर हैं नैन।
वदन चंद-कर पान करें ए चकोर तब हिं माई! चैन ॥
केते द्यौस भए बीच पारें रोम-रोम रह्यो पूरि मैन।
'कुंभनदास' जब भेटों अंकौ भरि गिरिवर-धरन सब सुख-दैन ॥

२१० [धनासिरी

तौ हौं कहा करों री माई!
सुंदरस्याम कमल-दल लोचन मेरौ मन लियो है चुराई ॥
लोक-कुटुंब सबनि मिलिके हौं बहुत बार समुझाई।
तऊ मोहिं जसोधा-गृह-बिनु नांहिन परत रहाई ॥
अब तौ कठिन हिलग के कारन लाज सबै बिसराई।
'कुंभनदास' प्रभु सैल-धरन मोहिं मुसकि ठगौरी लाई ॥

२११ [धनासिरी-इकताल]

मोरे जिय तौ ही तें परति कल नां जौ तें देख्यौ स्यामु।
अंग-अंग की सोभा बरनी न जाइ मो-पहिं
मानों प्रगटित अलि! कोटि-अंग कामु ॥
'कुंभनदास' प्रभु बन गवनत हे कमल नयन धरे भेखु अभिरामु।
गिरिधर नव वर-तनु मन हरिलियो रहि न सकों कलप-समजात जामु ॥

२१२ [धनासिरी]

जोरी रति नैननि नन मिलाइ।
दूरि हिं भए स्याम घनसुंदर चले द सैन बुलाइ ॥

स्याम सरूप सुन्यौ पिय-तन में ज्यों धन-तडित बनी।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर बस भए गुन गावति सजनी ॥

२०५ (सारग)

बिसरि गयो माई! लाल हिं करत गो-दोहनु।
निरखि अनूप चंद्र मुख इकटकु रह्यौ सांवरौ मोहनु ॥
नवल नागरि विचित्र चतुर अति रूप अँग-अँग सुठोहनु।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर कौ मन हर्‍यौ कटीली भौंहनु ॥

आसक्ति-वचन

[प्रभुप्रति]

२०६ [सारग]

परम भांवते जिय के हो मोहन! नैननि आगें तें मति[1] टरहु।
तौलों जिउं जौलों देखों वारंवार पा लागों चित अनत न धरहु ॥
तन सुख चैन तोही लों प्यारे! जौ लों लै-लै आंकौ भरहु।
रसिकनु मांझ रसिक नँद-नंदन तुम पिय! मेरे सकल दुःख हरहु ॥
आवहु, जाहु, रहहु गृह[2] मेरे स्याम मनोहर! संक न करहु?
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर! तुम अरि-गजन कातें व डरहु ॥

२०७ [ईमन]

लाल! तेरी चितवनि चित हिं चुरावै।
नंद-गांउ वृषभान-पुरी विच मारगु चलन न पावै ॥
हौं हरी भरि होत ही काहू ललिता दगनि दिखाइ दगनि दिखावै।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर, धर्‍यौ है तो क्यों न बतावै ॥+

[सखीप्रति]

२०८ [सारग]

छबीलौ लाल दुहत हे धनु धौरी।
वारक फिरि चितयो मो-महियां निरखि वदन भई बौरी ॥

---
१ जिनि (क) २ धर (क) + यह पद स्पष्ट रूप में नहीं मिला।

कंकन कुनित, चारु चल कुंडल, तन चदन की खौरी।
माथें कनक वरन कौ टिपारो, ओढें पीत पिछौरी ॥
कहा करों मोपे रह्यौ न परतु सखि ! मेली है कठिन ठगौरी ॥
'कुंभनदास' तव सुख, गिरिधर कों जब भेंटों भरि कौरी ॥

२०९ [सारग]

दरसन देखन देहु मेरे आतुर हैं नैन।
वदन चंद-कर पान करें ए चकोर तब हिं माई ! चैन ॥
केते द्यौस भए बीच पारें रोम-रोम रह्यो पूरि मैन।
'कुंभनदास' जब भेटों अंकौ भरि गिरिवर-धरन सब सुख-दैन ॥

२१० [धनासिरी

तौ हौं कहा करों री माई !
सुंदरस्याम कमल-दल लोचन मेरौ मन लियो है चुराई ॥
लोक-कुटुंव सवनि मिलिके हौं बहुत वार समुझाई।
तऊ मोहिं जसोधा-गृह-विनु नांहिन परत रहाई ॥
अव तौ कठिन हिलग के कारन लाज सवै विसराई।
'कुंभनदास' प्रभु सैल-धरन मोहिं मुसकि ठगौरी लाई ॥

२११ [धनासिरी-इकताल]

मोरे जिय तौ ही तें परति कल नां जौ तें देख्यौ स्यामु।
अंग-अंग की सोभा वरनी न जाइ मो - पहिं
मानों प्रगटित अलि ! कोटि - अंम कामु ॥
'कुंभनदास' प्रभु वन गवनत हे कमल नयन धरे भेखु अभिरामु।
गिरिधर नव वर-तनु मन हरिलियो रहि न सकों कलप-समजात जामु ॥

२१२ [धनासिरी]

जोरी रति नैननि नन मिलाइ।
दूरि हिं भए स्याम घनसुंदर चले द सैन बुलाइ ॥

जब तें दृष्टि परे नँद-नंदन घर आँगन न सुहाइ ॥
अति आतुर मन भयो मिलन कों छिनु-छिनु कलप विहाइ ॥
सजि सिंगार चली मृगनैनी सब की दृष्टि चुराइ ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर कों मिली कुंज-बन जाइ ॥

२१३ [सारंग-इकताल]

हिलगनि कठिन है या मन की ।
जाके लयें देखि मेरी सजनी ! लाज जात सब तन की ॥
धर्म जाउ अरु हँसो लोक सब अरु, आवौ कुल-गारी ।
सो[1] क्यों रहै ताहि बिनु देखें, जो जाकौ हितकारी ॥
रस-लुबधक एक निमिख न छांडत ज्यों अधीन मृग गानैं ।
'कुंभनदास' सनेह-मरमु इहिं गोवर्द्धन-धर जानैं ॥

२१४ [सारग-जतिताल]

कहा करों उह मूरति मेरे जिय तें न टरई ।
सुंदर नंद-कुंवर के बिछुरें निसि-दिन नींद न परई ॥
बहुबिधि मिलनि प्रान-प्यारे की सु एक निमिख न बिसरई ।
वे गुन समझि-समझि चित्त नैननु नीर निरंतर ढरई ॥
कछु न सुहाइ तलावेली मन, विरह-अनल तन जरई ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर-बिनु समाधान को करई ॥

२१५ [सारंग-जतिताल]

सुंदर साँवरे कछु कियो
नयन द्वार व्हैं अंतर गवनें मन मानिक्ु हरि लियो ॥
मारग चले जात मो पहिंतें छीनि कुंवर दधि पियो ।
बदन चूंबि मुसकाइ छबीले कर परस्यो मेरो हियो ॥
इहै पछिताति सखी ! अब जिय में संग हिं क्यों न गियों ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर-बिनु नाहिंन परत जियो ॥

1 तऊ न रहै (क)

२१६ (धनासिरी)

मेरी अंखियनि यही टेव परी ।
कहा री ! करों सखी ! वारिज मुख पर लागति ज्यों भँवरी ॥
सरकि-सरकि प्रीतम-मुख निरखति रहति न एक घरी ।
ज्यों-ज्यों जतन करि-करि राखति हों त्यों-त्यों होति खरी ॥
खुच रही सखी ! रूप-जलनिधि में प्रेम-पीयूष भरी ।
'कुंभनदास' गिरिधर-मुख निरखत लुटत निधी सगरी ॥

२१७ [सारग]

माई ! री नागर नंद-कुमार मो-तन चितैकें हसै ।
नवघन श्री वदन, दसन दामिनी लसै ॥
तवहिं और भवन नैन-द्वार व्है धँसै ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर प्रान में वसै ॥

२१८ [सारग]

लोचन करमरात हैं मेरे ।
देखन कों गिरिधरन छवीलौ करत रहत वहु फेरे ॥
स्यामघन तन, वदन चंद के तृषावंत ताप सहत घनेरे ।
सादर ज्यों चातक चकोर 'कुंभनदास' ए न रहत घेरे ॥

२१९ [सारग]

मोहिनी मेली हो ! मधु बैनतु ।
'मारग छोडि' कह्यौ जव मोसों तव वेधी सर-मैनतु ॥
चंचलता की सींव सखी री ! सरद-कमल दुहुं नैनतु ।
परम सुजान जनाई सव विधि गूढ भाव गति सैनतु ॥
अव तव तें मोहिं कछु न सुहाई, जिय न रहत क्यों ही चैनतु ।
'कुंभनदास' प्रभु ठगी अचानक गिरिधर मन हरिलैनतु ॥

जब तें दृष्टि परे नँद-नंदन घर आँगन न सुहाइ ॥
अति आतुर मन भयो मिलन कों छिनु-छिनु कलप बिहाइ ॥
सजि सिंगार चली मृगनैंनी सब की दृष्टि चुराइ ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर कों मिली कुंज-बन जाइ ॥

२१३ [सारंग-इकताल]

हिलगनि कठिन है या मन की ।
जाके लयें देखि मेरी सजनी ! लाज जात सब तन की ॥
धर्म जाउ अरु हँसो लोक सब अरु, आवौ कुल-गारी ।
सो[1] क्यों रहै ताहि बिनु देखें, जो जाकौ हितकारी ॥
रस-लुबधक एक निमिख न छांडत ज्यों अधीन मृग गानै ।
'कुंभनदास' सनेह-मरमु इहिं गोवर्द्धन-धर जानै ॥

२१४ [सारंग-जतिताल]

कहा करों उह मूरति मेरे जिय तें न टरई ।
सुंदर नंद-कुंवर के बिछुरें निसि-दिन नींद न परई ॥
बहुबिधि मिलनि प्रान-प्यारे की सु एक निमिख न बिसरई ।
वे गुन समझि-समझि चित्त नैननु नीर निरंतर ढरई ॥
कछु न सुहाइ तलावेली मन, बिरह-अनल तन जरई ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर-बिनु समाधान को करई ॥

२१५ [सारंग-जतिताल]

सुंदर साँवरे कछु कियो
नयन द्वार व्हैं अंतर गवनें मन मानिकु हरि लियो ॥
मारग चले जात मो पहिंतें छीनि कुंवर दधि पियो ।
बदन चूंबि मुसकाइ छबीले कर परस्यो मेरो हियो ॥
इहै पछितानि सखी ! अब जिय में संग हिं क्यों न गियो ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर-बिनु नाहिंन परत जियो ॥

1 तऊ न रहै (क)

२२४ [गौरी]

इनि नैननि तुम देखो री माई ! सर्वसु हरिके हरि कों दियो ।
घर में के चोर कैसें रुकत हैं तिन कौ कछु नांहिन जात कियो ॥
कहा करों मेरौ[1] वसु नाहीं परवसु भयो तनु-मनु, बुधि-हियो ।
'कुंभनदास' गिरिधर-बिनु मो पें क्यों हू न परतु जियो ॥

२२५ (नट नारायण)

जो कछ बात कहि गए हो ललनां,
सो कत कीजे स्याम मनोहर ! बन गवनत जब हिं गहे मेरे अँचलनां ॥
तब हि तें मोहिं कछु न सुहाइ प्रान-गति-जोयें[2] परै कल नां ।
कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर, पंथ जोवत, इत हिं नैननु लागै पल नां ॥

२२६ [केदारौ]

मन मोह्यौ री ! मोहन नैननु ।
भौंह बिसाल, चपल अवलोकनि मनहुं नचावत मैननु ॥
'कुंभनदास' प्रभु रसिक-सिरोमनि समुझि न कछुक[3], जनायो सैननु ।
गोवर्द्धन-धर ठगी हौं अचानक रहि न सकति हों चैननु ॥

२२७ [धनासिरी]

इनि ढोटा हौं डहकी री[4] मेरी माई !
चितवनि में कछु टोनों-कीनों मोहन-मंत्र पढाई ॥
बिकल भई मन लीनें[5]-डोलति बिनु-देखें न रहाई ।
बाट-घाट पुर-बन-बीथिनि में लोक कहै- बौराई ॥
मगन भयौ मन स्याम सिंधु में खोजत ही गैहगई[6] ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर बात कही समुझाई ॥

---

१ मेरे (क) २ ज.वे (क) ३. परी जो जनाई (क) ४. री माई (क)
५. लीनो (क) ६. गै हराई (क

२२० (सारंग)

मान तौ करि हू न आवै।
वह चितवनि, वह हास मनोहर कोटिक दुख बिसरावै ॥
निमिख के ओझल होत तलमली तब हिं चटपटी नैननि लावै।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर पिय सों रूसे ही बोल्यौ भावै ॥

२२१ [सारंग]

जो पें चोंप मिलन की होइ।
तौ कत रह्यौ परै सुनि सजनी! लाख करै जो कोइ ॥
जो पें बिरह परस्पर व्यापै तौ इह बात बनैं।
डरु अरु लोक-लाज अपकीरति एकौ चित न गनैं ॥
'कुंभनदास' जो मन मानै तौ कत जिय औरु सुहाइ?
गिरिधर लाल रसिक बिनु-देखें छिनु-भर कलप बिहाइ ॥

२२२ [सारंग]

प्रीति तौ काहू सों न कीजै।
बिछुरत कठिन परै मेरी माई! कहु कैसें कें जीजै ॥
रति-रति कै करि जोरि-जोरि कै हिलि-मिलि सरबसु दीजै।
एक निमिख-सम सुख के कारन जुग-समान दुख लीजै ॥
'कुंभनदास' इह जानि बूझिके काहे कों बिखु-जल पीजै।
गोवर्द्धन-धर सब जानतु हैं उपजि खेद तन छीजै ॥

२२३ [गौरी]

गोपाल सखी! लियो मेरौ मन चोरि।
मदनगोपाल[१] चतुर अति नागर नैननि सों नैन जोरि ॥
कमल नयन बैठे हे झरोखां हौं आवति ही खोरि।
देखत स्याम मनोहर मूरति मारी मदन-सर तोरि ॥
किहिं विधि[२] मिलों सुजान कों[३] सखि? किहिं मिस जाउं बहोरि।
'कुंभनदास' गोवर्द्धन-धारी लाल लई हौं अचानक भोरि ॥

१ नंदकुमार (क) २ मिस (क) ३ कों हौं सखि (क)

२३२ [नट]

रूप देखि नैननि पलक लागे नहीं।
गोवर्द्धन-धर अंग-अंग प्रति जहां[1] ही परति दृष्टि रहति तहीं-तहीं ॥
कहा कहौं कछु कहत न आयो चोरयौ[2] मन मांगि वे दही।
'कुंभनदास' प्रभु के मिलिवे की सुंदर बात सकल[3] सखीनु सों कही ॥

२३३ [नट]

मेरो मन तौ हरि के संग गयो।
नांहिन काहू कों दोस री माई! नैननि के घालें पर-बस भयो ॥
नंद-कुमार जब हीं दृष्टि परे स्यामरूप अपने द्वार व्है अंतर लयो।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधरन कों कहा हौं[4] कहौंरी! इननु अपबल मूसि दयो॥

२३४ [केदारौ]

नंद-नंदन की बलि-बलि जैये।
स्याम मृदुल कलेवर की छबि देखि-देखि सुख पैये ॥
सकल लोक-पति, श्री-पति, ठाकुर रसना रसिक-बिमल जसु गैये।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिवर-धर कों तनु-मनु सरबसु दये ॥

२३५ [केदारौ]

मोहन-मूरति जिय में बसी।
स्याम-अंग नभ प्रगटित मानों माई! बदन चारु सोभा सरद-ससी ॥
गोप-बृंद-संग खेलत हे सखी री! देखत ही हौं मदन-भुअंगम डसी।
'कुंभनदास' प्रभु अब देखौं तब सुख गिरिधरलाल रसिक-रस में रसी ॥

२३६ (मारग)

एक गांउ कौ वास सखी री! कैसे कैं धीर धरौं।
लोचन मधुप अटक नहीं मानत जद्यपि जतन करौं ॥

१ निरखि नैन, मन रहत तहीं-(व ध ९८।२) २ चित चोरयौ वे मागि दही (वं. ११।१७९)
३ सखियनु सो (व. ११।१७९) ४ कहौंरी! (क)

२२८ [धनासिरी]

नयन भरि देखे नंद-कुमार।
ता दिन तें सब भूलि गयो है[1] बिसरे पति, परिवार ॥
बिनु-देखे हौं बिकल भई हौं अंग-अंग सब हारे।
तामें सुद्धि है साँवरी मूरति लोचन भरि ब निहारे ॥
रूप-रासि परमिति नहिं मानति[2] कैसे मिलौं कन्हाई।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर[3] कों मिलवहु री मेरी माई ! ॥

२२९ [रामग्री]

माई ! गिरिधर के गुन गाऊं।
मेरें तो व्रत एई है निसिदिन और न रुचि उपजाऊं ॥
खेलन आंगन आउ लाडिले ! नेंकहु दरसन पाऊं।
'कुंभनदास' हिलग के कारन लालचि लागि रहाऊं ॥

२३० [सामेरी]

नैंननि टगटगी लागि रही।
नखसिख-अंग लाल गिरिधर के देखत रूप सब ही ॥
प्रात कालि घर तें उठि सुंदरि ! जात ही बेचन मही।
व्है गई भेंट स्याम सुंदर सों अध-भर बिच-पथ ही ॥
घर-व्यौहार सकल सुधि भूली, ग्वालिनि ! मनसिज दही।
'कुंभनदास' प्रभु प्रीति बिचारी रसिक कंचुकी गही ॥

२३१ [गौरी]

हर्‌यौ मन चपल चितवनी चारु।
तक्रित तामरस लोहित लोचन, निरखत नंद-कुमारु ॥
बुद्धि बिथकी, बल बिकल सकल अग, बिसर्‌यौ गृह-व्यौहारु
' कुंभनदास ' लाल गिरिधर-बिनु और नहीं उपचारु ॥

---

१. सखि (क)   २ माने (क)   ३. -धर मिल० (क)

२३२ [नट]

रूप देखि नैननि पलक लागे नहीं।
गोवर्द्धन-धर अंग-अंग प्रति जहां[1] ही परति दृष्टि रहति तहीं-तहीं ॥
कहा कहौं कछु कहत न आयो चोरयौ[2] मन मांगि वे दही।
'कुंभनदास' प्रभु के मिलिवे की सुंदर वात सकल[3] सखीनु सों कही ॥

२३३ [नट]

मेरो मन तौ हरि के संग गयो।
नांहिन काहू कों दोस री माई! नैननि के घालें पर-वस भयो ॥
नंद-कुमार जव हीं दृष्टि परे स्यामरूप अपने द्वार व्है अंतर लयो।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधरन कों कहा हौं[4] कहौंरी! इननु अपवल मूसि दयो॥

२३४ [केदारौ]

नंद-नंदन की वलि-वलि जैये।
स्याम मृदुल कलेवर की छवि देखि-देखि सुख पैये ॥
सकल लोक-पति, श्री-पति, ठाकुर रसना रसिक-विमल जसु गैये।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिवर-धर कों तनु-मनु सरवसु दये ॥

२३५ [केदारौ]

मोहन-मूरति जिय में वसी।
स्याम-अंग नभ प्रगटित मानों माई! वदन चारु सोभा सरद-ससी ॥
गोप-वृंद-संग खेलत हे सखी री! देखत ही हौं मदन-भुअंगम डसी।
'कुंभनदास' प्रभु अव देखौं तव सुख गिरिधरलाल रसिक-रस में रसी ॥

२३६ (सारंग)

एक गांउ कौ वास सखी री! कैसै कैं धीर धरों।
लोचन मधुप अटक नहीं मानत जद्यपि जतन करों ॥

१ निरखि नैन, मन रहत तहीं-(व ध ९८।२) २ चित चोर्यौ वे गागि दही (व. १।१।१७९)
३ सखियनु सो (व १।१।१७९) ४ कहों री! (क)

इहि पथ गॅवनत हैं गोचारन हौं दधि लै निकरों ।
निरखत रोम-रोम गदगद सुर आनंद उमगि भरों ॥
विनु देखें पलु जात कलप भरि विरहाअनल जरों ।
'कुंभनदास' कहां लों अनुदिन आरज-पथ हि डरों ॥

२३७ (सा ग)

*अब हौं कहा करों ? मेरी माई !
जब तें दृष्टि परे नंद-नंदन घर अगना न सुहाई ॥
घर में मात-पिता मोहिं त्रासत 'तैं कुल-लाज गवॉई'।
बाहिर सब मुख जोरि कहत हैं- कान्ह-सनेहिनि आई ॥
रैनि दिवस मोहिं कल न परति है घर अंगना न सुहाई (?)
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर हॅसि चित लियो है चुराई ॥

२३८ (जैतश्री)

अरुझि रह्यौ मोहन सों मन मेरौ ।
छूटत नेंकु न छुडायौ सजनी ! चहुं दिसि प्रेम रह्यौ करि घेरौ ॥
नख-सिख अंग रॅगीली बानिक मुसकनि मंद महारस झेरौ ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर-बिनु भावत नांहिन कोउ अनेरौ ॥

२३९ [नट]

को रोकै री ? आवत इहिं मग पूतरी पोरिया उनके भए ।
अंजन छडनि दई कर सॉकरि पलकनि पल(क) कपाट दए ॥
ठाढे रहे अति प्रेम के बाढे निसि-वासर हरि-रूप छए ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर मन के भाजन सब ढूंढि लए ॥

२४० [विहाग]

निरखत रहिये गोवर्द्धन-रानों ।
मनसा वाचा सुनु री सखी ! मन याहीके हाथ बिकानों ॥

* यह पद स. ३८१८ पर सूरसागर में इसी तुक से छपा है, शब्द-साम्य होते भी दोनों अलग से हैं ।

सुंदर स्याम कमल-दल लोचन मो-तन मुरि मुसिकानों।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर मेरे नैननि-मांझ समानों॥

२४१ [सारंग]

माई री ! स्याम लग्यौ संग डोलै
जित हीं जाउं तित हीं आवतु है अन-बुलाए बोलै।
कहा री ! करों इनि नैना लोभी वस कीनें विनु-मोलै।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर हंसि कर घूंघट खोलै॥

२४२ [सारंग]

मदनमोहन सों प्रीति करी मैं कहा भयो ? जो-कोउ मुख मोरयौ।
इह व्रत तें हौं कवहुं न टरि हों जानि सवनि सों नातो तोरयौ॥
सास रिसाउ, मात गृह त्रासौ, हौं पति सों मानहुं घट फोरयौ।
'कुंभनदास' गिरिधर सों मिलि हों आरज-पंथ हौं सवनि सों छोरयौ॥

२४३ [विलावल]

लाल-मिलन कौ आगम हौं जान्यों फरकन लागे कुच भुज वांई।
सुनि री सखी ! इक वात, आवेंगे आजु प्रात,
इनि आनंद अँखियाँ पहिले ही मिलि आंई॥
कर कौं कंकन देहों, हिय कों मोतीहार
जिनि मेरे प्रीतम की वात चलाई।
'कुंभनदास' गिरिधर आवहिंगे तव हौं करोंगी आनंद वधाई॥

२४४ [सारंग]

सखि ! हौं कहा जानों सकेत ?
'स्याम सुंदर' नाम लै-लै दोस सव मिलि देत॥
काननि सुन्यौ न नैननि हीं देख्यौ किधौं कारौ के सेत ?
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर जाकौ जासों हेत॥

२४५ (सारंग)

सखी री ! जीवति हों मुख हेरें ।
कोउ मेरौ सगौ न हौं काहू की, कहति सबनि सों टेरें ॥
जो मन हतो सोई भलें करि हों कहा भयो कहे तेरें ?
'कुंभनदास' हिलग की बातें निवरति नांहि निवेरें ॥

२४६ (अडानो)

मोह्यौ री ! व्रज-मोहन काहे न ऐंडी डोलै ।
भूलि गयो बन धेनु-चरावन बूझति हों बाहै मोहिं बतावो कब वह बोलै ॥
कहूं लकुट, कहुं मुरली, पीतांबर कहुं भूषन खोले डोलै ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर मोह्यो खाज परी यह डोलै ॥

मान—

२४७ (धनासिरी)

बतियॉ तेरी ये जिय भावति ।
तबहिं लों सुख गिरिधरन छबीले, जौलों रहों सुनावति ॥
तब ही उत चटपटी लागति जब हि हौं छिनु घर आवति ।
एक तें एक पठावत बोलनु चैनु न क्यों ही पावति ॥
बांरं-बार इहै चरचा सखि ! और न जिय हिं सुहावति ।
'कुंभनदास' प्रभु अति आतुर चित प्रेम-प्रबोध रहावति ॥

२४८ (धनासिरी)

बोलत स्यान मनोहर बैठे कदंब-खंड की छहियां ।
कुसुमित द्रुम अलि-कुल गुंजत सखि ! कोकिल कल कूजत तहियॉ ॥
सुनत दूतिका की बचन माधुरी भयो उल्लास वाके मन महियां ।
'कुंभनदास' व्रज-कुंवरि मिलन चली रसिक कुंवर गिरिधर-पहियॉ ॥

२४९ (धनासिरी)

अब ए नैनांई तेरे करत बसीठी ।
इह नागरि ! जानति हों तातें अब मेरी बात लागति है सीठी ॥

'कुंभनदास' प्रभु तुव रस-बस भए कहि न सकति करुई अरु मीठी।
गिरिधर लाल हिं नचांवति त्यों नांचत इतनी कहति हों दिए ढीठी॥

२५० [धनासिरी]

हरि कौ वदनु देखत पलु न लागै।
नटवर-वेखु धरें निकुंज मंडप[1] बैठे मनहुं प्रगट ससि श्री लांछनु न लाग॥
इह औसरु टरि जैहै, गहरु न करि मेरी व कही री! जो[2] इह तेरे मन लागै।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर के मिलनु कौं,
वेगि चलहु सखि! ज्यों छिनु न लागै॥

२५१ [धनासिरी]

पठई गोपाल हौं तोकौं लैन आई॥
ऊतरु न देति मोसौं वचन कहत रिसाति अति,
जीत्यो यौंही चाहति इह प्रकृति है तेरी मैं जानि पाई॥
भलौ री! सुभाव जनावति अपनौं आवत हीं जु लै ठानी लराई।
कहति है सु कहि तूं प्यारी नंदकुमार की,
तातें न हौं बोलति इह जिय जानिके राखौं तेरी वडाई॥
बाहिर के फेर करति है दूती सौं अंतर फूल भई जिय बात भाई।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिवर-धरनसबघोप-पति,
अरु गांव के ठाकुर! चलु कहा करौं नांहि कीनी न जाई॥

२५२ [सारंग]

तू नंदलाल हिं बहुत भावति है जु मिलति सुभाइ हँसि करि।
मदनगोपाल निमिख विसरत हृदैं मैंह रही सुजान वसि करि॥

---

1 मडल (क) 2 जोइ ले रे (क)

अंग-अंग प्रति तूं मृगनैनी? साजि सिंगार कंचुकी के बंद कसि करि।
मांग सुधारि, पहिरि नव भूषन, चंदन अंग चढाइ घसि करि॥
कनकलता-सी तूं व्रजभामिनि! स्यामतमाल कान्ह सों ग्रसि करि।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर कों मिलि मदन-ताप जैसें जाइ निकसि करि॥

२५३ [गौरी]

मनायो न मानें मेरौ हौं हारी।
सिखवत-सिखवत जाम गए पें एकौ न विचारी॥
तूं गुनरूप गरब कत भूलति? समुझति नांहि न घोष-नारी।
'कुंभनदास' प्रभु बहु-नाइक (लाल) गोवर्द्धन-धारी॥

२५४ [गौरी]

कब की वचन तोसों कहति री माई! हौं
चलति नाहिं न हरि पिय-पहियां॥
रजनी बीतन लागी है एक हि जक,
करत-करत सखि! नांहि[१]-नहियां॥
तोहि मिलन-हित गोवर्द्धन-धर[२] कबके बैठे अकेले बन महियां।
'कुंभनदास' प्रभु के बोलत तोहि इह ज्ञान रहति जु बार-बार छुडाइ बहियां॥

२५५ [गौरी]

बोलत कान्ह निकुंज।
रितु वसंत मुकुलित द्रुम कानन, विविध कुसुम मधुकर गुंजं॥
नील निचोल पहरि, तजि नूपुर समै जोग्य सजु सुंजं।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर कों मिलि ससि-बिनु निसा तिमिर-पुंजं॥

२५६ [नटनारायण]

हरि जु आवन कह्यौ।
काहे कों अब अकुलाति सखी! तूं है दिनु अलप रह्यौ॥

१ न हि नाहि (क) २ .... घर लाल (क)

नवसत साजि मुदित चित भामिनी! काहे कों मानु गह्यौ।
'कुंभनदास' गिरिधरन मिले-विनु निमिख न परत सह्यौ॥

२५७ [नटनारायन]

हरि के वोलत तू चलि री! काहे कों हठु करति।
वात कहेतें रोख होतु है अरुन वरन मुख, नयन भरति॥
मेरे मनायें मानि री समुझि सखी! हौं तेरे कव की पांइ परति।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर कों मिलें ही सचु
छांडि व्रथा रुख औरु जिय धरति॥

२५८ (कानरों)

तू तौ चलि वेगि रजनी जाइ घटति।
न करु विलंवु मिलि नंद-सुवन कों,
समुझि चतुर सुंदरि! काहे कों सौ वात ठटति॥
मदनमोहन वैठे वडी वारके तूं है नटति।
'कुंभनदास' गिरिवरलाल स्यामतमाल सों,
कनकलता-सी क्यों न लपटति॥

२५९ [कानरौ]

कह्यौ न मानति जोवन-माती।
ऊतरु न देति मनावत तोहिं गई अधराती॥
तुं गुनरूप गरव कत भूलति? जव हौं जाउंगी तव हि रहिहै पछिताती।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर पिय कों आंकौ भरि भेटि जुडाइ छाती॥

२६० [केदारौ]

तव[1] की तू मान कियें रही।
चंद्रमा फुनि प्रगट व्है है इहौ तैं न लही॥
तिमिर-पुंज निसा जवहिं ही तव न चलि निवही।

१ कव (क)

अबहिं चहुं दिसि किरनि प्रगटित भई सेत मही ॥
'वेगि चलि सखि ! वेगि चलि' मैं बार-बार कही ।
'दास कुंभन' गिरिधरन - विनु मिलें, पींर मही ॥

२६१ [केदारो]

तोहिं मिलन-हित बहुत करत हैं मोहनलाल गोवर्द्धन-धारी ।
ऊतरू मोहिं देहि किनि भामिनि ! कहहु कहा है बात तिहारी ॥
देखि री ! तूं जु झरोखां बैठी तन सोहति झुमक की सारी ।
तन-मन बसी प्रान-प्यारे कें निमिख न जिय तें होति निन्यारी ॥
कहि धों सखी ! कहा हौं आऊं तू[1]घर जाहि बताउं सुचारी ।
'कुंभनदास' प्रभु ए सोवत हैं वह जु देखि[2] ऊंचो चित्रसारी ॥

२६२ [मलार]

रिमि-झिमि रिमि-झिम घन बरसैरी ! ।
बोलत मोर, कोकिला कूंजति तैसीये दामिनी अति दरसैरी ! ॥
धाइ रहे बदग जित-तित तें झूमि अपने पर परसैरी ! ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर पिय कौ तोहिं मिलनकों जिय तरस री ! ॥

२६३ [केदारो]

तू व देखि[3] निसापति गयो है खसि ।
काहे[4] कों गहरु करति री ! चलहि नैननि दै मसि ॥
चहुं दिसि कानन[5] तिमिर-पुंज तेरौ भांवतौ भयो री ! कुंकुची कसि ।
'कुंभनदास प्रभु' गिरिधर श्रीअग घन में दामिनि-सी लसि ॥

१ सेन बताइ जु ठोर हि सुचारी (क) (२) देखियत (क)
३ देखिरी (क) ४ अब ही काहेंको (क)
५ तिमिर कानन भयो तेरौ भांवतो उठि कचुकी (क)

२६४ [केदारौ–रूपकताल]

प्रान–नाथ सों सुनि हौ[1] भामिनि ! इतौ मान ना कीजै।
जा विनु रह्यौ न परै छिनु[2] विछुरत ही तनु छीजै॥
ए नैननि के भांवते लाल दिन च्यारि क्यों न देखि सुख लीजै।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर–पिय कँह[3] सरवसु दीजै॥

२६५ [केदारौ–चर्चरी ताल]

चारु नट–भेखु धरि बैठे[4] गोविद तहां जहां सघन गहवर निकुंज भवने।
नागरी! जबहिं नैननि सों नैना मिले तबहिं नागर मुदित बिपिन गवने॥
रसिकवर नंद–सुत सुहथ सेज्या रची विविध पट फूल ठवने।
हंसजा–तट निकट विमल जल वहत तहां, त्रिगुन चल श्रीखंड–सैल पवने॥
'दास कुंभन' प्रभु सुजान तोहिं मिलन कों
वहुत आतुर निमिख जुग वितवने।
जोवत पंथ इकटकु लाल सकुमार सखि!
गोवर्द्धन–धर अखिल जुवति–रवने॥

२६६ [केदारौ–आठताल]

मेरी बात तू मानि री चलु।
नद–नंदनु तेरौ पंथ चितवत बैठे अति आतुर बीतत कलप–पलु॥
जुवति–जाति संताप–हरन सखि! लोचन भरि देखहु वदन कमलु।
'कुंभनदास' प्रभु आँकौ भरि भेटि कुवर[5] सुजान रसिक गिरिधर लाल नवलु॥

२६७ . [केदारौ जातिताल]

मोहन हरि मानि लई तेरी बतियां।
गिरिधर पिउ एकांति बैठे हे मैं धरी सुहथ जाइ[6] पतियां

१ सुनि (क) २ छिनु इक (प्रचलित) ३ कों (क)
४ भेटे (ख) ५ भामिनि कुवर रसिक गिरिधर नवलु (क)
६ तेरी (क)

अब तौही लौं धीरजु बांधि सखि ! दिनु गत जाम होइ जौलौं रतियां ।
'कुंभनदास' दूती के बचन सुनत[1] ही परम सीतल भई छतियां ॥

२६८ [मलार]

तैं सूधैं बातौ[2] न कही ।
हरि आए तोहिं भवन निहोरन मुख धरि मौन रही ॥
अति अभिमान भलौ नांहि न कछु मरजादा न गही ।
चारि जामु लघु सकल जामिनी एक हि रस निबही ॥
कहा होतु अबके पछितायें ? जानि जु पीर सही ।
'कुंभनदास' गिरिधरन मिले–बिनु तन–मन काम दही ॥

२६९ [बिलावल]

तोसौं जु रस में कछु हसिकें कह्यौ सखि री! तौ करति मानु ।
इतने हि तौ काहे कौं रूसति गोवर्द्धन-धारी प्यारौ सुख–निधानु ॥
मेरौ कह्यौ करि, छांडि अटपटी सुनि री! तजहि तू अपनौं सयानु ।
'कुंभनदास' स्वामी सौं प्यारी न करिहि निदानु ॥

२७० [बिलावल]

जो तोसौं बात कही पिय तेरे तू काहे कौं रिसानी ?
प्रान–नाथ सौं बीचु पारै सोई अयानी ॥
जा–बिनु रह्यौ न परै छिनु तासौं क्यौं रूसिये सयानी ? ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधरन कौं सोई कीजे रहिये हृदै लपटानी ॥

२७१ (कानरौ)

न्यांइरी ! तू अलकलडी ।
निसि वासर गिरिधरन लाल कें हृदै में रहति गडी ॥
तौही लौं सुख जौलौं समीपु रहै एक निमिख भावत नांहिन छडी ।
'कुंभनदास' स्वामिनि राधा है ब्रज–जुवतिनि मांझ बडी ॥

---
१ सुनि (क) २ बातें (ख)

२७२ [कल्याण]

तेरे मन की बातें कौन जानें री !
जो पें डरु होइ तौ नंद-सुवन के बोलें
एसी कौन जुवति जो न मानें री ?॥
तेरी अरु हरि की मिलि चलति है याहि तें
निधरक बोलति है माई ! इहै बूझि परति है जिय[1] अगनें री ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधरन[2] मनोहर हिं व्रज-जुवति[3] औरु न गनें री ॥

२७३ [केदारौ-अठताल]

कहेतें बात न भावै तोहि ।
नंदनंदन बिनु रह्यौ न परैगो संभारैगी[4] मोहि ॥
समुझावत हारी तैसी[5] तौ न समुझी,
कहा करौं जो चतुर अजान[6] होहि ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर बैठे निकुंज
नट-भेखु धरें चलहि व तौ मुख जोहि ॥

२७४ [केदारौ-अठताल]

हौं बरजति हौं माई री ! तूं पिय सौं कत बीचु पारति ।
नंद-नंदन तौ नैननि कौ भाँवतौ सुख-निधान, छिन रहहि निहारति
मृषा कोप कतहिं करति है सखी री ! छांडि हठ उ अंतहुं जु हारति ?
कमलनयन-बिनु रह्यौ उ न परि है मिलि, अकाथ जोवन कत गारति ?॥
'कुंभनदास' प्रभु अखिल सुंदरि-पिय इह न बात जीय हूं विचारति ।
रस-मंहि कुरसु करति गिरिधर सौं तूं सखि ! अपनौं भयौ कत ढारति ?॥

२७५ [केदारौ-इकताल]

अनमनी-सी तूं काहे बैठी है री ! कर कपोल दियें ।
हालति, चालति, बोलति नांहिने मानौं मौन लियें ॥

---

१ हिय (क) ६/३ वध २ गिरिधर मनोहर (क) ३ सुन्दरि (क) ६/२ वध.
४ तव समारैगी (क) ५ पै तु समझति नाहिन (क) ६ अयानी (क)

जोई तूं कहि है सोई री ! स्याम मानिहैं
सो बात कहा जाकौ इतौ कियें ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधरलाल हिं तेरौ ध्यान रहतु
हैं देखत निसि - दिनु मृगनैंनी बसति हियें ॥

२७६ [केदारौ-अठताल]

गुंजामनि की माल हरि मोहन राखे रहतु हैं हियें ।
भूषन औरु अनेक अमोलिकु सखी[1] ते सबु त्याग कियें ॥
तुअ नासिका मुक्ताफल री! अधर अजन[1] रुचि सों उनमान लियें[2]।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर लाल तोहिं जपत रहत हैं
निसि-दिन मन, क्रम, वचन हौं कहति सपथ कियें ॥

२७७ [केदारौ]

भामिनि ! छांडि दै किन फेर ।
खसत उडुपति चलत पश्चिम, होति है अबेर ॥
अबहिं बिपिन परि है सखि ! तमचुर की टेर ।
पाछें हू पछिताइगी जब व्है है बिरह को घेर ॥
मिलहु सुंदरि ! स्यामसुंदर सुनहि बचन मेर ।
'दास कुंभन' लाल गिरिधर जीवन-धन हैं तेर ॥

२७८ (आसाधरी)

बोलत कान्ह कुमुद-बन मांहि ।
बनी हैं मनोहर ठौर कदंब की छांहि ॥
उठि मृगनैंनी छांडि दै अभिमानु लागों तुम्हारे पांहि ।
बडी बार भई मोहिं आए चली बगि जांहि ॥
'कुंभनदास' जबहीं चली दूती गहि देखि बांहि ।
गिरिधर लाल कौ त्रास फिरि सकों नांहि ॥

१ अगन (क) २ किये (क)

२७९ (सारंग)

मानिनी मान तज्यौ तबही कौं देखत रूप मदनगोपाल कौ।
सपथ करति कबहूं नहिं रूसौं चितवौ जिय बस्यौ लोचन बिसाल कौ ॥
साजि सिंगारु चली ब्रजसुंदरी भलौ मनाइवे गिरिधरलाल कौ।
'कुंभनदास' कनकवल्ली-सी जनु लपटानी द्रुमतमाल कौ ॥

२८० [कल्याण]

पिय कौ रुख लिये रहौं ॥
जो कछु आग्या प्यारौ देहै सोई ए करौं इतनिकु वचन उलटि न कहौं ॥
इहै सोचु निसिबासर मेरें जो छिनु एक बीच परै तो कैसें कें सहौं।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर सों भूलि न कबहूं,
करि सकौं मान यह व जानि चरननि गहौं ॥

२८१

उठि चलि काहे न मोहन-मुख जोवै।
बिनु देखे गिरिधरन रंगीलौ, एसैंई वृथा घरी कत खोवै ? ॥
यह जोबनु अंजुली के जल ज्यौं बिनु ब्रजनाथ छिनहिं-छिन छीजै।
विद्यमान अपने इनि नैननि उहि मुखकमल देखि किनि जीजै ?
मेरे कहे तें मानि लेउती काहे कौं करति सखी! अनभायौ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर श्रीनागर तजि बैकुंठ खेलन ब्रज आयौ ॥

२८२ (सारंग)

गिरिराज-धरन तोहिं देत मान,
हठ छांडिदै मूरख अग्यान !
सुनु ब्रज-भामिनि ! जातु है जामिनी,
होत है भोर, पिया विचारि हरि सों राखु ध्यान ॥
जो छिनु जात सो बहुरयौ न आवत
हरि सों मिलन-बिनु होत हान।

'कुंभनदास' प्रभु लाल गोवर्द्धन विनती करत हैं
मन-वच करि, घूंघट जिनि ? तान ॥

२८३ [नट]

चलि अंग दुराएँ सँग मेरें ।
लै मुख मौन, कर अधर ओट दै, दसन-दामिनी चमकति तेरें ॥
तजि नूपुर, कटि क्षुद्रघंटिका, श्रवन सुनत खग-मृग हेरें ।
'कुंभनदास' स्वामिनी वेगि मिलि, निपट निकट गिरिधर तेरें ॥

२८४

चलि-चलि री ! वन बोली स्यामा ।
जमुना-तीर सघन कुंजनि में तेरोई नाम रटत घनस्यामा ॥
करि सिंगारु चंचल मृगनैनी पहिरि लै कंठ मोल-श्री की दामा ।
'कुंभनदास' प्रभु भुज भर भेटें गिरिधरलाल सकल सुख-धामा ॥

२८५ (नट)

जो तू अछत-अछत पगु धरनी धरै ।
निसि अंधियारी कोउ न जानें नूपुर-धुनि जिनि प्रगट करै ॥
किसलय, दल कुसुमनि की सिज्जा रची निहारि नव कुंज दरै ।
'कुंभनदास' स्वामिनी वेगि मिलि रसिक-राइ गिरिधरन वरै ॥

२८६ [मलार]

तू चलि नंद-नंदन वन बोली ।
करि सिंगार चंचल मृगनैनी पहिरि कसूमी चोली ॥
कुच कठोर, नैन अनियारे लै मिलि भेंट अमोली ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर मिलि हैं अंतर-पट खोली ॥

२८७   [मल्हार]

तेरौ मन मोहन[1]-बिनु न रहैगौ।
उमड़ी घटा सावन भांदो की पंछी सब्द कहैगौ ॥
तब तू मोहिं सँभारेगी तब-जब तोहिं मदन[2] दहैगौ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर-बिनु प्रेम प्रवाह बहैगौ ॥

२८८

बंदे जो जबहिं मान धरि आवै।
सुंदर स्याम बहुरि सन्मुख व्है अंबुज-बदन दिखावै ॥
तबलगि मान करहु कोउ कैसें, जबलगु वह दरसन नहिं पावै।
दृष्टि परें मन मधुकर तिहि छिनु सहज सरोज हिं धावै ॥
त्रिभुवन मांझ होउ बंदे जुवती आरज-पँथ हिं दृढावै।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर कुल-मरजादा ढावै ॥

२८९

मोहनराइ बोली री! अधरतियां,
उठि चलि वेगि लाल गिरिधर पें, यह लै पिउ की [illegible] ॥
सुनि मृदु वचन भई अति आतुर धर-धर करै री छतियाँ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर की मानि लई सब बतियाँ ॥

२९०

मन वच थकित, करौं कैसी री!
छिनु-छिनु पांइ लागति नांहिन मानति तूं अति, मानों पाट वैसी री
मुख उ नहिं देखिहि किनि सुंदरि! चंद्रकला नभ में पैसी री।
कुंज-भवन के द्वारें उलकति भीतरि जाति नहिं भांति तैसी री! ॥
मोहन नागर तुव पथ चितवत कितनी जानि आरति ऐसी री।
'कुंभनदास' गिरिधरन भेंटि प्यारी, भांवति मोहिं बात ऐसी री ॥

१ गिरिधर-बिनु (पाठभेद)   २ अतनु (वध १५-२/११८)

२९१ [नट]

राधे ! तैं मान मदन-गढ किये ।
वाकौ कोट ओट घूंघट की ताहिनै जात लियो ॥
पठए वसीठ दूत दूतनि-मिलि तिनि कछु ऊतर न दियो ।
'कुंभनदास' प्रभु छूवत मिलवत अधर-सुधा-रस पियो ॥

२९२ [कानरौ]

लै राधे ! गिरिधर दै पठई अपने सुंदर मुख की वीरी ।
सुनहु संदेसौ प्रान-प्यारे कौ कित सकुचति आवै किनि नियरी ?॥
घूंघट खोलि नैन-भरि देखहु बांचि लेहु प्रीतम की चियरी ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर मिलि आँखें छतियां करि सियरी ॥

२९३ (रामकली)

सखी री ! सौने सीतल लाग्यौ ।
मिलि रस रूचिर प्रेम आतुर व्है, चारि जाम पिय जाग्यौ ॥
करि मनुहारि वहुरि हौं पठई अधर-सुधारस लाग्यौ ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर तेरे प्रेम-रस पाग्यौ ॥

परस्पर-सम्मिलन—

२९४ [आसावरी]

मदनगोपाल-मिलन कों राधे ! द्यौस कुंज-बन बनि चली कामिनि
सकल सिंगार विचित्र विराजित नखसिख-अंग अनूप अभिरामिनि ॥
जोबन नवल ठौनि, कटि केहरि, कदलि जंघ जुगल गज-गामिनि ।
चकई बिछुरि, कमल पुट दीनों कियो है उद्योत ससी भई जामिनि ॥
ठाढी जाइ निकट पिय कें भई, लई कर पकरि सेज पर भामिनि ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर कें [१]लागि सोहै जैसे-घन-मॅह दामिनि ॥

१ हदै लाग्रि (क)

२९५

मोहनराइ लीनी लाइ छतियां।
चंचल चपल मृगनैनी राधे बोली मधुर सब बतियां॥
नखसिख-रूप अनूप बिराजित ए सब रस की गतियां।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर वस कीन्हे जमुना-पुलिन सरद की रतियां॥

२९६ (नट-नारायण)

जान न. दैहों प्यारे! काहू के भवन।
गिरिधर पिय! अब पर-पनु देखों
राजीउ कहावत हो? बहुरॅवनी-रमन!
जोहो हौं बची, डोली तुम तोहीं
अपबल भए अब हिं जानों जो- करहु गवन।
'कुंभनदास' प्रभु इतनी कही जो मोसों-
अकसि करि सकै सो है ऐसी कवन?॥

२९७ (ईमन)

ऐसी को मन भाई?
बनि-ठनि कहां कों चले सांवरे! ऐसे कुंवर कन्हाई॥
मुख देखत जैसे दूज कौ चंदा छिपि-छिपि देत दिखाई॥
चले जाउ नेकु ठाडेइ रहोगे किनि? ऐसी सीख सिखाई।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर निकसि जाइ ठकुराई॥

२९८

आजु आँजी आछी अॅखियां सारंगनैनी मान सों।
लगति मनों गज-बेलि की गांसी सानि धरी खरसान सों॥
ओंर कोर चलि जाति स्यामता तकति तरुणि नैन-बान सों
स्यामसुभग तन घात जनावति प्रगटत अधिक उनमान सों॥
घूंघट में मनमथ कौ पारधी तिलकु भाल, भृकुटी कमान सों।
'कुंभनदास' सजि सुरतिलरन चली गिरिधर रसिक सुजान सों॥

शयन—

२९९ [केदारो]

वे देखि बरत झरोखें दीपकु हरि पौंढे ऊंची चित्रसारी।
सुंदर बदन निहारन-कारन राख्यौ है बहुत जतन करि प्यारी ॥
कंठ लगाइ, भुज दै सिरहानें, अधर-अमृत पीवति सकुमारी।
तन[1]-मन मिली प्रान-प्यारे सों नव[2] रंग-रस बाढयौ अतिभारी ॥
कुंभनदास दंपति[3] सौभग-सींवां जोरी अद्भुत बनी इकसारी।
नवनागरी मनोहर राधे, [4]नव नागर गोवर्द्धन-धारी ॥

३००

पौंढे हैं दोऊ पिय प्यारी।
मंद सुगंध पवन जहां परसत तैसिये राजति निसि उजयारी ॥
विविध भांति फूलनि की सिज्जा सुख-विलास बाढ्यौ अतिभारी।
तैसिये मिलि रही नव कुंजें तन-पहिरें नव तनसुख-सारी ॥
कंठ मेलि भुज, केलि करत हैं ज्यों दामिनि घन होत न न्यारी।
'कुंभनदास' गोवर्द्धन-धारी सुख-सागर उपज्यौ रंग भारी ॥

३०१ [केदारो]

राधा के सँग पौंढे कुंज-सदन में सहचरी सबै मिलि द्वारें ठाढी।
नंदनंदन कुंवर वृषभान-तनया सों करत केलि में जु रुचि बाढी ॥
पिया-अंग-अंग सों लपटाइ स्यामघन,
पिय-अंग-अंग सों लपटाई स्यामा ॥
दोउ कर सों कर परसि उरोज अति-
प्रेम सों कियो चुंबन अभिरामा ॥
लाल गिरिधरन कों कंठ लागि पुनि,
बहुत भांति करि केलि, निसि सुख दीनों।
'दास कुंभन' प्रभु प्रात बन-कुंज तें,
प्यारी-कंठ भुज मेलि गवन कीनों ॥

---

१ हिलि मिलि रही प्रान (वं. ११।१८९) २ नौतन छवि बाढी (व. ११।१८९)
३ कुंभनदास प्रभु (११। १८९) ४ नवल लाल ,,

पौंढे राधिका के संग।
रंगमहल की ललित तिवारी परदा परे सुरंग॥
जगमगात नव भूषन, रतन जटित बहु अंग।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर मोहत कोटि अनंग॥

३०३

रिमि-झिमि रिमि-झिमि वरसत मेह।
अहो लाल! कैसें आऊं ऊंची चित्रसारी॥
उमड़ि-घुमड़ि आए बादर चहुं दिसि तें,
लै चलि हो इहां भींजे मेरी सारी॥
उठिके लाल पीतांवर ढांप्यो लैगए तहां, जहां गोख-तिवारी।
'कुंभनदास' पौढे रंगमहल में दोउ मिलि रति-सुख विलसत भारी॥

सुरतान्त —

३०४ (विलावल-इकताल)

काहे बांधति नांहिन छूटे केस?
ससिमुख पर घन-धार वाढी कछुक जु चली मानों उर-देस॥
अंग-अंग औरु इहै सोभा कहा कहों? निसा जागी, आई औरहि वेस।
'कुंभनदास' अति चोंप[1] तें चोंप भई गोवर्द्धनधर मिले व्रज[2]जुवति-नरेस॥

३०५ [विलावल-जातीताल]

मोतिनि मांग विथुरी ससिमुख पर,
मानहुँ नछित्र आए करन पुजा
अंचल फरहरात उर पर बांधी काम-धुजा॥
विरह राहु तें छूटें सकल कला
विमल भई देखत सुखुजा।

१ ओप (क) २ व्रज-जुवनरेस (ख)

'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर
अधर-सुधा रस कियो पानु कंठ मेलि उदार भुजा ॥

३०६ [विलावल-जतिताल]

रसमसे नैना तेरे निसि के उनींदे ।
काहे कों दुरति[1] उलटि व्रात प्रातहीं जु धुनींदे ॥
वदन आलस में आलस की जँभाई बोलति अलसांइ वचन छीदे[2] ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर मिले तोहिं सकल अंग में व्रीदे ॥

३०७ (विलावल-जतिताल)

तू तो आलस-भरी देखियति सखी री !
रजनी चोर तातें आंखि न लागी अरु अकेली, भामिनि ! कुंज वसी ॥
घर-विरुद्ध तैं रूसी काहू जानी नव वन कों दिन गतहिं नसी ।
'कुंभनदास' गिरिधर के कंठ की इह जानति हों
तो तौ गिरि पांइ मोतिनि-माल खसी ॥

३०८ (बिलावल)

आजु व देखियत वदन डहडह्यो प्यारी ! रगमगे नैनां तेरे रंग-भरे ।
मानहुं सरद-कमल-ऊपर उन्मद जुगल खंजन लरे ॥
रसिक-सिरोमनि लाल सु सीतल सुखद कमल कर उर धरे ।
'कुंभनदास' काहे न फूलै ? गिरिधर पिय सब दुःख हरे ॥

३०९ [बिलावल]

काहे तैं आजु बिथुरी प्यारी ! क्यों री[3] न बांधहि अलक ।
भौंह कमान, नैन रतनारे मानु[4] न लागी पलक ॥
रति-रस-सुख की फूल जनावति मद[5] गयंद की चाल मलक ।
'कुंभनदास' मिली गिरिधर कों मानों कोटि चंद झलक[6] ॥

---

१ दुरति जु (क)   २ छवि दे (क)   ३ क्यों न (क)   ४ सानु (ख)
५ मत्त (क)   ६ झलक (क)

३१० [बिलावल—इकताल]

जानी, मैं[1] री ! आजु तू मिली प्यारे सों
तें अपनौं भांवतौ है[2] री माई ! कियो।
सकल रयनि रति-रस[3] रंग खेलत
पलक सों पलक लागन न दियो ॥
कंठ लागि दे भुजा सिरहाने[4] रसिकलाल कौ अधर-सुधा रस पियो।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिवर-धर कों आंकौ भरि भेटि जुडायो हियो ॥

३११ [कानरौ]

तैं (तौ) लाल विलगु करि पायो।
विविध भांति संग खेलि सखी ! तैं कियो आपुनो भायो ॥
रसिकराइ सिर-मौर नंद-सुत हिलि-मिलि रंगु बढायो।
सुरत-सुधा निधि[5] अपनें वस करि जाइ निकुंज वसायो ॥
तू राधे ! वडभाग उदित जिनि त्रिभुवन-पति अरुझायो।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर हँसि-हँसि[6] कंठ लगायो ॥

३१२ [केदारौ]

डगमगि चालि आजु कछु औरहि बंदसि माई री ! रही है बैनी छूटि।
अधर निरंग अरु नख लागे उर पर, मरगजी चोली मोतीलर गई टूटि ॥
अंचल पीक तेरें लागी है री, जहाँ-तहाँ सैननि सखी सकल करैं कूटि।
'कुंभनदास' सौरभ भरी[7] जोवन-धन गिरिवर[8]-धरन लालन लई लूटि ॥

३१३ [केदारो]

मिलेकी फूल नैनांई कहैं देत तेरे।
स्यामसुंदर मुख-चुंबन परसे नांचत मुदित अनेरे ॥
नंद-नंदन पें गयो चाहत हैं मारग श्रवननु घेरे।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर-रसभरे करत चहूं दिसि फेरे ॥

१ मैं आजु (क) २ ही माई (क) ३ सुरंग (ख) ४ सिराहने (क)
५ रस (क) ६ हरि (ख) ७ सुघरि धरी (क) ८ धरन लालनु (क)

३१४ [केदारो-अठताल]

माई ! तेरे फूलिबे कौ न्याउ ।
गिरिधर लाल सकल अँग परसे, तातें तन-मन चाउ
सुंदर स्याम त्रिलगु करि पाए सघन निकुंज परि गयो सखि ! दाउ ।
'कुभनदास' प्रभु आनद-सागर नंद-कुमार रसिक-राउ ॥

३१५ [केदारो जतिताल]

तेरौ भांवतो भयो री ! काहे ना फूलै ।
गिरिधर लाल मनायो मान्यों कंठ लाइ
कियो अधर-पान आई मेटि विरह-सूलै ॥
बिविध बिहार विविध रस पिय-संग
सुरत करति कालिंदी-कूले ।
'कुंभनदास' आनंद-भरी लागतु नांहि न पांउ,
नंद-नंदन भेटे रस-मूलै ॥

३१६ (ललित)

आजु कौन अँग तें व्रज-सुंदरि ! रसिक गोपाल हिं भाई ।
सकल सिंगारु साजि मृगनैनी एसे ई भले वेगि चलि आई ॥
लहँगा लाल, झूमकी सारी कसूंभी वरन पिय-हेत रंगाई ।
नयन रसमसे आलस जुत सब अँग-अँग प्रति बहु छबि छाई ॥

. ...

'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर अपने जानि हँसि कंठ लगाई ॥

३१७ [विभास]

आजु तेरी चूनरि अधिक बनी ।
बार-बार जु सराहत मोहन राधाजू परम गुनी ॥
अंजन नैन, तिलकु, सेंदुर छबि, चोली चारु तनी ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर सों रति रस-रंग सनी ॥

३१८ (विलावल)

* सोइ उठी वृषभान-किशोरी।
अलसानी ॲगराइ मोरि तनु ठाढी उलटि उभय भुज जोरी॥
तव कर-बीच वदन यों राजत मोहै मोहन प्रीति न थोरी।
नाल-सहित मानों सरोज-जुग मधि बंध्यो इंदु गरव गहोरी॥
तिहिं छिनु कछुक उरज ऊंचे भए सोभित सुभग कहें कवि को री!
मानों द्वै कमल सहाइ सहित, अलि उठे कोपि मन संक न जोरी॥
तापर लोचन चारु, मनोहर अरुन-कोर त्रिभुवन-छवि चोरी।
'कुंभनदास' इंदीवर-विवि जनु विरचित सरस देखि एकोरी॥

३१९ (सारंग)

डोलति फूली-सी तूं कहा री!।
मृगनैनी देखियत है आजु मुखचंद उहडह्यो भारी॥
कंचुकी पीत, लाल लहंगा पर बनी रंगमगी सारी।
नूपुर रुनझुनात, कटि मेखल, मल्हकनि चाल निन्यारी॥
काजर तिलकु दियो नीकी विधि रुचि-रुचि मांग सॅवारी।
'कुंभनदास' गिरिधर सों नयो रंग जानी बात तिहारी?॥

३२० [विहागरो]

तेरे सिर कुसुम विथुरि रहे भामिनि!
सोभा देत मानों नभ निसि-तारे॥
स्याम अलक छुटि रही री! वदन पर
चंद छिप्यो मानों- बादर कारे॥
मुक्ता-माल मानों मानसरोवर, कुच चकवा दोउ न्यारे।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर बस कीन्हें नंदलाल पियारे॥

* यह पद स. ७७ परि (१) ये सूरसागर मे पाठभेद से छपा है। सूरकृत होने में सम्पादक को अर्ध सन्देह है। स भं. वध ३।१'४१८ मे कुंभनदास कृत है।

खण्डिता (वञ्चिता)

३२१ [विभास]

सांझ जु आवन कहि गए लाल ! भोरु भएँ देखे ।
गनत नछित्र नैन अकुलाने, चारि पहर मानों चारयों जुग बिसेखे ।।
कीनी भली जु चिन्ह मिटाए, अधर निरंग अरु उर नख-रेखे ।
'कुंभनदास' प्रभु रसिक-सिरोमनि गिरिधर ! तुम्हारे कैसे लेखे ? ।।

३२२ [विभास]

लालन[1] ! इतनि बार जो-तुम कहां रहे ?
सगरि रैनि पथु चांहत-चांहत नैन दहे ।।
'कुंभनदास' प्रभु भए ताहि वस जिनि व गहे ? ।
गिरिधर पिय ! भले बोल निबाहे संध्या जु कहे ।।

३२३ [विभास]

निसि के उनींदे मोहन नैन रसमसे ।
कहा के लजांत कहहु धों लालन ! कहां बसे ?
डगत[2] चलत, आलस जंभात हो, वंदन रेख देखियत वसन खसे ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिवरधर ! तुम भुज-बंधन उरहिं लाइ कसे ।।

३२४ [बिलावल]

कहो धों कहां तुम रैनि गँवाई ? लाल ! अरुन उदय आए ।
कौन सँकोच घनस्याम सुंदर ! तमचुर बोलत उठि धाए ।।
आँखि देखि कहा साखि बूझिये ? रति के चिन्ह तन प्रगट लाए ।
'कुंभनदास' प्रभु (सु) जान गिरिधर काहे कों दुरत पिय ! जानि पाए ।।

३२५ [बिलावल]

कहो धों आजु कहां वसे लाल ! भोरु भएँ आए डगमगात पग ।
खरे सवारे क्यों उठे ? मोहन ! बोलत तमचुर[3] खग ।।

---

१ इतनि बार लों (क) २ झुगत (क) ३ तमचुर वर खग (क)

काजर अधर, लटपटी पाग, उर विलुलित कुसुममाल कुच-परसग।
अरुन नैन, आलस जंभात पिय! रैनि कियो जग? ॥
रति के चिन्ह प्रगट देखियत काहे कों दुराव करत स्याम! सुभग।
'कुंभनदास' रसिक गिरिधर परे चतुर नागरि[2]-फग ॥

३२६ [बिलावल]

* तुम्हारे पूजिये पिय! पांइ,
कैसी-कैसी उपजति तुम पहिं कहत बनाइ-बनाइ ॥
अरुन अधर क्यों स्याम भए ? ए क्यों परे पट पलटाइ।
क्यों रचे कपोल पीक, कहां पायों उर जय-पत्र लिखाइ ॥
गिरिधर लाल जहां निसि जागे, तहीं देहु सुख जाइ।
'कुंभनदास' प्रभु छांडो अटपटी अब हि व को पतिआइ? ॥

३२७ [बिलावल]

ऐसी बातनि लालनु! क्यों मन मानें?
ऊनरु बनाइ-बनाइ तासों कहिवे जो इह न जानें ॥
रति के चिन्ह सब प्रगट देखियत कैसें दुरत दुरानें।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर! तुम हौ भले सयानें? ॥

३२८ [बिलावल]

सांझ के सांचे बोल तुम्हारे।
रजनी अनत जागि नँद-नंदन! आए हौ निपट सवारे ॥
आतुर भए नील पट ओढे, पीरे बसन बिसारे।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर! भले वचन प्रतिपारे? ॥

३२९ [ललित]

आजु निसि जागे अनुरागे पागे कौन रंग रंगे हौ? लाल!
अरुन नैन, अरु माल मरगजी देखियत, सिथिल गति अरु चाल ॥

---

1 नागर (ख) * यह पद स ३२९६ पर सूरसागर में कुछ परिवर्तन से छपा है- पर 'क' 'ख' प्रति मे होने से कुंभनदास कृत है।

३३६　　　　　　　　[आसावरी]

विरह-बान की चोट जु जाहि लागै सोई जानें ।
भोगइये ते समुझ परै जिय कहें कहा मानें ? ॥
जैसे कांड सु [1]बधिक चनकटि होत हैं बिखु-सानें ।
मरमत नख-सिख अंग ततछिनु थोरे हू तानें ॥
होत न चैनु निमिख निसि-बासर बहुत जतन आनें ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर-बिनु बिथा कौन भानें ॥

३३७　　　　　　　　[सारंग-अठताल]

किते दिन व्है[2] गए बिनु-देखें ।
तरुन किसोर रसिक नंद-नंदनु कछुक उठति मुख रेखें ॥
उवह[3] चितवनि उवह हास मनोहर उवह[4] बानिक नट-भेखें ।
उवह सौभग उह कांति बदन की कोटिक चंद-बिसेखें ॥
स्याम सुंदर-संग[5] मिलि खेलन की आवति जियआ पेखें[6] ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर-बिनु जीवन जनम अलेखें ॥

३३८　　　　　　　　[सारंग]

जब तें बिछुरे ललना तब तें मेरी नींदौ गई ।
कब हूं ए आंखि भूलि हू न लागै जुग-समान अब मोकों राति भई ॥
हार, सिंगार, बिहार उबीठे सदा सोच रहै जिय निमिख न घटई ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर प्यारे के बिरह सखि जरद भई दिन पीर नई ॥

३३९　　　　　　　　[सारंग-इकताल]

ते दिन बिसरि गए जब हरि लेते उछंग ।
बेनु-ब्याज बोली अधरातिनु चढि गिरि-सिखिर सृंग उतंग ॥
बेनी गूंथि बिबिध कुसुमावलि सुहथ सँवारत मंग ।
केतौ सुख लागतौ परस्पर देखि-देखि सब अंग ॥

---

१ बधिक-चुनकटि (क) २ व्है जु गए (प्रचलित) ३ उउह (क) ४ वह नटवर बपु-भेखे (क)
५ सों (क)　　　　६ जिए अमेखे (क)

ए बातें कहियो न्यारे व्है जब कोउ होइ न संग।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर! ए व तुम्हारे रंग ॥

३४० (सारंग)

बीते[1] हो माधौ! एते दिनां।
कितीक दूरि गोकुल अरु मथुरा किधों पहिचान्यों ही किनां ॥
कबहूं इतनों[2] स देश न पाती, सुरत्यौ विसारी तोरयौ प्रीति-तिनां।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर-बिनु अब बीततु कलप छिनां ॥

३४१ [गौरी]

तुम्हारे मिलन-बिनु दुखित गोपाल!
अति आतुर[3] ब्रज-सुंदरि प्यारे! विरह बिहाल ॥
सीतल चंद्र तपनु भयो दहतु किरननि
कमल-पत्र[4] जनु-गरल-व्याल ॥
चंदन कुसुम सुहाइ न बाढी तन-ज्वाल।
'कुंभनदास' प्रभु नव घनस्याम! तुम-बिनु-
कनक-लता सूखी मानों ग्रीषम काल ॥
अधर-अमृत सींचि लेहु गिरिधरन लाल! ॥

३४२ [मलार]

घटा घनघोर उठी अति कारी।
मुरछि परी गिरी धरनी पर विकल भई ब्रज-नारी ॥
कूक महूक दामिनी कोंधति घेरि विरहिनी जारी।
'कुंभनदास' प्रभु राखि लेहु किनि 'सुख-निधान गिरिधारी! ॥

३४३ (नट-नारायण)

कारी निसि में दामिनि कोंधति।
हरि समीप-बिनु सूनी सेज अकेलें हौं माई? डरपति चोंधति ॥

१ हो जीते हो (ख) २ इतौं (क) ३ आतुर कुलवधू ब्रजसुन्दरी (क)
४ कमलपत्र जलपत्र जनु (ख)

ज्यों-ज्यों व सुरति होति प्रीतम की, नैननि ढरत जल ज्यों गगरी ओंधति ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर-विनु अब नींद गई, छिनु-छिनु छतियां रोंधति ॥

३४४   [नटनारायन]

पीउ आए नांही सखी री ! जागत ही मोकों जात[1] निसा ।
चारयों जाम रही वैठि नैन अकुलाने जोवत दसहुं दिसा ॥
तेरे भरोसें हौं रही नां जानों तूं गई[2] गिरिधर[3] लालन पें
किधों कियो मोसों एसें हि मिसा
'कुंभनदास' प्रभु-बिनु[4] मेरी आली !
लागी ज्यों चातक घन की तिसा ॥

३४५   [नटनाराइन]

* नैन घन रहत न एकु घरी ।
क्यों हू न घटति सदा पावस ब्रज लागिय रहति झरी ॥
विरह इंद्र बरखावत निसि-दिनु है अति अधिक करी ।
उर्द्ध स्वास समीर तेज जल उर भूमि उमगि भरी ॥
वूडति भुजा रोम अंबर द्रुम अँस कुच उचमि थरी[5] ।
चलि न सकत पग, रहे पथिक थकि चंदन-कीच खरी ॥
सब रितु मिटी भई अब एकै, वह विधि उलटि परी ॥
'कुंभनदास' लाल गिरिधर-विनु नीति मरजाद टरी ॥

३४६   [मलार]

आए माई ! वरिखा के अगिवानी ।
दादुर, मोर, पपीहा बोलत कुंजनि सुनिऐ[6], बग-पंगति उडानी ॥
घन की गरज सुनिकें कैसें जीऊं माई ! कारे बादर देखि सयानी ! ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर लाल सबै सुख-दानी ॥

---

१ गईं (क)   २ गई ही (क)   ३ .धरनलाल पे (क)   ४ विनु आली (क)
५ उच्च थरी (क)   ६ -.. ए दीसें (क)

* यह पद स. ४७३२ पर सूरसागर मे छपा है पर क. ख. प्रति में होने से कुभनदास कृत हीं है ।

३४७ [मलार]

वरिखा कौ आगमु भयो री ! चातक, मोर बोलत दुहुं[१] दिसा।
उने उने उठत कारे बादर सुहाए रु
तामें बग उडत समूह निकुर[२] रलाई दिन सारसा ॥
हरि-समीपु बिनां कैसें भरों ए दिन,
दादुर की रटनि नींद न परै निसा।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर माई! अजहुं न चितु कियो
इतकों, बिछुरनु परयौ मेरे हिसा ॥

३४८ (मलार)

हौं जगाई री माई! बोलि-बोलि कें इनि मोरा।
बरखत बूंद अँध्यारी चौमासे की कैसे भरों पारयौ है बीचु नंदकिसोरा ॥
सेज अकेली डरों दामिनि कौंधति, बोधति घन गरजत चोहूं ओरा।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिवर-धर मोहि मिलाइ[३]री! जैसें व लागी रहों कोरा ॥

३४९ [केदारौ]

उलरे[४] बादर चहूं दिसा तें।
गिरिधर पिय-बिनु सेज अकेली डरपति हौं[५] निसा तें ॥
इहै गितु औरु बिछुरनों ऐसौ लिख्यौ[६] विधाता कौन रिसा तें।
'कुंभनदास' गिरिधर-बिना ए तपत नैन दरसन-तिसा तें ॥

३५० [केदारौ]

आगम सांवनु क्यों भरिये ?
चातक, पिक, मोर बोलत सुनि-सुनि श्रवननु जरिये ॥
चहुं दिसि उठत पहार-से बादर स्याम सुबरन
सु देखि-देखि धीरजु कैसे व धरिगे ॥
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर कौ आली! मिलनु होइ सो करिये ॥

१ दहँ (ख) २ निकुवर लाई (क) ३ मिलाइ करि (क) ४ गरजि उठे बादर (वं. २७/४) ५ डरपति (ख) ६ भाग मेरे लिखे (ख)

३५१ [कानरौ]

चाहत-चाहत मारगु अब इह आयो है सावनु ।
अवधि गऐं किते दिन बीते अजहुं न भयो[1] आवनु ॥
क्यों सहों घन की गरज और चातक की पीउ-पीउ सुनावनु ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर कब[2] देखों मन-भावनु ॥

३५२ (कानरौ)

हरि समीप-बिनु कैसें भरों ।
सांवनु आयो हरियारो,
ज्यों-ज्यों अँधियारी निसि दामिनि चमकै माई !
अरु घन गरजत त्योंब जिय डरों ॥
चहुं दिसि उठत जु बादर कारे देखि-देखि नैननु क्यों जिय धीर धरों ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर के विरह क्योंहू न परै कल, हौं कहा करों? ॥

३५३ [केदारौ]

माई ! कछु न सुहाइ मोहिं, मोर-बचन सुनि बन में लागे सोर करन ।
स्याम-घटा पंगति बगुलानि की देखि-देखि लागी नैन भरन ॥
गरजत गगन, दामिनी कौंधति निसि अंधियारी, लाग्यौ जीउ डरन ।
नींद न परैं चौंकि-चौंकि जागति सूनी सेज, गोपाल घर न ॥
चंदन, चंद, पवन, कुसुमावलि भए विष-सम, लागी देह जरन ॥
'कुंभनदास' प्रभु कबहिं मिलहिंगे गिरिवर-धर दुख काम-हरन ॥

३५४ [केदारौ

निसि अंधियारी दामिनि डरपावति मोकों चमकि-चमकि ।
सघन बूंद परति माई री ? अरु चहुं दिसि घन गरजै धमकि-धमकि ॥
बिनु हरि-समीपु भवन भयानकु अकेलें-
आँखि न लागै चौंकि-चौंकि परों हमकि-हमकि ।

१ भयो पीतम (क) २ जब (ख)

'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर रसिकवरलाल,
कब मिलि हैं? लागि हृदै रमकि-रमकि ॥

३५५ (केदारौ)

आयो हो! बरसि बादर कालौ।
आवन निकट कह्यौ गोपीनाथ, अजहुं न आए,
ना जानों कवन दिन कियो चालौ ॥
घन गरजत, चातक मोर, बोलत सुनि-सुनि श्रवननि सुहाइ न कछु
देखत ही पंथ जाइ भोर तें निसा लौं।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर पिय-बिनु
कहि क्यों मोपें रह्यौ परै? इह सब व्रज लागत ठालौ ॥

३५६ [केदारौ-अठताल]

औरनि कों ब समीप, बिछुरनों आयो हो[१] मेरे हिसा।
सब कोउ सोवैं सुख आपुने आलि! मोकों चाहत जाई चौंहू दिसा ॥
नां जानों या विधाता की गति? मेरे आँक लिखे एसे भाग सु कौन रिसा।
'कुंभनदास' प्रभु 'गिरिधर' कहत-कहत
निसि-दिन रही रटि ज्यों चातक घन की तिसा ॥

३५७ [केदारौ-अठताल]

बिछुरनों इहै ब किनि कियो?
यातें बुरी पीर और नांहि न जरत भसम होत हियो ॥
पलु-पलु जुग-सम जाइ क्यों हू न परै जियो।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर लाल
घोष तें गवने तन-मन आन-संग लियो ॥

३५८ [केदारौ-अठताल]

जा दिन तें हरि बिछुरे, भूलि हू न नींद परै।
धनि ते जुवति जे सपनें हूं पिय कों देखति, सोई छिनु बिरह टरै ॥

१ हमारे (क)

चंदन, चंद-किरन पावक-सम नित प्रति हृदौ जरै।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर-बिनु को तनु-ताप हरै? ॥

३५९ [केदारौ]

गोविंद वृंदावन की साध।
देखन कों उह भूमि मनोहर लोचन तपत[1] अगाध
कहहु ब इह कैसें भावतु है क्षार-सिन्धु कौ बास।
वह सुख कहां राधिका-बल्लभ! कालिंदी के पास॥
एक बार चलिए पां लागत ब्रजवासी सब लोग।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर लाल बिना सब सोग॥

३६० [बिलावल]

सुनहु गोपाल! एक[2] ब्रजसुन्दरि तुमहिं मिलनकों बहुत करति।
बार-बार मोसों कहत रहति है वाके जिय में बहुत अरति॥
तुमहिं जपत रहति निसिवासर और बात कछु जिय न धरति।
स्याम सरीर चिहुंटि चित लाग्यौ लोकलाज तें नांहिन डरति॥
होत न चैनु वाहि एकौ छिनु अति आतुर चित बिरह भरति।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर! तुव-कारन नव जोबन गरति॥

३६१ [गौरी]

चितवत नेंकु कहा व्है जात?
अब मोहन एसौ मन कीन्हों चंचल चपल-दल कैसौ पात॥
जबलगि मुख देखों तबलगि सुख, देखिवें कों अकुलात।
'कुंभनदास' प्रभु रीझि बिमन भए देखत व्है जु गयो गलि गात॥

३६२

कहिये कहा कहिवे की होइ।
प्राननाथ-बिछुरन की वेदन जानत नाहिं न कोइ *॥

❀

इति लीला-पद

१ तृपत (क) २ एक मोहनि ब्रज० (बं. १९/७) * यह पद पूर्ण प्राप्त नही हुआ।

प्रकीर्ण

आवनी—

३६३ (हमीर)

* ढरकि रह्यौ सीस दुमालौ मोहन ।
कटि छथन कसि पियरो पटुका,
उर मनि-कांति अति सोहन ॥
गोविंद गांइ चराइ ल आवत,
मन बसि रही मुसक्याहन ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर
कोटिक मन्मथ-मोहन ॥

३६४ [हमीर]

* आजु उर चंदन-लेप किये ।
कटि पर आडबंद ह चंदनी, सीस पर पगा छिये ॥
गो-धन सँग आवत मनमोहन बांहि सखा के कंठ दिये ।
'कुंभनदास' प्रभु बदन सुधानिधि, निरखत नन पिये ॥

३६५ [हमीर]

* सुंदर अति जसुमति कौ छगन मगननियाँ ।
वृंदावन मे गांइ चरावत बलदाऊ और कन्हइयाँ ॥
फेटा सीस दोउ भैयनिकें, कटि परधनी सोहत चंदनियाँ ।
चिरजिओ ढोउ ढोटनि की जोरी 'कुंभनदास' उर-मनियाँ ॥

---

* इन पदो के कुमनदास कृत होने में सन्देह है । यह एकाध ही अर्वाचीन प्रति मे मिलते हैं । अमुक शृंगार-वर्णन के लिये इनकी रचना की गई है । इनका शीर्षक भी 'भोग मे दुमाला'कौ कीर्तन, पगा, फेटा, आडबद कौ कीर्तन' इस प्रकार मिलता है जो अप्रामाणिक है । अन्य पदों की तुको का संमिश्रण भी इसी बात को पुष्ट करता है ।

३६६ (हमीर)

* गिरिधर आवत गाइनि पाछैं।
सीस मुकुट, कुंडल की लटकनि, कटि पर काछनी काछैं॥
चंदन चरचित नील कलेवर, वेनु बजावत आछैं।
'कुंभनदास' प्रभु अधर-सुधा पीवत, को चाहैं छाछैं ? ॥

३६७ [हमीर]

* सोहै कटि सेत परधनी झीनी।
सीस धर्यौ फेंटा अति सुंदर, चंदन वेंदी दीनी॥
गैयां घेरि करी इकठौरी जसुमति घैया कीनी।
'कुंभनदास' जसुमति मुख चुंवति, प्यावति प्रेम रस-भीनी॥

३६८

* देखो सखि ! मोहन-नंद दुलारौ।
स्याम घटा में रूप-छटा-सी सोभित पीत टिपारौ॥
धौरी धूमरि गैगनि पाछैं आवत व्रज कौ प्यारौ।
'कुंभनदास' गिरिधर की छवि पर तन-मन आरति वारौं॥

छाक—

३६९ [मलार]

* आजु हरि जैंवत छाक बनाइ।
संग सखा सब बैठे चहूं दिसि करत बात मन भाइ॥
जोरि पलास करत पनवारो बिंजन सरस धराइ।
'कुंभनदास' प्रभु जोरि सबनि कों देत बांट कर भाइ॥

३७० [मलार]

* हरि-संग बिहरत है सुकुमारी।
हरि जो भये हरी रस-माते देखत सब हरियारी॥
हरी हरी विधि के भोजन करत हैं पिय प्यारी।
'कुंभनदास' प्रभु हरे महल में रंग मच्यौ है भारी॥

३७१ [मलार]

* नवल निकुंज में जैंवत मोहन बलदाऊ भैया लै संग।
खात खवावत परस्पर दोऊ सुंदर छवि की उठत तरंग॥
कमल बरन काछनी, कनक बरन टिपारौ सिर,
कुंडल किरननि रवि-जोति किये भंग।
जगमग जोति अति मुख मंडल की, निरखि लज्जित भये कोटि अनंग॥
खात-खात उठि टेरत ग्वालनि छाक आई भैया! आवौ सब दोरि।
मधुरे वचन मीठे जु लालन के सुनत-सुनत मेरौ लियो चित चोरि॥
आसपास बैठी ग्वाल-मंडली मधि जेंवत दोऊ नंदकिसोर।
सोभा कहा कहौं? रसिक कुंवर पें 'कुंभनदास' वारत तृन तोर॥

३७२ [मेघमलार]

* भोजन करत नंदलाल संग लियें व्रजबाल,
बैठे हैं कालिंदी-कूल चंचल नैन विसाल।
छाक भरि लाई थाल, परस्पर करत ख्याल,
हसि-हसि चुंवत गाल, बोलत वचन रसाल॥
आसपास बैठी वाम, मध्य सोहै घनस्याम,
जैंवत है सुख के धाम रस भरे रसिक लाल॥
विमलचरित्र करत गान, आग्या दई कुंवर कान्ह,
'दासकुंभन' गावत रागमलार निरखि भयो निहाल॥

३७३ [सारंग]

* कुंजनि घांम अति तपत भैया रे! भोजन कीजे।
सुवल कहत सुनो सुबाहू! श्रीदामा द्वार कीक्यों न दीजे॥
अर्जुन आनि धरत घट भरि-भरि ताकि-ताकि सीतल धाम कीनों।
परिष्ठित लै पनवारो डारत भोजन भाव करि लीनों॥
मधुमंगल मंडल-रचना रची बांटि-बांटि सबहिनि कों देत।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर कियो ग्वालनि सों हेत॥

भोजन—

३७४ [सारंग]

* गोवर्द्धन की सघन कंदरा भोजन करत हैं पियप्यारी ।
आस-पास जुवती सब ठाढी देत परस्पर करि मनुहारी ॥
सबनि के भाव सामग्री हित सों लेत श्रीललिता निहारि निहारी ।
' कुंभनदास ' लाल गिरिधर-मुख बीरी देत श्रीराधा प्यारी ॥

३७५

* छप्पन भोग आरोगन लागे ।
श्रीवृषभान-कुंवरि नँद-नंदन ले अपुनो गन संग अनुरागे ॥
विविध भांति पकवान मिठाई विविध विंजन धरे रसपागे ।
षटरस धरे प्रेम रुचिकारी मधु मेवा अपने मुख मागें ।
खात-खवावत हसत-हसावत विनवति सखी तहँ ठाढी आगें ॥
जैंवत देखि ' दास कुंभन ' तहां हरषित मानत बड भागें ॥

प्रभु-स्वरूप वर्णन —

३७६ [सारंग]

* सोहत आडबंद अति नीकौ ।
फेंटा चंदनी स्याम-सिर सोहत, मोती बडे लूम ही कौ ॥
उर पे मोतियनि की माला हार सिंगार बिच फूल केतकी कौ ।
'कुंभनदास' गिरिधर मुख निरखत, त्रिभुवन जीवन जी कौ ॥

३७७ [पूरवी]

* सौहै सिर कनक के बरन टिपारौ ।
कनक ताग लागे वागे में कुंडल श्रवन निहारौ ॥
रंगमहल में रतन-सिंघासन, राधा-रवॅन पियारौ ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर, सब ब्रज लोचन-तारौ ॥

३७८   [हमीर]

* बलि-बलि आजु की बानिक लाल।
पिछौरा कटि-ऊपर सोहत, उर मुक्तनि की माल॥
फूल सेहरौ सीस विराजित फूलनि-माल रसाल।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर निरखत नैननि भयो निहाल॥

३७९   [सौरठ मलार]

* रह्यौ ढरि स्याम दुमालौ सीस।
तैसोई कटि स्याम पिछौरा आजु बने ब्रज-ईस॥
हरित भूमि ठाढे जमुना-तट संग लरिका दस-बीस।
'कुंभनदास' तैसे उनए बादर निरखत श्रीजगदीस॥

३८०   [ईमन]

* फूलनि कौ सेहरौ दूल्है-सिर बनायौ।
फूलनि के बाजूबंद, फूलनि के कडा फूलनि के कुंडल श्रवननि सुहायौ॥
फूलनि हार सिंगार रचे अँग फूलनि रंगमहल सब छायौ।
फूली दुलहिनि फूले श्रीगिरिधर 'कुंभनदास' (फूलि) जसु गायौ॥

३८१   [मलार]

* ब्रज में गोकुल-चंद बिराजैं।
नन्ही-नन्ही बूंदनि बरसन लाग्यौ मंद-मंद घन गाजैं॥
मोर मुकुट, मकराकृत कुंडल, वनमाला छबि छाजैं।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर प्रगट भक्त-हित काजैं॥

३८२   (मलार)

* कदमतर ठाढे हैं बल मोहन।
सीस धरी नव पाग कसूंभी तैसोई पिछौरा सोहन॥
ब्रजनारी चहुं दिसि तें घेरें लाग्यौ है सब गोहन।
कसूंभी छरी टेढी ल ठाढे और नचावत मोहन॥

घन गरजत नभ, उर डर लागत, ग्वाल लगे सब जोवन।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर व्रज-जुवती तृन तोरन ॥

३८३ [गौडसारंग]

* नवल बानिक बन्यौ अँग-अँग सौंधे सन्यौ,
पावस ऋतु मानों उनयो नव घन।
उत गुरुजन-लाज, तोरें कैसे बने काज ? इत धीर न रहै तन ॥
करनि कमल लियें सखा-अंस भुज दियें
आंगनि गयो री! मेरे बरसि प्रेम-बुंदन ॥
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर यह ढोटा हरत परायो मन ॥

युगलस्वरूप-वर्णन—

३८४ (नट)

* आजु प्यारी पिय के संग विराजै।
क्रीट मुकुट निरखत मन हरषत मुख मृदु मुसकनि भ्राजै।
प्रीतम ओढें रजाई सुंदर सुजनी अंग पर छाजै।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर सब व्रज-जन सिर-ताजै ॥

३८५ (हमीर)

* दम्पति दोउ राजत कुंज-भवन।
पीत कुल्है सिर, कटि पियरौ पट कुंडल ललित श्रवन ॥
बिजना-बियार ढोरति सखी नियरें सीतल लागत पवन।
'कुंभनदास' गोवर्द्धन-धर रिझावत प्यारी राधा रवॅन ॥

३८६ [कानरौ]

* सीस सोहै कुल्है चंपक बरन।
राधा-संग चंदन चरचित अंग कुंडल सोहैं श्रवन ।।
मुख मृदु मुसकत, पान आरोगत लाल गिरिवर-धरन।
'कुंभनदास' प्रभु फूल-सेज में पौंढे आरति-हरन ॥

३८७ [विहागरो]

* करत केलि मिलि कुंज-भवन में पिय प्यारी रस-रंग भरे।
मृदुल कुसुम रची वैनी सँवारी कंठ कुसुमनि के हार धरे॥
विविध विहार कुसुम-सिज्या पर निरखत रति-पति मान हरे।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर कोक-कला जुत सुखनि ढरे॥

३८८ [ईमन]

* स्याम-सिर सोभित पगा आजु सेत।
और कहा कहौं मुख की लुनाई, मधुर वचन सुख देत॥
कुंज-भवन क्रीडत राधा-संग अँकनि परस्पर लेत।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर प्रकटे हैं भक्तनि-हेत॥

हिंडोरा—

३८९ [ईमन]

* वैठे दोउ झूलत कुंज-हिंडोरें।
फूले द्रुम, फूली वन वेली, वरखत हैं घन घोरैं॥
तैसेई कोकिला कूजति प्रमुदित पवन झकोरैं।
'कुंभनदास' गिरिधर वंसीवट जमुना देत हिलोरैं॥

आसक्ति—

३९० [सारंग-इकताल]

* सिर परी ठगौरी सैन की।
मदनमोहन पिय जव तें कीन्ही परी चितवनी नैंन की॥
मन की व्यथा कछु कहत न आवै सुधि भूली सखि ! वैन की।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर सांट लगी तन मैन की॥

दान—

३९१ [ललित]

* दान कैसौ रे ! तुम भए अनोखे दानी ?
औरनि के धोखें जिनि भूले भए रहो ? अभिमानी॥

जो रस चाहत सो रस नांही, बात तिहारी है हौं जानी ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर ! काहे कों करत नकयानी ॥

विरह--

३९२ [मलार]

* गुमानी घन ! काहे न बरसत पानी ?
सूखे सरोवर उडि गए हंसा, कमल-बेलि कुम्हलानी ॥
दादुर, मोर, पपीहा ना बोलत कोयल शब्दनि हानी ।
' कुंभनदास ' प्रभु गोवर्द्धन-धर लाल गऐं सुखदानी ॥

श्रीयमुना-स्तुति—

३९३ (रामकली)

श्रीजमुना अगनित गुन गिनें न जाई ।
जमुनातट-रेनु होत बेन इनके मुख देखन की करत बडाई ॥
भक्त मांगत जो होत ही छिनु सो, को करै एसी प्रन निबाई ?
'कुंभनदास' गिरिधर-मुख निरखि कहौं, कै हसों करि मन अघाई ॥

३९४

जमुने ! रसखानि कों सीस नाऊं ।
एसी महिमा जानि, भक्त की सुखदानि ! जोई मागों सोई पाऊं ॥
पतित पावन करत, नाम लीन्हे तरत, दृढ करि गहे चरन कहूं ना जाऊं ।
'कुंभनदास' गिरिधर-मुख निरखन यही चाहत, नहीं पलक लाऊं ॥

३९५

श्रीजमुने पर तन-मन-प्रान वारों ।
जाकी कीरति विसद कौन अब कहि सकै ? ताहिं नैननि तें न मैं नेंकु टारों ॥
चरन कमल-रेनु चिंतत रहों निसि-दिन नाम मुख तें उचारों ।
'कंभनदास' कहै लाल गिरिधर-मुख इनकी कृपा भई, तोऊ निहारों ॥

३९६ [रामश्री]

भक्त-इच्छा पूरन जमुने जू ! करता ।
बिनुही मांगत कहाँ लौं कहौं, देत जसें-
काहू कौं कोउ होइ करता धरता ॥
जमुना-पुलिन रास, व्रजवधू लिऐं पास, मंद हास भवन जो हरता ।
'कुंभनदास' जो प्रभु कौ मुख देखे ताहिं जिय लेखत जमुने ! जो भरता ॥

सीकरी—

३९७

* भक्त[१] कौ कहा सीकरी काम ? ।
आवत जात पन्हैयां टूटीं बिसरि गयो हरि-नाम ॥
जाकौ मुख देखत दुख उपजैं[२] ताकौं करनी परी प्रनाम ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर-बिनु यह सब झूठौ धाम ॥

टोंड कौ घनौ—

३९८ [सारंग]

भावत[३] तोहिं टोंड कौ घनौ ।
कांटे बहोत[४] गोखरू वूडे फारत सिंह परायो तनौ ॥
आवत-जावत बेलि निवारै बैठत है जहां एक जनौ ।
सिंघै कहा लोखरी कौ डरु तैं[५] छांडि दियौ भौन अपनौ ॥
तब बूडत तें राखि लिए हैं सुरपति तो तृन हूं न गन्यौ ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धनधर ! इह[६] तो नीच ढेढिनी जन्यौ ॥

---

* अकबर बादशाह द्वारा सीकरी बुलाए जाने पर उनके सन्मुख गाया हुआ पद ।
(कुंभनदास की वार्ता अष्ट छाप) वि. विभाग द्वि. म. पत्र २३३

१ भक्तनि कौं (प्र.) २ लागै (मु)

३ भावत है (मु.) ४ लगे गोखरू टूटे, फाटन है सब तनौ (मु.)

५ यह कहा बानिक बनौ (मु.) ६ वह कौन ढेढिनी राड़ कौ जन्यौ (मु.)

३९९

बैठ्यौ आइके बन मांहि।
मृदु भोजन सब छांडि दिए हैं अब खिचरी छांछि सों खांहि॥
जाइ ॲगाकरि दूरि करि ल्यावै कररी बहुत जीभ छुलि जांहि।
डरपत फिरै मृगी तें सिंघ क्यों? ए बातें हम कों न सुहांहि॥
गांइ गोप सब सूने डोलत देखन कों गोपी अकुलांहि।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर! सूनों भवन देखि पछितांहि॥

विनय—

४००   [भैरव]

सार हिं श्रीवल्लभ-पद गहु रे!
श्रीविठ्ठलनाथ प्रगट पुरुषोत्तम पल-पल छिनु-छिनु नाम मुख लहु रे॥
श्रीगिरिधर, गोविंद करुणानिधि, श्रीबालकृष्ण-चरण चित देहु रे।
श्रीगोकुलनाथ अनाथ के बंधु श्रीरघुपति जदुपति-जस कहु रे॥
श्रीघनस्याम सुखधाम जग-जीवन मन, वच, क्रम एही चाह चहु रे।
नहिं कछु और तत्व त्रिभुवन में 'कुंभनदास' शरणागत रहु रे॥

४०१   (भैरव)

तुम-बिनु को ऐसी कृपा करै?
लेत सरन ततछिन करुणानिधि त्रिविध संताप हरै॥
सुफल कियौ मेरौ जनमु महाप्रभु! प्रभुता कहि न परै।
पूरन ब्रह्म कृपा- कटाच्छ तें भव कों 'कुंभन' तरै॥

❀

इति प्रकीर्ण-पद

卐

'कुंभनदास' कृत पद-संग्रह

समाप्त

' कुंभनदास '

★

वर्षोत्सव

❊

[सरल भावार्थ]

मंगलाचरण—

१

श्रीगोवर्द्धनधर श्रीकृष्ण की जय है। वृष्टि को दूर कर व्रज के कष्टहारी, इन्द्रमान-भंगकारी प्रभु की जय है।

विद्युत समान पीत अम्बर धारी, कोमल शरीर से सजल मेघ-कान्तिहारी और करकमल से अधर पर वेणु धर संगीत के द्वारा व्रज-युवतियों के चित्त चुराने वाले की जय है।

वृन्दावन व्रजभूमि में वंदनीय चरणों से विचरण कर यमुना-तीर विहार करने वाले नन्दगोप-कुमार की जय है। ' कुंभ-नदास ' नमन करता है, प्रभो! वह आपकी शरण में है।

जन्मसमय (बधाई)—

२

श्रीनन्दराय के सुत का प्राकट्य हुआ है। सब व्रज में चलो, वहां मंगल हो रहा है। जन्म के समाचार से ही जगत का अज्ञान अन्धकार मिट गया और त्रिविध ताप नष्ट हो गया।

महोत्सव में नवनीत, दूध दही हरदी तेल उछाले जा रहे हैं। गोपियां आतुर होकर नदी-सी उमड़ी चली आ रही हैं। गिरिवर-धरण के प्राकट्य के समान आनन्द तो कभी नहीं हुआ।

३

सब व्रज में गोकुलचन्द्र के प्राकट्य से आनन्द हो गया। श्रीयशोदा और बाबा नंद के भाग्य धन्य हैं। भाद्र, कृष्ण पक्ष, अष्टमी अर्धरात्रि, रोहिणी नक्षत्र, बुधवार को प्रभु के दर्शन करते ही सर्वत्र हर्ष-कोलाहल होने लगा। गोपी ग्वाल, दूध दही के माट, अनेक प्रकार की भेंट लेकर नाचते गाते नन्दराय के द्वार पर आए, उन्हें पकड़ कर नाचने गाने और वाजे बजाने लगे।

व्रज में 'जय जय' चिरंजीव हो, इस प्रकार शब्दों का घोष होने लगा, याचकों को दान मिलने लगा। सभी का सत्कार होने लगा। नंद यशोदा फूले नहीं समाते। कमलनयन को गोद में लेकर श्रीयशोदा हर्षित हो उठीं। यमुना, गिरिराज, वृन्दावन, व्रज सभी हर्षोत्फुल्ल हो उठे।

श्रीकीर्तिजू और वृषभानुजी युगल-जोडी देखकर प्रसन्न हो गये। 'कुंभनदास' के जीवन राधानंदकिशोर की जय हो-ये जोडी चिरंजीवी हो।

पलना—

४

श्रीगिरिधरलाल पालने झूल रहे हैं। जननी यशोदा मुख कमल निरखती हुई उन्हें झुला रही हैं। लोरियां (बाललीला) गाती हुई वे प्रसन्न होकर हाथ से ताल देती जाती हैं। बड़-भागिनी रानी प्रफुल्लित होकर लाला पर मुक्ता-माला न्योछावर कर रही हैं।

५

रत्न-खचित सुंदर पालना में गिरिधरलाल झूल रहे हैं। हर्षित होकर यशोदा गुण गा कर ताल देती जाती हैं, कभी

गुलगुली चला कर हरि को हँसाती हैं, कभी चुम्बन ले लेती हैं। इससे नंद-नंदन किलक उठते हैं। मैया उन्हें अंगुली पकड़ कर चलना सिखाती हैं।

छठी—

६

आज जसुमति-सुत की छठी है। सखियो! चलो बधाई देने चलें। नये भूषण वस्त्र पहिन कर मंगल वस्तुऐं ले चलो। नंदरानी के पुत्र हुआ है—विधाता ने कैसी सुन्दर बात की है, पूर्व पुण्यों का साक्षात् फल प्रगट हुआ है। कन्हैया को देखने से आँखें तृप्त नहीं होती ब्रज भर में सुख ही सुख दीखता है, घर-घर मंगल हो रहा है।

हम तो यही चाहती हैं—नंद-सुत गोकुल में 'जुग जुग राज करो'। अब स्वकीय जनों के मनोरथ पूर्ण हो गये, वे यश गान करके जियेंगे। जननी यशोदा बाल प्रभु को निरख कर अत्यन्त प्रसन्न हो रही हैं।

राधाष्टमी (बधाई)—

७

शोभा स्वरूप श्रीराधा के प्राकट्य से वृन्दावन और गोकुल की गलियों में सुख की लता लहलहा उठी है। पद-पद पर गोवर्धन पर प्राकट्य के संकेत है, दर्शन कर नयी-नयी उपमा उपजती है। श्रीगिरिधर भूतल पर पधारेंगें, सो लीला के लिये इनका पहिले ही जन्म हो गया है।

८

रूप-निधान नागरी श्रीराधा का प्राकट्य हुआ है। दर्शन कर ब्रज-वनिताएँ प्रसन्न होती हैं। उनकी कोई उपमा ही नहीं

है। कवियों ने जो-जो उपमाएँ दीं वे सब समाप्त हो गई। यह तो गिरिधर की सहज समान जोडी है, इसकी क्या उपमा ?

९

माई ! तुम यह सुख देखो—आज वृषभान-लली की बरस-गांठ बड़े भाग्य से आई है। जन्म का दिन सुखदायक होता है। कीर्तिरानी ने बड़े पुण्यों से यह निधि पाई है, ब्रज में प्रभु की लीला से आनन्द-लता बढ़ने लगी है। 'कुंभनदास' की जीवन श्रीराधा यशोदा-नंदन को भी सुख देने के लिये प्रगट हुई हैं।

श्याम-सगाई—

१०

श्रीवृषभानुजी के घर नन्दरायजी के स्वागत का और सगाई का वर्णन है।

दान-प्रसंग—

११

गोपीप्रति प्रभुवचन—

"गुजरिया ! तू हमारा दान दे। नित्य ही यहाँ से तू चोरी से गोरस बेच आती है, आज अचानक ही भेंट हो गई। तू बड़े गोप की बेटी है, इतनी क्यों सतराती है ? अब कैसे छूटेगी ?" ऐसा कह कर गोवर्धनधर ने रोकने के लिये अपने हाथ में उसकी ओढ़नी लपेट ली।

१२

भैया ग्वालो ! आज उस वन में चलना है, जहां होकर गोपियां दही बेचने जाती हैं। वहीं छीन २ कर सब दही खाना है। उस वन में घास बहुत है—गायें वहीं चरेंगी। कुंभनदास (मुझ) को गिरिधर ने कहा है कि आज वहीं राधिका को अनुराग में रंगना है।

१३

"आज तो मैं तेरा दही चख कर देखूंगा। मोल क्या है? और इसे कहां वेचेगी? सच सच वता दे। जो मूल्य तू कहेगी वही दूंगा-ये सखा साक्षी हैं। तुझे विश्वास न हो तो यह मोती की माला लेकर रख ले।"

ऐसा कहकर दाम देने को उसे घर की ओर ले गए, मार्ग में कटाक्ष द्वारा प्रभुने अपना अभिप्राय जताया तब उसने तत्क्षण उनको सर्वस्व समर्पण कर दिया।

१४

"रसिकनी! तू दान दिये विना ही कैसे जा रही है, दान दे। ग्वालिनी! मेरी वात सुन, देख दूध-दही के पीने से सब ग्वाल तृप्त हो जायंगे।

तेरे मीन जैसे चंचल नेत्र और तन पर सुन्दर वस्त्र हैं। नूपुर रुनझुन करते हैं, मोतियों से मांग भरी है, तू पूर्ण युवती है।

मुख से वोल दे, घूंघट पट खोल दे"। यह सुन कर गोपी मन में मुसकाती हुई आंचल संभालने लगी। 'कृपा कर मुझे कंचन कलश का रस दो।' यह सुनकर उसने कृष्ण को दान दे दिया। श्यामसुन्दर ने प्रेम से दधि का स्वाद लिया।

प्रभुप्रति गोपीवचन—

१५

लालन! मुझे जाने दो, आंचल छोड दो, देखो वहुत देर हो रही है? नंदकुमार! वैसे ही मैं घर से वड़ी देर से निकल पाई हूं। तुम्हारे लिये कल भली भांति दही जमाकर जल्दी ही ले आऊंगी। गिरिधर! तुम यहीं वैठे हुए मिलना।

१६

श्यामसुन्दर ! तुम इस मार्ग से किसी को भी चलने नहीं देते, इस घाटी से ज्योंही निकले, तुम मार्ग रोक लेते हो। नंदकुमार ! हार तोड देना, अंचल फाडना, घूंघट खोल कर मांग पटियां देखना, बांह मरोड देना, दही की चटियां फोडना क्या यह सब ठीक है ? यह तो बताओ तुमने कब कब दान लिया है-नई बातों का ठाट क्यों जमा रक्खा है ? अच्छा ! गिरिधर ! हम पैरों पडती हैं-तुम तो हमारी दशा जानते ही हो, जाने दो।

गोपीप्रति गोपीवचन—

१७

यहां तो एक ही गांव का रहना है, सखी ! कहां तक बचें। श्यामसुन्दर प्रतिदिन एक क्षण को भी तो दूर नहीं रहते। इसी घाटी से सब का आना जाना होता है, और यहीं अपनी सखा-मण्डली के साथ नंदनंदन आकर खेलते हैं। अरे ! कभी दहेंडी फोड देना, कभी दही ढोल देना और कभी बांह पकड कर कुंज की ओर ले जाना—यह दशा किससे कही जाय ? चित्त में लोक-लज्जा के भय और संकोच से कह भी तो नहीं सकती है।

तुम्हें अच्छी तरह जान लिया—तुम गिरिधरलाल जो ठहरे ?

१८

"अरी गोपियो ! गोरस का दान लेना ही हमारा काम है। हम तीनों लोकों के दान लेने वाले है, चारों युगों में हमारा राज्य है। बहुत दिनों तक दान दिये बिना ही तू अछूती भाग जाती रही है ?" प्रभु गोवर्द्धनधर वृन्दावन में दान लेने के लिये इस प्रकार कहते हैं।

गोपीप्रति गोपीवचन—

१९

अरी! यह है कौन? इसे हम गोवर्द्धन की तरहटी में दान नहीं देंगी। यह कान्हा हाट, गाम, खेत, मढ़ैया सभी ठिकाने संग लगा डोलता है। बाप तो राजा कंस को कर देता है, और उसका यह सपूत साथियों को लेकर अकडता फिरता है। अरे गिरिधर! तुम सीधे अपने पेडे २ क्यों नहीं चले जाते?

२०

माई! मदन गोपाल तो बड़ा हठी है। कितनी देर हो गई वह अभी तक मार्ग रोके खडा है। कहता है—सुन्दरि! वृषभान की दुहाई है, दान लिये विना जाने नहीं दूंगा, वृथा तुम झगडा बढ़ा रही हो, हमारा दान चुका दो और चली जाओ।

इस पर गोपी बोली—मोहन! तुम जब देखो तब 'दान दान' क्या कहते रहते हो? यह कैसी जबर्दस्ती है? यह सुन कर गोवर्द्धनधर ने मन्द हास्य द्वारा उसका मन हर लिया।

२१

सखी! नंद के ढोटा ने ज्योंही मुझ से कुछ अटपटा दान मांगा, मैं मथनियां उतार कर हाथ जोड कर खड़ी हो गई। उसने मेरा आंचल खींचा तब मुझे बहुत डर लगा। इसी झगड़े २ में मेरा दही बेचने का समय निकल गया।

२२

'व्रजराज का लाडिला बेटा दान ले रहा है। सखियो! सिरपर दही का माट धर कर उस मार्ग से चलो। देखो वह संकेत करत रहा है'। ऐसा कह कर ग्वालिनी ज्योंही सांकरी खोर के पास पहुंची वहां भी श्याम को बात करते हुए खडा पाया।

मुख मोड कर गोपी ज्यों ही हँसी--श्याम ने अंचल पकड लिया। तब बोली--अंचल छोड दो तुम्हें दान देती हूं।

कृष्ण बोले–तू ग्वालिनी किस गाम का है, मिस बना कर रोज निकल जाती है? उत्तर मिला–हम सब वृषभान के पुर में वसती हैं। तुम श्यामसुन्दर हो तो लो, अपने ग्वाल बालों के साथ खूब दूध दही पी लो।

दानलीला—

२३

कृष्ण और गोपियों के सम्वाद-रूप में :—

गोकुल की बालाए विविध भूषण और शृंगार धारण कर नित्य दही बेचने जाती हैं। इनकी परम शोभा कही नहीं जा सकती, एक से एक बढ़कर सुन्दर हैं ऐसा लगता है मानों कुंज अनेक प्रकार के पुष्पों से फूला हो ॥ १ ॥

प्रातः नंदलाल ने उठकर अपनें सखाओं को बुलाया। वे दान की बात सुनते ही दौड आए। वे सब नंदलाल के साथ यमुना के किनारे एक कुंज में जाकर बैठ गए ॥ २ ॥

आती हुई गोपबालाओं ने श्याम को मार्ग में खडा देखा तब इकट्ठी हो गई और विचार करने लगी कि–अब क्या करना चाहिये? यहां तो नन्द का ढ़ोटा रास्ता रोक कर खडा है यह छीन कर दही खा जायगा–चलो दूसरी तरफ चलें ॥ ३ ॥

उन सब को दूसरी ओर जाते देख गोपबालों के संग श्याम ने दौड कर उन्हें वहां रोक लिया, बोले–अब कहां जाओगी? नंद की दुहाई है ज्यादा चतुराई छोड दो–हम तुम्हारा मान रक्खेंगे ॥ ४ ॥

व्रजनागरी बोली—

नन्दलाल ! तुमने कबसे दान लेना शुरू किया है, और कबसे दानी कहाने लगे ? हमने तो आज तक नहीं सुना। जाकर यशोदा से पूछ लो ? अरे ! तुम तो देवकी के जाये हो और गोकुल में शरण ली है, यहीं तुम सब गोपग्वालों की जूठन खाकर बड़े हुए हो—और अब दान मांगते लाज नहीं आती ? ॥५॥

नंदलाल बोले—

अरी गोपियो ! तुम्हें अपने यौवन का गर्व है। संभालकर बोलना नहीं आता ? दूध-दही के पीछे गाली-गलौज करती हो ? नंद की दुहाई है-सब को लूट लूंगा, वस्त्र छुड़ा लूंगा, और हार-बार सब तोड़ डालूंगा ? ॥ ६ ॥

व्रजनागरी बोली—

'लूट' 'लूट' क्या मचा रक्खी है ? यहाँ कोई तुम्हारी चेरी नहीं है। कब तो दान लिया और कब दुहाई फेरी ? तुम्हें यह मालुम नहीं कंस का राज्य है-संभलकर स्त्रियों से बोलो। यदि नंदरानी ने सुन पाया तो तुम्हारी इस करतूत से उन्हें दुःख होगा ॥ ७ ॥

नंदलाल बोले—

देखो ! तुम गँवार ग्वालिनी हो। हम जैसों को क्या समझाती हो ? अरे ! शिव, ब्रह्मा, सनकादि ऋषि भी हमारा पार नहीं पाते ? भक्तों की रक्षा और दुष्टों का संहार यही तो हमारा काम है। थोड़े दिनों में केश पकडकर कंस को मारकर धरती का भार उतार दूंगा ॥ ८ ॥

व्रजनागरी बोली—

रहो ! रहो ! माता देवकी बांधी गई तब आप कहां गये थे ? रातों-रात मथुरा छोड़कर गोकुल में आकर शरण लेनेवाले आपही

है न ? अपनी बहुत बड़ाई क्या करते हो, मन में सोचो तो—वन में जूठे बेर फल खा—खाकर बड़े हुए और अब कुमार बन गये हो ॥९॥

नंदलाल बोले—

तुम्हें मालुम नहीं ? नंदरानी यशोदा ने तप करके हम से वर मांगा था सो—वेद वचन को सत्य करने, उन्हें प्रसन्न करने मैं गोकुल आकर रहा हूं। बावरी ! तुम्हें क्या मालुम कि— मैं वही त्रिभुवन-नाथ हूं जो— जल—थल और घट—घट में समाया हुआ है ॥१०॥

व्रजनागरी बोलीं—

अरे कान्ह ! जब तुम ऐसे हो तो घर—घर चोरी क्यों करते हो ? याद नहीं जब मुझ से झगड़ बैठे थे, तब मैंने तुम्हारा पीताम्बर छुड़ा लिया था ? थोड़े से दही के नुकसान पर माता ने तुम्हें बांध दिया था ?, वे हमीं तो थीं जो— जाकर छुड़ाया था, और अब बड़ी २ बातें बनाते हो ? ॥११॥

नंदलाल बोले—

तुम्हें खबर नहीं ? विचारे नल—कूवर जो— मुनि की शाप से वृक्ष बनकर खड़े थे, उनका उद्धार करने को ही हम ऊखल में बंध गए थे। राधे ! जरा चीर—हरण की बात सोचो—जब यमुना में ठंड से ठिठुर रही थीं और हा ! हा ! खाकर वस्त्र हम से मांगे थे ? ॥१२॥

व्रजनागरी बोलीं—

कान्ह ? तुम बड़े ढीठ हो गए हो, ऐसा कठोर क्या बोलना ? वन में गाएं चराते, ग्वालों के संग इधर—उधर दौड़ते फिरते हो ? भूल गए जब बीन २ कर इस उस की छाक खाई थी, और अब अकड़ते फिरते हो, अंट—संट बोलते हो ? ॥१३॥

नन्दलाल बोले—

पृथ्वी पर असुरों की प्रबलता हो गई, ऋषि-मुनि जप—तप

छोड़कर भाग गए, गायों का नाश हो गया–सो हमें देह धर कर आना पड़ा है ? देखो ! ये संग के ग्वाल हैं सो–सभी स्वर्ग के देवता हैं। हमने इन्द्र का भी गर्व हर लिया, और अब तुम्हारी खुशामद कर रहे हैं ॥ १४ ॥

व्रजनागरी बोली—

बस बस ! वन में ही बातें हमें सुना लो ? हम तुम्हें जानती हैं– आप कैसे बलशाली हो ? सांवरे ? आपकी ऐसी शक्ति है तो वसुदेव के फंद क्यों न काट डाले ? सात बालकों को मारने वाले कंस को क्यों न मार डाला ? ॥ १५ ॥

नन्दलाल बोले—

केसी, कंस इन सब दुष्टों को मारकर वसुदेव के बंध छुडाना है। उग्रसेन को राजगद्दी पर बैठाकर चंवर ढुलवाना है। मल्ल, कुवलयापीड को पछाडकर जब धनुष तोडूंगा– तब देखना– चतुर्दश भुवन में हमारे प्रताप यश को देवता गावेंगे ॥ १६ ॥

व्रजनागरी बोली—

कान्ह ! अपनी अधिक बड़ाई रहने दो ? मैं खूब जानती हूं। तुम्हारी जात-पांत कुल–प्रतिष्ठा हमसे कुछ छिपी नहीं है ? लड़कों के साथ खाते पीते ग्वाल कहाने लगे हो ? हम हैं व्रजबाला– सो देखेंगीं ? हमारा दही तुम कैसे खाते हो ? ॥ १७ ॥

नन्दलाल बोले—

हां ! दहेड़ी तो छुड़ा लूंगा– कंठकी मुक्तावली टोड़ फेकूंगा ? पैर पर पैर धर के ये तुम्हारी ओढ़नी भी फाड फेकूंगा ? समझी ? देखो–तुम तो वृषभान की ग्वालिनी हो और हम ? हम हैं नन्द के कुमार ? सो अब जिसका तुम्हें बल हो उसके पास जाकर पुकारकर देख लो ? ॥ १८ ॥

व्रजनागरी वोली—

हमारी तो जाति अहीर की है, नित्य दही- वेचना हमारा काम है। आज तक दान का नाम सुना नहीं था ? अब दान दे कर नई बात चलावें ? सांवरे! तुम वडे अनवीगे हो जो—वन में हम ग्वालिनियों को रोकते हो ? क्या इसी मुख से और यहीं कदम की छांह में वैठकर दही खाओगे ? वाहरे वाह ! ॥ १९ ॥

नन्दलाल वोले—

ग्वालिनी ? तू तो बड़ी आंखे मटका-मटका कर बातें करती है, सीधे बोलना तो आता ही नही ? हम अनवीगे नहीं हैं हो ? तुम्हीं अनबीगी हो—जो इधर—उधर भटकती फिरती हो ? हमने तो जब से व्रज में जन्म लिया तभी से दान लिया है ? भला, व्रजराज से जाकर भी कह लों, और अपना अभिमान भी दूर करलो ? ॥ २० ॥

व्रजनागरी वोली—

वस, श्याम ? टेढ़ी पाग बांधकर टेढ़ी लकुट लेकर टेढ़े खड़े हो गये और स्त्रियों को रोककर लगे दान मांगने ? अपने घर के बड़े सपूत हो ? जिनका सहारा लेकर नाथ बने फिरते हो ? सो—ये सब सखा भाग जायगें—समय पर कोई भी साथ नहीं देगा ? समझे ? ॥ २१ ॥

नन्दलाल वोले—

भला—बता-तो नागरी ? ऐसा राजा कौन है जो हम पर हाथ उठावै ? अरे ! हमारे तो बंदीजन और वेद द्वार पर खडे २ यश गाते-हैं ? ब्रह्मा के रूप से उत्पत्ति, रुद्र—रूप से संहार और विष्णु रूप से रक्षा करनेवाला मैं ही तो नन्दकुमार हूं ॥ २२ ॥

व्रजनागरी बोली :—

हां, हां ! तुम ऐसे ही ब्रह्म हो जो–हमारे छींके ढूंढते फिरते हो ? घर–घर चुराकर माखन खाकर मस्त होते हो और स्त्रियों के साथ छेड़खानी करते हो ? ऐसे ही ब्रह्म हो न ? सांवरे ! तुम्हें दोष नहीं है, अंधियारी रात्रि में जो–आपका जन्म हुआ है ? वन में आप जरूर ब्रह्म कहलाते हो तभी माता–पिता को छोड़ बैठे हो ? ॥२३॥

नन्दलाल बोले :—

स्वर्ग, मर्त्य, पाताल सभी लोकों में मेरी ठकुराई है। मैं वृन्दावन-चंद्र हूं, सभी वस्तु में समाया हुआ हूं, और सांवरी ! जो–तू हमारा नाम पूछती है ? सो गज से लेकर पिपीलिका (चींटी) तक सभी तो मेरे रूप नाम हैं-कितने गिनाऊं ? ॥२४॥

व्रजनागरी बोली :—

लालन ! दही खाना हो तो सीधे मांगो ! इस तरह लड़ाई झगड़ा क्या करना ? आप बड़े बलवंत हो तो–मथुरा जाकर कंस मारो-और फिर आकर हमारा दही खाना ॥२५॥

नन्दलाल बोले :—

देखो ! राधानागरी ! मुझे मथुरा जाकर बहुत से काम करना है। वहाँ जाने पर फिर यहां नहीं आसकूंगा ? तुझे तमाशा देखना हो तो देख लेना ? एक बार जाने पर फिर नहीं आऊंगा ? ॥२६॥

व्रजनागरी बोली :—

श्याम ! मथुरा जाने की बात मत कहो। आप मथुरा क्यों जाओ ? हम और तुम सब सदा पास में ही रहें। यहीं गोकुल में आप नित्य विहार करो। दही–दूध की क्या परवाह ? आप

नित्य हम से दान मांगो, मांगते २ आपको तो लाज आवेगी–हमें तो अति मान होगा ॥२७॥

नन्दकुमार बोले :—

तुम सब अबला और भोली हो। हमारे कृत्य नहीं समझोगी ? मैंने कालीनाग को दूर भेज दिया, दावानल का पान कर लिया, इन्द्र ने क्रुद्ध होकर जब ब्रज–बहाने की ठानी तो गोवर्द्धन उठा कर रक्षा की, और बकासुर मारकर बालक बछडों को बचा लिया था ॥२८॥

कुभनदास कहते हैं :—

श्यामसुन्दर की रसभरी बातें सुनकर–ब्रजबालाएँ प्रसन्न हो गईं और उन्होने दही–दूध सिर से उतारकर सब प्रभु के सन्मुख रख दिया। प्रभु ने ग्वाल–बालों को बांटकर अच्छी प्रकार आरोगा। पहिली प्रीति जानकर श्रीवृषभानु-कुमारी राधा गिरिधर से मिलीं और उन्होने अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया ॥२९॥

ब्रजनागरी बोली :—

प्रभु! तुम त्रिभुवन-पति और हमारे नाथ हो। आपकी जो–इच्छा हो सो करो। आपके गुण, कर्म हमारी समझ में नहीं आते, उन्हें हम कह भी नहीं सकतीं ? शेष हजार मुखों से आपकी स्तुति करते हैं–त्रिपुरारि ध्यान धरते हैं। फिर भला हम अहीरी ब्रजवासिनी भोली सरल बालाएँ आपका क्या पार पावें ? ॥३०॥

कुंभनदास कहते हैं :—

श्रीराधाकृष्ण के दान–प्रसंग का यह वार्तालाप जो– गाकर सुनावै, उनकी लीला का ध्यान करै-उसे मनवाञ्छित फल मिलेंगे और हृदय का ताप शान्त होगा। सुखनिधान श्यामा–श्याम की विराजमान इस जोड़ी के दर्शन कर उनकी बानिक पर 'कुंभनदास' बलि २ जाता है ॥३१॥

दशहरा—

२४

आज दशहरा का शुभ दिन हैं। गिरिधरलाल जवारा धारण कर रहे हैं। भाल पर कुंमकुंम का तिलक शोभित है। माता यशोदा आरती कर मोतियों का हार न्योंछावर करती हैं। इस समय गोवर्धनधर के दर्शन से त्रिभुवन का सुख भी फीका लगता है।

२५

आज विजय-दशमी का दिवस धन्य है। सज-धज कर आए हुए ग्वालवालों के मध्य नंदनंदन की शोभा ही कुछ न्यारी है। श्रीमस्तक पर झीनी रंगभीनी पाग और कस्तूरी का तिलक शोभित हो रहा है। आज श्रीविट्ठलेश्वर विधिपूर्वक शमी वृक्ष का पूजन कररहे है।

रास—

२६

"मोहन मधुर वेणु वजा रहे हैं। सरस संगीत की लय-गति से मन को थोड़ा-सा भी चैन नहीं पड़ता। चलकर प्राण-पति से मिलें अंग २ में काम व्याप्त हो रहा है।" ऐसा कहकर व्रज वनिताऐं सुख-निधान गिरिधर के समीप जा पहुंचीं।

२७

सुजान राधिके! चलो तुम्हारे लिये सुख-निधान कृष्ण ने कालिंदी-तट पर रास रचा है। व्रज-युवतियां नृत्य कर रही हैं, राग-रंग से कुतूहल हो रहा है, रस-भरी मुरली वज रही है।

निकट ही बंसी वट, रमणीय भूमि, त्रिविध मलय-पवन एवं जुही पुष्पों के खिलने से वन शोभित हो रहा है, शरद-पूर्णिमा की चांदिनी छिटकी है।

वस्त्र हैं, नवल आभूषण हैं, कटि में किंकिणी मन्द झनकार कर रही है। दोनों के शृङ्गार ने त्रिभुवन की शोभा चुराली है। तान, बंधान, मधुर वार्तालाप, स्वर आदि सभी बातों की समानता से ऐसा लगता है–मानों विधाता ने बड़े परिश्रम से यही एक सरस जोड़ी बना पाई है। गोवर्धनधर विविध लीला, चेष्टाएँ कर भक्तजनों के मन मोह रहे हैं।

३४

श्रीगिरिवर-धरण रमणीय यमुना पुलिन में, रास में अद्भुत-गति से नृत्य करते हुए शोभित हो रहे हैं। व्रज–वनिताओं के कई यूथ, जिनके गण्ड-मण्डल पर कुण्डल झलमला रहे हैं, स्वरों में केदारा–राग का आलाप कररहे हैं।

दोनों ओर सुशोभित गोपिओं के मध्य में श्यामसुन्दर कंचनमणि में खचित नीलमणि से दीप्त हो रहे हैं। नृत्य–गति की शीघ्रता से कटि-बसन कुछ शिथिल–से हो रहे हैं जिन्हें वे अपने हाथ से साधे हुए हैं। सकल कलाप्रवीण गिरिवरधारी के स्वर-जाति का आलाप लेते समय प्रियतमा अंग–प्रत्यंग से शोभित हो जाती हैं।

३५

रास–रंग में नागरी, गोवर्धनधर के साथ अति प्रसन्न होकर उरप–तिरप तान ले रही हैं। 'सरिगम' आदि सप्त स्वरों के भेद, आलाप, लाग, दाट के साथ स्पष्टरूप में निनादित हो रहे हैं।

प्रभु! प्रसादी ताम्बूल देते हैं और जहां सम आती है वहां गति लेते हैं, 'गिडि–गिडि–थुंग थुंग' मृदंग के बोल अलग मालूम हो रहे हैं। इस प्रकार रास–विलास में श्रीराधा और नंदनंदन दोनों रस–सौभाग्य का आनन्द लेरहे हैं, उनकी बलिहारी है।

३६

रूपगुण-सम्पन्न नागरी श्रीराधे! चलो श्यामसुंदर ने यमुना-तीर पर रमणीय रास रचाया है। सोलहों शृंगार कर और सुवासित दच्छिन चीर (पटोला) पहिरकर प्रसन्नता से चलो।

श्याम के अधर पर वंशी विराजमान है, और उनके प्राण तुम में बसे हैं। इस समय उन्हें और कुछ अच्छा नहीं लगता, सब काम छोड़ जलमें मीन के समान उनसे मिलकर सुख प्राप्त करो।

प्रियतम की कटि में पीत पट, और मस्तक पर मुकुट मण्डित हैं। वेणु-रव का अनुकरण करते हुए मत्त भ्रमर पुष्पों पर मंडरा रहे हैं, कोकिला शुक बोल रहे हैं। सुनो तो श्रीगिरिवर-धरण सप्तस्वर-संमिश्रित केदारा राग में गान कररहे हैं।

३७

रास-मंडल में गोपाल के संग प्रमुदित व्रज-युवतियां नृत्य कर रही ह। श्यामसुन्दर तमाल वृक्ष और वृषभानु-दुलारी कनक लता-सी रम्य लगती हैं।

नृत्य में कटि, ग्रीवा हस्त आदि अंग चंचल हो रहे हैं, और किंकिणी कड़ा आदि आभूषण झनकार कररहे हैं। राग तान-सहित वेणु-नाद गूंज रहा है। गति-विशेष से श्रमकण झलक उठे हैं।

इस प्रकार श्रीगिरिधरलाल नृत्य में व्रज-वनिताओं के मन को मुग्ध कररहे हैं।

३८

नवरंग दूलह श्रीगोवर्धनधर ने रास की रचना की है। उनके आसपास व्रज-युवतियां सुशोभित हैं और मधुर केदार राग की तान अलापी जा रही है। ललिता आदिक सखियां मृदंग, ढोल,

प्रफुल्लित नव निकुंज, त्रिविध पवन, शरद–रात्रि में विमल चन्द्रमा की चांदनी अनोखी दीखती है।

मध्यनायक श्रीकृष्ण और गौरस्वरूप स्वामिनीजी गलबाहियाँ देकर नांच रहे हैं–सो नीलमेघ और सौदामिनी की प्रतीति होती है। संगीत के आलाप और नृत्य–भेद दिखाकर श्रीराधा अपना अभिनय बताती हैं।

इस अद्भुत रस को देखकर कामदेव अभिमान छोड देता है। मोहन अधर पर धरी मुरली में कलनाद गुंजन करते हैं। इस रसमय प्रसंग में श्रीस्वामिनी के संग क्रीडा करते हुए गिरिवरधरण पर 'कुंभनदास' तन, मन, धन न्योंछावर कर बलि २ जाता है।

४६

रास–विलास में श्याम के संग श्यामा अत्यन्त शोभित हो रही हैं। दोनों स्वरूप मिलकर नायिकाओं के साथ जो–सुगंध नृत्य कररहे हैं, सो–घनदामिनी जैसे प्रतीत होते हैं।

वेणु के मधुर कूजन के साथ उच्चारित संगीत की स्वर–लहरी और 'तत–थेई २' बोल रास में रंग जमा रहे हैं। गिरिधर के अंग–प्रत्यंग से मिली हुई व्रजबालाएँ मणिमाला–सी शोभित हो रस की कनी बरसा रही हैं।

४७

गोपाल सुंदर गान कर रहे हैं। कालिन्दी के तीर सरस रास–रंग हो रहा है। श्याम और व्रज–रमणियां नीलमणि और सुवर्णमणि अथवा तमाल और सोनजुही की वेल के समान रमणीय लगती हैं। उरप–तिरप, 'तत–थेई २' शब्द ताल से पूर्ण संगीत चालू है। नक्षत्रों के मध्य में चंद्र के समान युवती–समूह में गोविन्द की शोभा प्रकट हो रही है। गोवर्धनधर सौन्दर्य की सीमा विदित हो रहे हैं।

४८

धनतेरस—

माई ! आज धनतेरस के दिन नंदरानी मंगल गाती हुई धन धो रही हैं। वे परमधन श्रीगिरिधर गोपाल का शृंगार करती हैं और उन्हें देख देखकर अपना हृदय शीतल करती हैं।

४९

गोक्रीडा (कान जगाई)—

कान जगाई के समय 'धौरी' गाय खेलने को आकुल हो रही है। ज्योंही उसने नंदनंदन की पुकार सुनी चौकन्नी होकर [डाढमेल* कर] सन्मुख आ खड़ी होगई। बड़े २ गोप जिसे खिलाने में थक गए उसको इतने छोटे बालक का खिलालेना एक आश्चर्य की कहानी-सा है। प्रतिवर्ष ऐसे शुभ मंगल की कामना कर गोप ग्वाल गारहे हैं, गायें इधर-उधर कूदती नाचती हैं। नंदकुमार प्रेम-पूर्वक अंगोछी से गायों का मुख झाररहे हैं। 'जय-जय' शब्दोच्चार हो रहा है। कुंभनदास कहते हैं—श्रीगिरिधर की राजधानी में सदा ऐसी ही सुख समृद्धि वसती रहो।

५०

श्यामसुन्दर गाय खिला रहे हैं। ग्वाल कूक-कूक कर 'ही ही' कह कर उन्हें बुला रहे हैं, वेणु और सींग बज रहे हैं। सभी धेनुओं का शृंगार किया गया है, उनकी सजावट अनोखी है। वे गायें बिचककर लौट आती हैं, पूंछ उठाकर दौड पड़ती है, कान ऊंचेकर चकित-सी खड़ी हो जाती हैं। उनके पैरों में पेंजनी पड़ी हैं, मँहदी से पैर रंगे गये हैं, पीठ और पुट्ठों पर सोने के थापे लगाये गये हैं। इस प्रकार जैसे उल्लास से खेल प्रारंभ हुआ उसी प्रकार गोक्रीडा हो रही है।

* गाय के खेलने के समय उसके दौड कर आने को 'डाढमेल' कहते हैं।

५१

दीपमालिका—

पंक्तिबद्ध प्रज्वलित इन दीपकों की सुंदरता तो देखो, अँधियारी निशा में वे आकाश में छिटके हुए तारा-गण से प्रतीत होते हैं। नन्दराय ने अगणित वतियां लगाकर इन्हें अद्भुत ढंग से सजाया है, कपूर घी आदि सुगंधित द्रव्य से उन्हें भरा है। व्रज में घर-घर परम आनन्द और कुतूहल हो रहा है। इसी समय गिरिधर सब को सुखदायी गो-क्रीडा कररहे हैं।

५२

गोवर्द्धन-पूजा—

गोपाल गोवर्धन पूजने चले। उनकी मंद गति को देखकर मत्त गजेन्द्र लज्जित हो जाता है। व्रज-वनिताओं ने कई प्रकार के पक्वान्न बनाकर थालों में सजाये हैं। अंग पर उन्होंने रंग विरंगे चमकीले बहुमूल्य आभूषण और वस्त्र पहिन रक्खे हैं, मनोहर गीत गाती हुई वे चली जा रहीं हैं। वेणु के स्वर के साथ भांति २ के बाजे बजरहे हैं, सुर ताल की जमावट है। गोप, ध्वजा-पताका, छत्र-चमर लियेहुए कोलाहल करते जा रहे हैं। कृष्ण के चारों ओर बालकों की टोली कमल पर मधुकर-माला सी शोभित हो रही है। इस प्रकार गोवर्द्धन-धर लाल अपनी सुषुमा से त्रिभुवन को मुग्ध कररहे हैं।

५३

जिस समय मदनगोपाल गोवर्द्धन-पूजा करने लगे, ताल बज उठे, मृदंग ठनक उठे, शंख-घोष गूंज उठा और मुरली कूज उठी। मस्तक पर कुंकुम का तिलक लगाए, नवीन आभूषण वस्त्रों से सजे-सजाए गोप-गोपियों के ठट्ठ जमा हो गए। सुवर्ण मणियों के बीच नीलमणि के समान व्रज-ललनाओं में श्यामसुन्दर रमणीय

लगते थे। हर्ष–मग्न होकर गोप ग्वाल 'धोरी हो कारी हो' इन नामों से गायों को बुलाने लगे। उन्होंने लाल–पीले टिपारा सिर पर धारण किये थे। मधुर वाणी से वे गायों को बुलाते और खिलाने लगे। गोप ग्वाल परस्पर हरदी, दूध, दधि अक्षत छिड़कते थे, छोटे पैर पडते थे, वडे आशीर्वाद देते थे। 'प्रिय गोवर्धन–धर! आप कई युगों तक गोकुल–राज करो' ऐसी शुभ कामनाएँ सब की प्रगट होने लगीं।

५४

परम उदार, गोप–वृन्द के रक्षक मोहन की गोवर्धन-पूजन के समय कुछ अपार शोभा हो गई। षट्रस व्यंजन उपहार और भोग रूप में रक्खे जारहे हैं, सभी गोप ग्वाल पूजा करके गिरि की प्रदक्षिणा कर रहे हैं। कंचनवर्णी गोपिकाएँ पर्वत के चारों ओर विद्यमान हैं सो ऐसा लगता है मानों–उसने सुवर्ण का हार पहिन रक्खा है। प्रभु की परम रमणीय छवि देखकर कामदेव भी ठिठककर रह गया।

५५

व्रजके राजा नंदजी गोवर्द्धन–पूजा कर रहे हैं। बलभद्र और मोहन उनके आगे गोप–वृन्द सब समीप खड़े है। 'आज दीपावली का महोत्सव गोवर्धन-पूजा है, सभी को बुला लो' ऐसा आदेश दे रहे हैं, सभी ने अपने २ मनभाये वस्त्र अलंकार पहिने हैं। दूध दही के पात्र भरे रक्खे हैं, मीठी खीर भी अधिक मात्रा में बनाई गई है। इसी समय शिखर पर विराजमान होकर, भोजन करते हुए सब को गोपाल के दर्शन होते हैं। सकल व्रजवासी आनन्द–मग्न होकर अपनी २ गायें खिला रहे हैं। इस प्रकार स्वकीय भक्तों का मनोरथ पूर्ण करते हुए श्रीगिरिधर ने गिरि गोवर्धन की पूजा की।

५६

गोवर्द्धनोद्धारण (इन्द्र-मानभंग)—

नन्दलाल ने व्रज की रक्षा के लिये गोवर्धन पर्वत को धारण कर लिया। इन्द्र ने अपनी पूजा का भंग देखकर क्रोधित हो प्रलय मचा देने के लिये मेघों को भेजा, सात दिन तक लगातार घोर वर्षा होती रही। पर श्रीकृष्ण ने शरणागत गोपी, गाय, ग्वाल बाल, बछड़ों की आत्मबल से ही रक्षा कर इन्द्र का अभिमान चूर कर दिया। अपना अधःपात होते देख इन्द्र ने गर्व का परित्याग कर दिया और अनन्यभाव से गोवर्द्धन-धरण के चरणों में आकर पड़ा।

५७

प्रिय गोपाललाल समग्र गोकुल का जीवन है। सुन्दर मुखारविन्द के दर्शन मात्र से हृदय स्निग्ध हो जाता है। वह तो गोपी ग्वाल सभी के आंखों का तारा है।

वह रूप की निधि, मनोरथों की सिद्धि है, और प्रेम की विधि का जानकार है। संध्या के समय धेनु-समूह लेकर जब घर आते हैं, कितने प्रिय लगते है? उसी गिरिधर ने तो शरणागत व्रज के परित्राण के लिये कोमल वाम कर पर गोवर्द्धन को सहज ही धारण करलिया था।

५८

इन्द्र-पूजा का भंग होते ही व्रज पर मेघों की काली २ घटाएं उमड़ आई। नंद के सलोने लाला पर इन्द्र ने चढ़ाई-सी कर दी। तब उन्होंनें व्रज रक्षा के लिये पर्वत को नख पर उठाकर गाय, गोप ग्वालों को बचा लिया। वे सब मिलकर प्रभु की इस लीला का गान करने लगे।

५९

श्रीगुसांईजी की बधाई—

आज श्रीवल्लभ के द्वार पर बधाई है। अपनी अवतार-लीला को दिखाने के लिये पूर्ण पुरुषोत्तम का पुनः प्रागट्य हुआ है। सभी दैवी जीवों के भाग्य का उदय और निःसाधन जनों का उद्धार हो गया। प्रभु गोवर्द्धनोद्धरण, श्रीवल्लभाचार्य तथा श्री-विठ्ठलेश, यह तीनों निगमागम में कथित समस्त साधनों के फल-स्वरूप हैं।

६०

गोकुल में घर-घर बधाई हो रही है। श्रीवल्लभ के आत्मज रूप में पृथ्वी पर साक्षात् करुणा की निधि प्रगटी है। दर्शनकर व्रजवनिताओंने मोतियों के चौक पूरे। साक्षात् गोवर्द्धनधर का प्रागट्य देखकर देवोंने पुष्प-वर्षा की। गोपियां आशीष देने लगीं उनके हृदय में आनन्द नहीं समाता। श्रीगोवर्द्धनधर को सुख देने के लिये ही यह स्वरूप प्रगट हुआ है।

६१

बाल गोपाल के रूप में आजश्रीविठ्ठलेश प्रगटे हैं। यह कलियुग के निःसाधन जीवों के उद्धारक, सत्पुरुषों के प्रतिपालक, तैलंग द्विज-कुल के तिलक एवं रसस्वरूप श्रीवल्लभ-वंश के अलंकार हैं। व्रज ललनाओं के आनन्दरूप श्रीगोवर्द्धनधर ही इस स्वरूप में प्रगट हुए है।

६२

आज फिर श्रीवल्लभ ने पुत्र रूप से प्रगट होकर अत्यन्त गूढ भगवत्सेवा रस का विस्तार किया है। आपने अपने दर्शन से स्वकीय जनों को पवित्र कर दिया—जन्मोत्सव के आनंद से घर-घर वंदन वार बंध गए। वंदी और चारण हर्षित होकर श्रीगिरि-धर की महिमा और गुण गाने लगे।

६३

अरे मन ! जो तुझे परमार्थ की चाहना है तो श्रीविट्ठलेश के चरण कमल का भजन कर। 'मार्ग' नाम से जितने भी पंथ चलते हैं–वे सब पाखंड हैं–काम के साधन हैं। सभी देवी–देवता को स्वार्थ से भजते हैं, हरि को नहीं भजते। श्रीभागवत और भजन की महिमा आपने बताई सो ही यथार्थ है। यह मार्ग तीनों लोकों में प्रसिद्ध है–इससे अनेक जीव कृतार्थ हुए हैं। तूने इतने दिन शरण आए बिना वृथा ही खोए–अब भी चेत।

६४

श्रीविठ्ठल प्रभुचरण के प्रताप से अब मुझे बाधा कष्ट नहीं रहा। मस्तक पर श्रीहस्त के रखने से सब अपराध नष्ट हो गये हैं। पृथ्वी पर महापतितों के उद्धारार्थ ही आपका प्राकट्य है।

'कुंभनदास' तू अब आनंद में मग्न रह–तुझे डर नहीं–सब शत्रुओं को भी तूने जीत लिया है।

६५

वसन्त–धमार—

शुभ दिन, घड़ी मुहूर्त श्रीपञ्चमी (माघ शु. ५) के दिन श्रीराधिका ब्रजराज को बधाई है। वृन्दावन कुंज में श्यामा के साथ श्याम विहार कर रहे हैं, गुलाल उड रही और रसभरी वेणु बज रही है, कृष्ण गा रहे है। कंचनवल्ली के समान राधा श्यामतमाल से मिलकर विनोद कर रही हैं। प्रभु गोवर्द्धन और स्वामिनी दोनों स्वरूप मिलकर परस्पर प्रमुदित हो रहे हैं।

६६

श्याम के रमणीय शरीर पर चन्दन के छींटे कैसे सुन्दर लगते हैं। सुरंग अबीर कुमकुमा और केवडा के रज की चित्र-

कारी श्रीअंग पर मंडित है। नंदनंदन की शोभा देख कामदेव भी तन, मन न्यौछावर करता है। ऐसा लगाता है कि- गिरिधरलाल ने भांति २ के रंगरंजित वस्त्रों से भूपित हो व्रजभक्तों के मन को बांधने के लिये नये प्रकार की वेप-रचना की है।

६७

वसन्त ऋतु आई है। चारों ओर वन में वृक्ष पुष्प फूले हैं। कोकिला कूजती है, मधुप गुंजार कररहे हैं। सप्त स्वरों का गान सुनकर प्रत्येक पशु पक्षी के शरीर में उल्लास भर गया है। रसिक जन प्रसन्न होकर परस्पर मिलते हैं–काम सुख का कहीं अन्त दीखता ही नहीं। इस सुहावने समय को देखकर सखी स्वामीनीजी से शीघ्र चलकर नवल कंत गिरिधरलाल से मिलने के लिये प्रार्थना कर रही हैं।

६८

'उस वन में चलिये, जहां शीतल, मंद, सुगंध पवन बह रहा है। वहीं यमुना–तट पर हरि तुम्हारी बाट जोह रहे हैं। चारों ओर मन को हर्षित करने वाले गुल्म कुसमित हो रहे हैं। राधे! श्यामसुन्दर ने तुम्हारी शरीर–कान्ति के समान पीत पट धारण किया है। त्रिविध स्वरों में भ्रमर शुक पिक बोल रहे हैं। प्रभु ताप की शान्ति के लिये अनेक प्रकार के शीतल उपचार कर रहे हैं।'

६९

हरि व्रज–युवतियों के संग फाग खेल रहे हैं। बालकों के कोलाहल से कुछ भी सुनाई नहीं पड़ता। सुगंधित कुमकुमा, अरगजा और चंदन के जल से भरी पिचकारियां एक दूसरे पर प्रसन्न चित्त से चलाई जा रही हैं। खेल में डफ, मृदंग, बांसुरी, किन्नरी आदि बाजों के स्वर में अपनी अधर–धरी मुरली की तान

मिलाकर नन्दनन्दन और भी रस वरसा रहे हैं। खेल की छीना-झपटी में हार टूट पड़ते और वस्त्र फट जाते हैं, कई गिर पड़ते हैं, क्रीडा आनन्द में मग्न होने से किसी को तन की संभार और घड़ी पहर का ध्यान भी नहीं है। इस प्रकार गोवर्द्धन-धर फाग की क्रीडा से सभी व्रज-जनों को आनन्द-मग्न कर रहे हैं।

७०

गिरिवर-धरण वन में वसन्त खेल रहे हैं—उसमें वंदन* अबीर, कुमकुमा आदि रंग उड़ रहे हैं। सुन्दर ललित अंगो पर लगे हुए विविध रंगो से प्रभु एसे लगते हैं—मानों कामदेव अपने विविध रंग के पांच बाणों को सजा कर लड़ने आया हो। मनोहर यमुना का तट, रमणीक वनस्थली, लता वृक्ष और रंग २ के पुष्प अपनी २ पूर्ण शोभा बिखरा रहे हैं। मीठे स्वरो में भ्रमरों का गुंजन और मधुरस-मुग्ध कोयल के कूजन से कोलाहल होने लगा।

इस सुहावने समय घोष-सीमन्तिनी बहुमूल्य पट आभूषण पहिनकर हावभाव से मधुर गीत गाती हुई आने लगीं। उनकी ठुमक २ चरण-गति से प्रसन्न होकर सुवर्ण के नूपुर भी मुखरित हो उठे। उनके मुखकमल अधरविम्ब और मृदुल कपोलों की आभा से चंचल, कुण्डल भी झलमल-झलमल करने लगे। शोभा की सीमा नंद-नंदन इस प्रकार व्रज-युवतियों के चित्त को लुभाते हुए आनंदित हो वसन्त-क्रीडा करने लगे।

७१

वसन्त के मोहक अवसर को देख व्रज-सुन्दरियां मान छोड़ व्रज की ओर आने लगीं। सुंदरता की राशि श्रीराधाकिशोरी

*वदन-आम की मंजरी के पराग से तयार किया हुआ चूर्ण।

के रमणीय नवल आभूषण शृङ्गार धारण करने से तन की कान्ति और भी दुगुनी हो उठी। द्रुमलता से सघन, भ्रमर-गुंजरित उस निकुंज में जाकर श्रीराधिका श्रीगिरिधरलाल से मिलकर अत्यन्त आल्हादित हुई।

७२

श्रीगिरिधरलाल रस मग्न होकर राधा-संग विमल वसंत-क्रीडा कर रहे हैं। अबीर, गुलाल डालकर अरगजा छिरक कर गोपी ग्वाल सब को रंग से भर रहे हैं। ताल मृदंग, अधौटी, वीणा, मुरली की तान छिड़ रही है। इस प्रकार यमुना-तट पर क्रीडा करते हुए प्रभु के सौन्दर्य और हावभाव को देखकर काम भी लज्जित हो जाता है।

७३

श्रीगिरिधरलाल सरस वसन्त खेल रहे हैं। कोयल बोल रही है, यमुना तट पर तमाल, केतकी, कुंद आदि फूल रहे है। वेणु, मृदंग ताल स्वर में मुरली की मधुर तान सुनकर व्रज-बालाएँ नवीन साज-सिंगार कर चली आ रही हैं। मदनगोपाल चोवा, चंदन, अरगजा छिरक रहे हैं, प्रेम से मिलकर परस्पर फूल मालाएँ पहिना रहे हैं। इस क्रीडा के दर्शनकर देवगण व्रज-कुमार पर पुष्प-वृष्टि कर रहे हैं। श्यामसुन्दर सब के मन को प्रसन्न कर रहे हैं, उनकी बलिहारी है।

फाग— ७४

व्रज-युवतियों के साथ 'हो हो होरी' बोल कर नंदलाल फाग खेल रहे हैं। चारों ओर ग्वालों के टोल नटनारायण राग, चैती और फाग के गीत गा रहे है। आवज, उपंग, बांसुरी, वीणा, चंग, संख, झांझ, डफ, मृदंग, ढोल आदि वाद्यों के ताल में श्री-गोपाललाल होरी-गीत गाते हैं वेणु से भी वह तान निकालते हैं।

व्रजवनिताएँ अमूल्य पट आभूषण पहिनें है जिनकी शोभा अकथनीय है। व्रज की गली-गली में रंग की पिचकारियां छोडकर 'ही-ही हू-हू' करते ग्वाल डोल रहे हैं। रसमत्त होकर ग्वाल गोपियों के आभूषण और वस्त्र खेंच लेते हैं। किसी का हार टूट जाता है, तो किसी की भुजा झकझोर और कलाई मरोड़ जाती है।

इस प्रकार समस्त गोकुल में रंग की कीच मचो है, अतुलनीय अनुराग उमड़ रहा है। गिरिधर प्रभु का इस प्रकार व्रज में प्रेम-कल्लोल देखने को देव-विमान स्थगित हो जाते है।

७५

'देखो सखियो ! होरी का अवसर है कोई बुरा न मानें'। ऐसा कहकर श्याम किसी का हार तोड़ते किसी की चुरियां चरकट्ट कर देते हैं, तो किसी की खुंभी ले भागते हैं, आँखों में पिचकारी तानकर मार देते हैं। वह खेल में किसी की नकवेसर झटकते हैं किसी का स्पर्श करते हैं तो किसी की पीछे से वेनी खेचते और कंठसरी लेकर भाग जाते हैं। इस प्रकार का ऊधम करते हुए भी गिरिधरलाल सब को आनंदित कर रहे हैं।

७६

'हो ! हो ! होरी है' बालकों के साथ हल्ला मचाते हुए गोवर्धन-धारी फाग खेल रहे है। सुन्दर वस्त्राभूषणों से सजकर व्रज-रमणियाँ आ रही हैं। उनकी मांग का सिंदूर झलक रहा है।

खेल में ताल, मृदंग, अधौटी आवज और डफ किडकिड, 'थुंग-थुंग धम्म' शब्द कर रहे है; तो वीणा वेणु स्वर-मंडल अपनी मधुर गुंजार कर रहे हैं। श्याम के अधर-धरी मुरली तो सातों स्वरों की तरंग छलका रही है। अबीर कुमकुमा वंदन और नाना

प्रकार के रंगों से मंडित त्रिभुवन-मोहन श्याम अपने कोटि कन्दर्प-लावण्य से मन मोह लेते हैं।

७७

माई! 'हो हो होरी है' बोल-बोल कर होरी खिलाओ। झांझ, बीन, पखावज, किन्नरी और डफ मृदंग, बजाकर चांचर का खेल प्रारंभ करो। चोवा चंदन मृगमद घोल २ कर छिड़को और एक दूसरे पर अबीर गुलाल उडाओ। नंद के लाडिले श्याम फाग खेल खेल रहे हैं, गोप-वेशधारी मनमोहन का यश गाओ।'

नवीन वस्त्र आभूषण पहिन कर व्रजवनिताएँ कह रही हैं कि, चलो-नन्द के घर चलकर लाल गिरिधर पर अपना सर्वस्व न्योंछावर करें।

७८

अब तो चारों ओर रंग मच गया है 'हो! हो! होरी है' कह-कह कर होरी खेल रहे हैं। सब व्रजबालाएँ मनमोहन का रंग-ढंग देखकर सिमिट कर इकट्ठी हो गई हैं। खेल-खेल में ही सब ने सब कुछ कर डाला, अब बाकी क्या बचा है? स्त्रियां रस-भरी गाली गाती हैं। होरी का छैला चेष्टाए कर बेढंगा नाच रहा है।

गुलाल लेकर मुख पर मली जा रही है। दोनों नेत्रों में काजर आंजा रहा है, राधिका ने पिचकारी छोड़कर श्यामसुन्दर को सराबोर कर दिया है। रसनिधान व्रज का लाडिला तो शोभा का समुद्र हो रहा है, उसे देखकर कामदेव भी मन में लज्जित हो जाता है।

७९

कुंवर कन्हैया होरी खेल रहे है। चोवा, चंदन, अगर, कुमकुमा से आंगन में कीच मच गई। ललिता आदि सखियों की गुलाल उड़ाने की शोभा दर्शनीय हो जाती है। वे पिचकारी का केसरी रंग एक दूसरे पर छिड़कती जाती हैं। युवक-युवती सभी ने एड़ी से लेकर चोटी तक नये वस्त्राभूषण पहिने हैं। गिरिधर की शोभा पर तो निछावर हो जाने का मन हो जाता है।

डोल—

८०

मोहन के मन में डोल-झूलने से आनन्द उमड़ पड़ा है। एक ओर वृषभानु-नन्दिनी दूसरी ओर व्रज-चन्द्र विराजमान हैं।

सोने की डांडी पकड़ कर ललिता, विशाखा, प्रिया-प्रियतम को झुलाती जाती हैं। युगल स्वरूप आपस में देखकर मन्द स्मित कर वार्तालाप कररहे हैं।

उड़ती हुई गुलाल, कुमकुमा मृदुल कपोलों पर लग जाता है। गोपाल पर रंग और फूल बरसाते समय जय-जयकार का कोलाहल हृदय के आनन्द को बढ़ाता है। परस्पर प्रेमरस की वृद्धि होती है, उसकी उपमा त्रिभुवन में नहीं है।

'कुंभनदास' लाल गिरिधर की बानिक पर बलि २ जाता है।

फूलमण्डली—

८१

आज लाल गिरिधर फूलों के चौवारे में विराजे हैं। कुरवक बकुल, मालती, चंपा, केतकी, निवारी तथा जाई जुही, केवडा रायवेल आम आदि सुगंधित पुष्पों की महक उठ रही है। त्रिविध मंद समीर में पिक शुक के बोल और मधुकरों की

गुंजार व्याप रही है। राधा-रमण रसमग्न होकर विलास कर रहे हैं-सामने मयूर नाच रहे हैं। अनुपम शोभा से युक्त श्री गिरिधर पर कोटि मन्मथ निछावर हैं।

श्रीमहाप्रभुजी की वधाई—

८२

श्रीलक्ष्मण भट्टजी के घर आज वधाई है। सुखदाता पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीवल्लभ का प्राकट्य हुआ है। लक्ष्मण भट्टजी सभी को दान मान से सम्मानित कर रहे हैं। सुख की लता लहलहा उठी है। इनके प्राकट्य से श्रीगोवर्धनधर के हृदय में आनन्द नहीं समाता।

८३

अवतार-स्वरूप श्रीवल्लभ का गुणगान करो। सकल विश्व के आधार श्रीगोकुलपति गोकुल में साक्षात प्रगटे हैं। महाप्रभु ने सेवा-भजन की रीति वताकर जीवों के जन्म मरण का व्यापार ही मेंट दिया है। श्रीप्रभु गिरिधर के इस प्राकट्य से भवसागर से पार उतारने का मार्ग अव सरल हो गया-मुक्ति का द्वार खुल गया है।

८४

श्रीवल्लभ की वलिहारी है। आप अपने वचनामृत सींच कर सव का दुःख हरलेते हैं। आप निकुंज-विहारी कृष्ण की लीला का विस्तार करते हैं। प्रभु गोवर्द्धन-स्वरूप! 'कुंमनदास' तो आपकी विना मोल की दासी है।

८५

श्रीवल्लभ प्रकट न होते तो प्रभु की लीला ही पुरानी पड़ जाती, सव लोग उसे भूल जाते। आपके प्राकट्य-विना वसुधा

सूनी लगती। जिस प्रकार कुन्दन पर चुनी (जड़ाव का हीरा) सुन्दर लगता है उसी प्रकार आप से भूतल की शोभा है। जिनका यश मुनिगण गाते है, उनकी स्तुति 'कुंभनदास' कहाँ तक कर सकता है?

अक्षय तृतीया—

८६

श्रीगिरिधर सुभग अंग पर चंदन धरा रहे हैं। उनके बाईं ओर कंचनवल्लरी-सी श्रीराधा सुशोभित हैं।

अक्षय तृतीया के दिन आज सर्व प्रथम ही अंग-प्रत्यंग पर चंदन की चित्र-रचना की गई है। श्रीहरि ने श्वेत वागा और पाग धारण की है। वक्षस्थल पर केसरी मलयागिर चंदन का लेप किया है, दोनों स्वरूपों ने चंदन की मालाए धारण की हैं। रसिक शिरोमणि प्रभु व्रज-वनिताओं के साथ हास्य-विलास कर रहे हैं।

८७

ठीक दुपहरी में खस-खाना में भी विहारी विराजमान हैं। कटि में खासा का पिछोरा और श्रीमस्तक पर चंदन से भींजी कुलह धारण कर रक्खी है। वृषभान-दुलारी श्याम के कोमल तन पर चंदन लेप कर रही है, सुगंधित जल के फुंहारे छूट रहे हैं। प्रीतम फूलों के पखा डुला रहे हैं। सघन लताद्रुमों से मालती-पुष्प झररहे हैं। श्रीराधा गुलाबों की माला गूंथ रही हैं। श्रीगिरिधर उनकी छवि पर रीझ जाते हैं, तन-मन न्यौछावर करते हैं।

रथयात्रा—

८८

रथ पर विराजमान मदनगोपाल की शोभा क्या वर्णन की जा सकती है? मोरमुकुट, वनमाला, पीताम्बर और तिलक

सुशोभित है। कंठ में गजमुक्ता की माला नीलगिरि पर बहती हुई स्वच्छ गंगा की धारा जैसी लगती है। वृन्दावन की रम्य भूमि में प्रभु के संग राधिका, घन के साथ दामिनी के समान छवि पा रही हैं।

रथ के शब्द को सुनकर शुक, पिक, मयूर बोल उठते हैं, त्रिविध पवन बहरहा है, इन्द्र पुष्प-वर्षा कररहा है। गिरिधरलाल की इस शोभा की बलिहारी है।

८९

रथ पर घनश्याम और गौरवर्ण श्रीराधा की जोड़ी शोभित है। इस समय देखने को आकाश में देव-विमान इकट्ठे हो गये, सुर, मुनि, गन्धर्व 'जय-जय' का उच्चार कररहे हैं।

'कुंभनदास' इन दोनों स्वरूपों की बानिक पर बलि जाता है।

९०

सुसज्जित रथ पर त्रिभुवन के नाथ और उनके आसपास बहिन सुभद्रा और बलभद्र बिराजमान हैं। सब सखा भी जहां तहां बैठे हुए हैं। रथ के ऊपर सोने के कलश की और भीतर मरकत श्यामप्रभु की छवि दर्शनीय है। नीलाम्बर तथा पीताम्बर और श्रीहस्त के सुदर्शन चक्र का तेज अभूतपूर्व है। दोनों भाई नील शिखर पर इन्द्र के समान दीप्त होते हैं।

'कुंभनदास' इनके यश का वर्णन करता हुआ तृप्त नहीं होता।

वर्षा-ऋतु वर्णन—

९१

सखी! रिमझिम २ मेह बरस रहा है, प्रीतम के साथ भींजते चलने में बड़ा आनंद मिलेगा। इधर चातक, पिक, मयूर बोलते हैं, उधर मेघ की मधुर गर्जना होती है, उसी प्रकार पवन भी

शीतल है। जैसी गगन में काली घटा उमड़ रही है, वैसी ही पहिनी हुई चूनरी से वेश रमणीय लगेगा। ऐसे समय रसिक सुन्दर वर प्रभु गोवर्धन भी हृदय को प्रिय लगेगें।

९२

'मोहन! यह नई साड़ी बरसा में भींजेगी। बाबा वृषभानु ने अभी दी है-सो पहिन कर आई हूं। अपना पीताम्बर मुझे उढ़ालो, यह साड़ी भींज जायगी, चित्राम-रंग बिगड़ जायगा, घर जाकर क्या कहूंगी? मुझे तो डर लगता है,' प्रिया के इस वचन को सुनकर गोवर्द्धनधर ने प्रसन्न होकर उन्हें पीताम्बर में छिपा लिया।

९३

गोवर्द्धन पर मुदित मयूर बोल रहे हैं। मंद घोर सुनकर मन के उल्लास से वे जहां तहां नाचने लगते है।

मेघ-घटा-सी श्रीअंग की शोभा, दामिनी-सा दमकता पीताम्बर, इन्द्र धनुष-सी वनमाला, और बक-पंक्ति-सी मोतियों की माला शोभित होती है। ऐसे समय नवल घनश्याम सुन्दर प्रेमनीर की वरषा कररहे हैं।

९४

श्रीराधिका नवल तन पर कसूंमी साड़ी पहिनें हरियाली भूमि पर चन्द्र (इन्द्र) वधू-सी लगरही हैं। हरि के निकट ठाढ़ी मृगलोचनी राधा दर्शन से मन मुग्ध करलेती हैं।

जैसी सुहावनी वर्षा ऋतु है वैसी ही घन-घटा, और वैसी ही युगल स्वरूप की बानिक को क्या उपमा दी जाय? विचित्र वेश-धारिणी, स्वामिनी, श्रीराधा का मुखकमल श्रीहरि इकटक निहार रहे हैं।

९५

'देखो सखी! यह मेघ चारों ओर से झड़ी लगा रहे हैं। घटा की उठान और बिजली की कौंध से आकाश छा गया है। रस की बूंदे धरती पर पड़ने से व्रज-जनों को अच्छा लगता है। एसे सुहावने समय प्रभु गोवर्द्धनधर मलार राग छेड़ रहे है।

९६

'प्यारे कान्ह! मुझे अपने कंधे का कंबल दे दो? रिमझिम २ बरसा से मेरी कसूंभी साड़ी भींजी जारही है। मेघ-घटा और गर्जना से डर लगता है।

'कुंभनदास' कहते हैं कि-गोवर्द्धनधर साथ के ग्वालों के डर से अपना कंबल प्रियतमा को उढ़ा नहीं पाते।

९७

आज व्रज पर सलोनी घटा छाई है। नन्ही नन्ही बूंदें और और दामिनी की चमक सुहावनी लगती है। आकाश गर्जना-रूप मृदंग बजाता है, तो मयूर नट अपनी कला दिखाता है। उसके ताल स्वर में चातक, पिक तान छेड़ देते हैं। इसी समय मदन भट (योद्धा) भी खंभ फटकार आ कूदता है। खेल का जमघट-सा जुड़ जाता है, नंदलाल ऊंची अटारी पर विराजे हैं, श्रीअंग पर पीत पट, मस्तक पर कसूंभी पाग शोभित है, सभी उन्हें भेंट समर्पित कर रहे हैं।

९८

माई! गोवर्द्धन पर मयूर बोल रहे हैं। काली २ घटा सुहावनी लगती है। तेज पवन भी चल रहा है। श्याम घन के तन में दामिनी दमक रही है, थोडी २ बूंदे पड़ रहीं है। गोवर्धन-धर को देखकर मेघ की भ्रान्ति से चातक भी बोल उठते हैं।

९९

प्रिया प्रीतम सरस वार्ता में मग्न होजाने के कारण वर्षा से भींजने लगे। सघन कुंज के द्वार पर खडे २ पत्तों की छाया से अपने अंग को बचा रहे हैं। श्यामा श्याम उमंग में रसमत्त है, गीले वस्त्र उनके श्रीअंग से जाकर चिपट गये हैं। गोवर्धनधर इस समय प्रेमभरी चेष्टाओं से और भी स्नेह की वृद्धि कर देते हैं।

१००

युगल स्वरूप भींजते हुए कुंज के भीतर आरहे हैं। श्याम सुन्दर ने वर्षा से बचाने के लिये वृषभानु-कुंवरी पर कांवरी उढ़ाली हैं। इस प्रकार हेल-मेल और परस्पर प्रीति से दोनों पुलकित होने लगे। इसी समय प्रभु श्याम राधिका को छल से छोड़कर छिप जाते हैं।

१०१

'मैं अपने नेत्रों से दुलहिन राधिका की सुरंग चूनरी और मोहन का उपरेना भींजता हुआ कब देखूंगी? श्यामा श्याम दोनों बरषा में कदम्ब के नीचे खड़े भींजते होंगे-मैं उन्हें बचाने का कुछ भी यत्न नही करूंगी? सखी! मैं इस प्रकार मन में सोच ही रही थी कि- मेघ-घटा घिरकर आगई।

१०२

अरी आली! ये मयूर भाग्यशाली हैं। इनके पंखों का बना मुकुट नंदकिशोर मस्तक पर धारण करते हैं। ये सभी व्रजवासी भी धन्य हैं जो-हरि का मुखचन्द्र देखकर नेत्रों को सफल करते, आठों पहर। श्यामसुन्दर के साथ हिलमिल कर खेलते और आनन्द से किलोल करते हैं। व्रज की ललनाओं के

सौभाग्य की भी कहां तक सराहना की जाय? जो-हरि-गुणगान में लीन रहती हैं-प्रभु इनके मन को चुराकर इनके साथ विहार करते हैं।

१०३

लाल गिरिधर! देखो मेह बरसने से मेरी सुरंग चूनरी भींज रही है, अब मुझे घर जाने दो। मनमोहन! तुम्हारे अटपटे विचार से मेरे मन में सन्देह-सा होजाता है। प्रभु गोवर्धनधारी! तुम सुख से राज करो यही हमारी प्रीति-भरी शुभ कामना है।

१०४

'श्याम! सुनो तो? वर्षा पास में आ गई। मेरी रंग-रंगीली चूनरी भींज जायगी। मेरे ऊपर अपना पीत पट उढ़ालो। मोहन! मुझे विजली से डर लगता है, मुझे अपने पास खड़ी कर लो'

कुंभनदास कहते हैं- इस प्रकार वाग्विनोद करते, गिरिधर-लाल से गोपी का अधिक स्नेह बढ़ गया।

१०५

'अरे सखी! देख, अचानक शरीर पर बूंदें पड़ने लगीं। मैं सुख से सोरही थी, गड़गड़ाहट से मेरी नींद खुल गई। दादुर, मोर पपीहा बोल उठे और मधु के लोभी भँवरा गूंजने लगे।'

ऐसा कहकर चित्त में स्नेह उमड़ने से वह बड़भागिनी गोपी लाल गिरिधर के समीप जा पहुंची।

हिंडोरा—

१०६

सुंदर हिंडोरना में नागरी नागर झूल रहे हैं। उनके अंग २ की शोभा सुखद है। श्यामसुंदर के साथ भामिनी मेघ-दामिनी जैसी शोभित है, रमणीय वर्षा ऋतु है। पीत पट और लाल

साड़ी की उड़ान अनोखी छवि देरही है। खंभे, डांड़ी, मरुआ सभी रत्नों से जड़े हैं। ललिता-आदिक सखियां गिरिधर प्रभु का यश गाती हैं। इस शोभा को देखकर रतिपति भी लज्जित हो जाता है।

१०७

माई! युगल किशोर हिंडोरा झूल रहे हैं। ललिता चंपकलता आदि ब्रज-नारियां झोंटा देरहीं हैं। एक ओर भारी मेघ-घटा उठ रही है। उधर गोपियां गा रही हैं। इस शोभा को देख २ कर गोपियां मुग्ध हो जातीं हैं। गोवर्द्धनधारी हिंडोरा झूल कर सब को प्रसन्न कर रहे हैं।

१०८

ब्रजनारियो! हरि हिंडोरा झूल रहे हैं, सावन में छोटी २ फुहियाँ पड़ रही हैं हरियाली छा रही है। नवीन बन, नवीन घन-घटा, नवीन ही चातक पिक पक्षियों के बोल हैं, उसी प्रकार नवीन कसूंमो साड़ी पहिरें नंदकिशोर के वाम भाग में वृषभानु-दुलारी शोभित हैं। मणि जटित सुवर्ण के खंभ, पटेला और डांडी सजी हुई हैं। लाल गिरिवरधरण धीरे २ झोंटा दे-देकर झूल रहे हैं।

१०९

ब्रज-नारियाँ हरि के संग झूलने आई हैं। इन मृगनैनियों ने सुन्दर आभूषण और बहुमूल्य वस्त्र पहिने हैं। सुवर्ण के खंभो की रत्न जटित डांडी और सिंहासन पर बिराजे गोवर्द्धनधारी मधुर २ झोंटा दे-देकर झूल रहे हैं।

११०

माई! नागर नंदकिशोर गिरिधरलाल

वैठे हिंडोरा झूल रहे हैं। घनश्याम के तन पर पीत पट और श्यामा के सुंदर वपु पर सुरंग साड़ी दीप्त हो रही है। वे गलवहियाँ दिये मंद हास्य कर रहे हैं। चारों ओर खड़ी घोप-नारियाँ धीरे २ उन्हें झुला रही हैं। गिरिधरलाल की झूलने की शोभा उनके मन को मोहित कर रही है।

१११

माई! सुवर्णमणि-जटित हिंडोरा में श्यामा श्याम दोनों स्वरूप झूल रहे है। व्रज-सुंदरियाँ गा रहीं हैं सुरमण्डल के मीठे शब्द के साथ ताल, पखावज, झांझ, बांसुरी वज रही है। पुलकित होकर प्रिया श्रीराधा और प्रीतम प्रभु गोवर्धनधर रसिक-प्रीति का निर्वाह कर रहे हैं।

११२

प्रियतम के संग स्वामिनी सरस हिंडोरा झूल रही हैं। चारों ओर साज-सजी खड़ी होकर व्रज-युवतियाँ धीरे २ उन्हें झुला रही हैं। नीली साड़ी के साथ पीताम्बर घन-दामिनी जैसी शोभा दिखाकर चित्त चुरा लेता है। गिरिधर प्रभु के परस्पर देखने पर छवि की तरंग-सी उठने लगती है।

११३

नटवर सुरंग हिंडोरा झूल रहे हैं। प्रिया और प्रियतम के चरण एक दूसरे की पटली पर सटे हुए हैं। पीत पट, वनमाला और सुरंगी साड़ी अपनी २ आभा प्रकट करते हैं। सजल घन सरीखे श्याम और कनकवर्णी राधिका की छवि मानिनी के मान को खंडित कर देती है। अनन्त दीप्ति से झलकते कुंडलों को धारण किये दम्पति श्रीगिरिधर और राधिका की यह अनोखी प्रीति दर्शनीय है।

११४

नवल लाल के संग व्रज–रमणी श्रीराधा हिंडोरा झूलने आई हैं। सुंदर पाग की लपेट और चूनरी की रचना दर्शनीय है। प्रियतम के संग सगसमाकर मधुर वार्तालाप करती हुई श्रीराधा उनका चित्त चुरा लेती हैं। युगल स्वरूप रमक २ आनन्द से झूलते और मुख मोड़कर मन्दहास्य-पूर्वक वार्तालाप करते जाते हैं।

११५

'प्रियतम! मुझे भी थोड़ा झूलने दो। श्यामसुन्दर! मुझे जैसे डर न लगै वैसे झोंटा देकर रमककर मुझे झुला दो। मैं कभी अकेली पटुली पर नहीं वैठी। सखियों को भी पास बुलाकर उनके गीत के साथ मुरली मिलाकर मलार राग की तान छेड़ना, मैं झूलूंगी। प्रियतम! फिर मैं उतरकर आपको भी वैसे ही झुलाऊंगी, जिससे आप प्रसन्न होंगे'।

११६

माई! नवल किशोर सजे हुए झूला पर प्रसन्न होकर श्रीराधा को झुला रहे हैं। उनके तन पर नवल कसूंभी साड़ी और चारों ओर नवीन हरित भूमि शोभित है, कंचन के खंभों के पास खड़ी हुई सुन्दरियाँ गीत गा रहीं हैं, वन में अनेक पक्षी कल रव कर रहे हैं। मेघ की नई घटा से गर्जना के साथ थोड़ी २ बूंदे पड जाती हैं। राधा के अंग पर चूनरी और श्याम के अंग पर पीताम्बर फव रहा है। नव आभूषणों से सज्जित प्रभु गोवर्धनधर रत्न-खचित पटेला पर बिराजकर रस में मग्न मन्द २ झोंटा दे रहे हैं।

११७

श्यामा श्याम दोनों हिंडोरा झूल रहे हैं। गौर श्याम शरीर, कसूंभी और पीत वस्त्र से शोभित वे दोनों साक्षात् आनन्द–मग्न

काम की मूर्ति हैं। हिंडोरा में मरकत मणि से जड़े हुए खंभ, रमणीय डांडिया, पिरोजा की जटित पटली और मनोहर बहुरंगी झूमक झूम रही है। ललिता-विसाखा झोंटा देकर रस-भरे गीत गा रही हैं। पिक चातक मयूर पक्षी मधुर बोल रहे हैं। देवगण विमान पर चढ़कर इस कौतुक को देखते और प्रभु श्रीगोवर्द्धनधर पर पुष्प-वृष्टि करते हैं।

११८

व्रज-वनिताएँ सोलहों शृङ्गार सजकर प्रभु को हिंडोरा झुलाने आई हैं। वे रमणीय लग रही हैं। श्याम मनोहर श्यामा के संग सजे हुए विराजे हैं। इनके नखशिख-सौन्दर्य को देखकर कोटि कन्दर्प लज्जित होते हैं। प्रसन्न होकर सखियाँ झुलाती और गीत गाती हैं। तान, मान, बंधान आदि संगीत वाद्य-भेदों के साथ मृदंग बज रहा है। यमुना-तट पर निकुंज में हर्ष-उल्लासित गुणनिधि राधा और गिरिवरधारी झूल रहे हैं-कुंभनदास कीर्तन गा रहा है।

११९

वर्षा-ऋतु, कुंज-सदन, यमुना-तट और वृन्दाविपिन में व्रजराज-कुंवर हिंडोरा झूलरहे हैं। कनक के खंभा, सुन्दर चार डांडियां, रम्य झूमक और नवरंग पटुली अमूल्य लगरही है। वेषभूषा से सजे गोपाललाल, नवल व्रज की सीमन्तिनी और चारों ओर गोपियों के टोल कैसे सुन्दर लगते हैं ? नटनारायण राग का आलाप, सुन्दर नृत्य, व्रजनारियों का बारी-बारी से झुलाने का शब्द मुरली पखावज की ध्वनि, आकाश को गुंजारित करती है। स्वर-संगीत से युवतियां मत्त हो जाती हैं।

इस विलास को देख कर 'कुंभनदास' गिरिधर का गुणगान करता है।

१२०

नन्दकिशोर ! आज नया हिंडोरा सजाया है। हरियाली भूमि में कल्पद्रुम-से वृक्ष दीख पड़ते हैं। पारिजात मंदार के फूलों पर भौंरा मंडरा रहे है। हंस, चातक, मोर, कोकिला, शुक आदि पक्षी यमुना–तट पर मधुर शब्द कर रहे है। मल्लिका, मालती, चंपक, आदि वृक्ष-लताए लहलहा रही हैं। घन-घटा उमड़ी और इन्द्र-धनुष निकला है। सुगंधित पवन वहरहा है। रत्नजटित शोभित हिंडोरा में प्रसन्न चित्त गिरिधर के संग राधिका विराजमान हैं। वेणु, वीणा, मुरज, मृदंग, आदि वाद्य बजरहे हैं। सुंदर सरोवरों में कुमुद–कल्हार फूल रहे हैं। संगीत में मल्हार राग जमरहा है। ललिता–विशाखा सखियाँ कुंज–कुंज में युगल स्वरूप को झुलाकर स्वयं झूल रही हैं।

इस आनन्द–मग्न युगल स्वरूप के विलास को देखकर देवगण पुष्प-वृष्टि करते हैं, और 'कुंभनदास' वलिहारी जाता है।

पवित्रा—

१२१

श्रीगिरिधरलाल पवित्रा पहिर रहे हैं। उसमें रंग-बिरंगे रेशमी फोंदना लगाकर ग्वाल बड़े प्रेम से प्रभु को पहिना रहे हैं। उन के चारोंओर सखा–मण्डली कमल पर अलि माला–सी शोभित हो रही है। श्रीगोवर्द्धनधर अपने सौन्दर्य से त्रिभुवन को मोह रहे हैं।

१२२

श्रीगिरिधरलाल पवित्रा धरारहे हैं। वामभाग में विराज-मान श्रीवृषभानु–नंदिनी मधुर वचन बोल रही हैं। कमल पर भ्रमर–पंक्ति के समान युगल–स्वरूप के चारों ओर सखा–मण्डली

विद्यमान है। श्रीनंदलाल और श्रीराधा अपने सौन्दर्य से जगत का मन मुग्ध कररहे हैं।

१२३

श्रीगोकुलराय पवित्रा धारण कररहे हैं। श्याम-अंग पर पवित्रा के रंग की सुन्दर झलक वर्णनातीत है। बाईं ओर लावण्यमयी वृषभानु-कुमारी विराजी हैं। गोपियां दामिनी-सी दमक रही हैं। मनमोहन ने भक्तों के लिये अपनी गूढ लीला प्रगट की है। उनकी शोभा कही नहीं जा सकती।

१२४

गोकुल के राजकुमार गिरिधरलाल ने पवित्रा धारण कर अपने यश से तीनों लोकों को पवित्र कर दिया है। श्रावण शुक्ल एकादशी के दिन मंगलचार हो रहा है। सब बालकों के साथ सजधजकर प्रभु सिंहासन पर बैठे हैं। व्रज-युवतियां मोतियों के थाल भरकर गीत गाती हुई आ रही हैं। कहती हैं-प्रभो! 'प्रसादी पवित्रा प्रदान करो' चिर जीवो-ऐसी शुभ कामना है।

राखी—

१२५

माता यशोदा बलराम और गोपाल के हाथ में राखी बांध रही हैं। सोने के थाल में कुमकुम-अक्षत लेकर नंदलाल को तिलक किया है। दोनों कुमारों के तनु पर सुन्दर वस्त्र-आभूषण और वनमाला शोभित हैं। यशोदा उनके शरीर पर मृगमद, चंदन आदि सुगंधित द्रव्य लगा रही हैं। सब सखियां श्यामतमाल के समान सुन्दर श्रीकृष्ण को आशीर्वाद देरही हैं।

लाल ! तुमने हमारा सर्वस्व तो चुरा लिया और अब उलटी हमसे ही रार बढ़ाते हो ? ”

ऐसा उलहना सुनकर भी गोवर्धन-धर उस गोपी के ही संग लगे फिरते हैं ।

१३१

“ अरी ! कोई हरि की चपलता से बुरा मत मानना ? बालकों के साथ नाचते नाचते आना और घर-घर का दही खाना तो उसका रोज का काम है । प्राण न्यौछावर करके भी नंद महर का वह ढोटा मिलै तो भी क्या कहना ? यही गोवर्द्धन-धर तो राधिका का प्रीतम है ” ।

क्रीडा—

१३२

कृष्ण कन्हैया चमचम करते आंगन में खेल रहे हैं । नीचे पड़रही अपनी प्रतिबिम्ब-मूर्ति पकड़ने के लिये किलक कर दौड़ते हैं । किन्तु जब वह हाथ नहीं आती तब थककर वहीं लौट आते हैं। प्रभु की बाल-सुलभ लीला को देखकर माता यशोदा हँसती और मन्द मुसकाती हैं ।

१३३

“सखी ! कुंज में जाकर अब गोपाल को मेरे पास बुलालाओ । खेलते २ उसे बहुत देर हो गई उसे साथ लिये बिना तू मत आना ? देख मैं उसी तरफ देख रही हूं । अब जाकर गिरिधर को ले आवो उसे फिर न जाने दूगी ” ।

१३४

“लाल प्यारे ! आज बड़ी देर से आए ? कबकी तेरी बाट देख रही हूं ? अब मैं तुझे बाहिर नहीं जाने दूंगी । तुझे देखकर

मेरा हृदय शीतल होता है। घर में ही बहुत से खिलौना हैं-वाहिर न जाने का धरा है? अभी एक गोपी उराहना देगई है"।

माता के इस कथन पर "मैंने किसीका दही नहीं चुराया" यों कहकर भी गिरिधर अपनी मन-मानी ही लीला करते फिरते हैं।

१३५

"अरी? माई! कन्हैया तो देखने में ही छोटा है। उसने कालिय नाग को नाथ कर यमुना-जल को निर्विष कर दिया। उसका शरीर कमल से भी कोमल है—फिर भी गोवर्द्धन धारणकर बूड़ते व्रज को बचाकर इन्द्र का मान मटिया-मेट कर दिया। यशोदा! तेरा पुत्र तो कोई बड़ा देव है? वह भक्तों का जीवन और हम सभी का सर्वस्व प्राण है"।

व्रजभक्त-प्रार्थना—

१३६

"तुम भली भांति गाय-दुह जानते हो। नंदनंदन! रसिकवर! चलो, मैं तुम्हारे पांव पड़ती हूं। तुम्हें आता हुआ देखकर मैया ने सोने की दोहिनी देकर मुझे भेजा है। यहीं पास में खरिक है-दूर नहीं जाना पडेगा? नागर! मैं तुम्हारी बलैयाँ लेती हूँ"।

यह सुनकर गोवर्द्धनधारी उस गोपी की सुन्दरता पर मुग्ध हो गए, और मन से उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली।

१३७

"कन्हैया! तेरी सौगन्ध है-मैं अवश्य आऊंगी-अब जाने दो। श्याम! सांझ को समय मिलते ही बछड़ों को छोड़ने के लिये निश्चित आऊंगी। जो-मेरे यहां लोगों की आवजाव नहीं होगी, तो मैं तुम्हें अवश्य बुलाऊंगी। देखो-संकेत के लिये

बालबच्चों को झूला झुलाने के लिए मैं ऊंचे स्वर से गाऊंगी। अभी देर हो जायगी, घर के लोगों से क्या कहूंगी ? प्रभु गोवर्धनधर! उसी समय मैं तुम्हारे कृपा-रस का पान करूंगी"।

१३८

"कान्ह! हमारी गैया दुह दो। सात भाइयों में लाडिला समझकर मेरी माता ने मुझे तुम्हें बुलाने भेजा है। तुम बड़े उपकारी और संकर्षण के भैया हो। नंदनंदन! तुम हाथ में कनक-दोहिनी ले लो। मैं बलैयां लेती हूं। यद्यपि तुम्हारे गोधन ज्यादा है, दूध-दही, घैया खूब होती है पर गोवर्द्धनधारी! थोडी-सी कृपा करो"।

परस्पर हास्य-वाक्य—

१३९

"गोपाल! तुम्हारे संग अब कौन खेले? मोहन! रहनेदो। तुमने मेरी मोतियों की लर तोड़ डाली। बांह मरोड़ कर पकड़ लेना ही तुम्हें अच्छा लगता है ? मेरी चुड़ियां फूट गई, अब म घर जाकर क्या कहूंगी" ?

"तू रिस क्यों करती है ? ला मैं फिरसे उन्हें जोड दूं-" प्रभु की इस बात को सुनकर वह गोपी मुख मोड़कर मुसकाती हुई चली गई।

१४०

"अरी ग्वालिनी! तूने मेरी गेंद चुराली है। वस्त्र में छिपाकर तू चुपचाप सोगई ?" कृष्ण के इस विनोद को सुनकर गोपी बोली- अरे! गोपाल.? इतना झूठ मत बोला करो, मैंने कब तुम्हारी गेंद ली है-देखो पराये अंग को हाथ लगाना ठीक नहीं है ?

मुरली-हरण—

१४१

उसनींदे नंदनंदन के अंक से चतुर सुंदरी श्रीराधा मुरली चुरा रही है। बजते हुए नूपुरों को बंद करके धीरे-धीरे चरण रखती है। कंकण, किंकिणी आदि आभूषणों को हाथों से संभाल कर चलती हैं। गिरिधर के निमीलित नेत्रों को देखकर मंद हास्य करती हैं "प्रभु जाग न पड़ें, मुझे देख न लें" ऐसा सोचकर कौतुक करती डरती जाती हैं।

१४२

चतुर राधिका ने नंदकुमार गिरिधर के अंक से अचानक मुरली निकाल ली, पर उनको पता ही न चला। उस ब्रज-सुंदरी ने बड़े यत्न से नूपुर और कंकणों की झनकार बंद कर ली, और वह मंद मुसकाती हुई मुरली लेकर धीरे-धीरे खिसक गई।

१४३

नव नागरी राधा ने निकुंज की ओर से निकलकर चतुराई से मोहन की मुरली चुराकर कहीं छिपा दी। मृदु मुसकान करके उन्होंने जो रसभरी बात कही उसे मुख से कहा नहीं जा सकता। गोवर्द्धनधर ने आज ही श्रीराधा की नवीन प्रीति का अनुभव किया है।

प्रभु-स्वरूप वर्णन—

१४४

"सखि! श्याम सुन्दर के नेत्र सुन्दरता की सीमा हैं। वे अति स्वच्छ, चंचल अनियारे और सहज ही काम को लज्जित करते हैं। कमल, मीन, मृग और खंजन अपनी विशेषता पर गर्व करते थे, पर इन नेत्रों में सभी गुण देखकर वे इनके दास हो गए,

उन्होंने सर्वस्व न्योछावर कर दिया। स्वानन्द में मग्न होकर गोवर्द्धनधर युगल लोचन से जब कुछ गूढ भाव प्रगट करते हैं तब सहज ही व्रज-युवतियों का मन खो जाता है"।

१४५

"आली! हरि के मुख के समान उनके सभी अंग मोहक हैं। हस्त और कपोलों की सुषमा लोचन भर-भर कर देखो। सौन्दर्य-सिन्धु अतिशय विस्तृत होकर कहीं मर्यादा न छोड़ दे? इस रूप-सिन्धु में रमणियों के नैन तरते-तरते थक गए, इसका पार ही नहीं पाते। शरद के कमल और चंद्र की उपमा देने का तो विचार ही नहीं उठता। लाल गिरिधर का तो रूप ही अद्भुत और सलोना है"।

१४६

"अरी! श्याम के तन की शोभा तो देखो? नंद-नंदन ने नवीन मेघ की सभी कान्ति छीन ली है। तडित के समान पीत वस्त्र, इन्द्र-धनुष के समान रंगवाली वनमाला है? वक्षःस्थल पर मोतियों का हार आकाश में उड़ती बक-पंक्ति से क्या कम है? रात्रि-दिन सौन्दर्य बारि बरसा कर यह मन की परिधि को सींचते रहते हैं। यही गोवर्द्धनधर व्रज-जनों के जीवन है"।

१४७

"सौन्दर्य की सीमा नंद-नंदन के मुख की आभा देखो। सखी! वे अपने लोचनों से सहज ही मन हरलेते हैं। उन नेत्रों का स्वरूप- श्याम, श्वेत, अत्यन्त स्वच्छ और चितवन कुटिल है। ऐसा लगता है मानों शरद-कमल पर दो खंजन बैठे लड़ रहे हों। श्याम अलकावलि मधुप-पंक्ति-सी लगती है। अंग-अंग की शोभा का क्या कहना? सौन्दर्य देखकर साक्षात् मन्मथ भी चरणों

में लोट जाता है। गिरिधर श्याम की शोभा–माधुरी, त्रिलोक की युवतियों को सहज ही वश कर लेती है"।

१४८

"हरि के मुख कमल का सौन्दर्य वर्णनातीत है। नख–शिख अंग के लावण्य को सोचते २ विधाता भी थक गया। यह पूर्ण शरद्–चन्द्र, विकसित सरोज आदि सभी की शोभा हरलेता है। लाल गोवर्धनधारी वास्तव में सौन्दर्य की सीमा ही हैं"।

१४९

"हरि के लोचनों की कोई उपमा ही नहीं है। खंजन और मीन चंचलता में प्रसिद्ध हैं पर ऐसों की गिनती ही क्या है? राजीव, कोकनद, इंदीवर आदि जितने भी जलज हैं–वे सब सौन्दर्य को देखकर फीके हो जाते हैं। गिरिवरधर के लोचन बड़े सुढंग और रमणीय लगते हैं"।

१५०

"रंगीले. छबीले, रसभरे श्याम के नयन मुदित होकर चंचल हो रहे हैं। मत्त खंजन के समान ये दोनों किसी प्रकार वश में नहीं आते इनमें श्यामता, श्वेतता और ललाई झलकती हैं, चित्र–लिखित–से जान पड़ते हैं। प्रभु गोवर्द्धनधर के सुन्दर शरीर में ये कैसे सुन्दर लगते हैं"।

१५१

"क्षण–क्षण प्रभु की शोभा विलक्षण ही प्रतीत होती है। अरी सहचरी! जब देखो तभी यह नई दीखती है। इस पर दृष्टि ठहरती ही नहीं है। मैंने मन में बहुत विचारा पर इसकी कोई जोड़ी दीखी नहीं। गिरिवरधर तो सौभाग्य-सीमा और सिर-मौर है।"

करते हुए मन में कोई झिझक नहीं होती। जंघाओं पर शत–कोटि कदली वृक्ष, कटि पर सिंह, मन्द गति पर मत्त गजगज और पुष्ट वक्षःस्थल पर कुम्भों को वारा जा सकता है। नासिका के लिये शत–कोटि शुक, दन्त के लिये कुन्दकली, और अधरों को देखकर पके हुए किंदुक फलों को न्योछावर कर उनके गर्व का भंग किया जा सकता है। काली सटकारी वेणी पर शत–कोटि नागिनें और ग्रीवा पर कपोत, कर–युगल के सामने करोड़ों कमल कुछ काम के नहीं हैं, लोक में समानता की कोई उपमा ही नहीं है।

स्वामिनी के नख–शिख सौन्दर्य का कहाँ तक वर्णन करें। गिरिधरलाल तो यही कहते हैं कि–क्षण २ मैं राधिका का मुख देखकर ही तो आनन्द मग्न रहता हूं।

१६०

"सखि! तेरे रूप की निकाई कहां तक कही जाय? तेरा नख–शिख अंग–प्रत्यंग विधाता ने रचपच कर अद्भुत ढंग से गिरिधरलाल के लिये बनाया है। चाल के लिये मत्त हंस, जंघा के लिये कदली–खम्भ और कटि के लिये सिंह की उपमा है, तेरा गौर तनु सौभाग्य की पराकाष्ठा है। श्रीफल के सदृश उरोज, केकीशिखा–सदृश केश–कलाप, पिक–सम बचन और कपोत के समान ग्रीवा मन को मुग्ध कर लेती है चंचल लोचनों ने कमलों को श्रीहत कर दिया है। चिवुक पर श्याम तिल से और रत्नजडित कर्णफूल की झलमलाहट से कपोलों की आभा दुगुनी हो उठती है। अधर विम्बाफल, और दन्त–अवली कुन्दकली, सुभग नासापुट तिल–कुसुम के समान कमनीय है। तेरे मुख को देख चन्द्रोदय समझकर कोक–दम्पति दुःखित होकर बिछुड़ जाते हैं।

सभी अंग शोभा का समुद्र हो रहा है, इस सौन्दर्य का पार

नहीं आ सकता। इस प्रकार प्रमुदित होकर सहचरी श्रीस्वामिनी-जीके सौन्दर्य का बखान कररही है।

१६१

सखि! तेरे तन की सुन्दरता अंग-प्रत्यंग की शोभा देख कर रचयिता ब्रह्मा भी चकित हो गया, तेरी चलन मन्थर, कटि क्षीण और वक्ष परिपुष्ट होने से अनुपम है। पल २ में विलक्षण छवि और उज्वलता दीख पडती है। बहुत विचारने पर भी इसकी इयत्ता का भान नहीं होता। इस परम शोभा के कारण ही गोवर्धन-धारी तेरे वश में हो गये हैं।

१६२

राधिके! तेरी रूप-रचना में विधाता की एक भी चतुराई बाकी न बची। उसने सभी का सार-सार लेकर तेरा तन सजाया-संवारा है। कर चरण-युगल में कमलों का, जंघा में कदली का, गति में मत्त गजेन्द्र और हंस का, ग्रीवा में कपोत का, उरज में श्रीफल का, कटि में केसरी का और भुज-युगल में मृणाल का सौष्ठव लाकर संचित किया है। मुख में चंद्र, अधर में बिंबाफल, विद्रुम और बंधूक (जपा कुसुम) का सौन्दर्य है तो नासिका के लिये तिलप्रसून और शुक की अनुहार है। नयन-युगल के लिये खंजन, मीन और कुरंग को विशेषताओं का उपयोग किया है। हीरा के समान चमचमाती दशनावली विद्युल्लता सी मुसक्यान, कुंदकली-से दांत क्या कम रमणीय हैं? दिव्य संतप्त सुवर्ण के समान देह-कान्ति पिक-मयूर से मधुर बोल और अलि-अवली के सदृश अलकावली है, इन सभी अद्भुत उपकरणों को लेकर प्रजापति ने तुम्हारे अंग-प्रत्यंग प्रभु गिरिवरधरण के लिये बड़ी सावधानी से बनाकर तयार किये हैं।

१६३

तेरे वदन की अनुपम छवि प्रियतम गिरिधर के हृदय में जाकर वस गई है। सखि! तेरे इस अंग के आगे अनेकों चन्द्र दब जाते हैं। तुम्हारे नयनों की शोभा वर्णन करै ऐसा तो कोई कवि दीखता नहीं है। स्वामिनी! यह गति और छवि एकमात्र तुझे ही फवती है—तू अपनी उपमा आप है।

१६४

माई री! तेरे नेत्र विधाता की परम रंजन रचना है। वे दोनों सहज कटीले, सौभाग्य की सींवा और गिरिधरलाल के हृदय में सदा वसते हैं। उनकी उपमा क्या कमल हो—सकते है? व्रजकुमारि! जब तू अपने सहज भाव से प्रसन्न होकर हरि को रिझाने के लिये नेत्र में अंजन आंजती है—तब उन्हें देखकर खंजन पक्षी अपने सौन्दर्य का गर्व स्वयमेव छोड़ बैठते हैं।

१६५

श्रीराधे! तुम्हारा मुख विधाता ने बड़े चाव से बनाया है। वह त्रिभुवन की रचना छोडकर इसीमें लग गया। सरोज, चन्द्र, बन्धूक पुष्प, शुक, पिक, भ्रमर आदि सभी के विशेष गुणों का उसने इसी मुख—रचना में उपयोग किया है। अन्त में वह इस अनुपम भेट को प्रभु गिरिवरधरण को समर्पित कर आनन्द से नृत्य करने लगा कि—मेरी रचना आज सार्थक हुई।

१६६

सखि! जैसी तेरी भौंहें बड़ी-बंक और मोहिनी हैं, उसी प्रकार चाल, दोनों लोचनों की चितवन भी कुटिल और मोहक हैं। तेरी अलकावली, वेणी, चाल, भूमि पर चरण रखना

सभी मन मुग्ध करते हैं। तूने एकटक चितवन की छवि से प्रभु गोवर्धनधर को मोहित करलिया है।

१६७

प्रिय सखी! तू सरोवर पर मत जाया कर। तेरे मुखचन्द्र को देखकर चकवी अपने प्रिय-संयोग-सुख को छोड़कर विछुड़ जाती है। चन्द्रोदय-सा समझकर कमल सकुचित हो जाते हैं, वेचारे भ्रमर व्याकुल हो उठते हैं। तेरे इस सहज स्वभाव के कारण दूसरे विचारे विना अपराध ही दुखी होते हैं। इसे किसका अपराध गिनें? विधाता ने तेरे मुख को एक अद्भुत चन्द्रमा-सा बनाया है-जिसे देख गिरिधर नागर अतिशय प्रमुदित होते हैं।

१६८

भामिनी! सोच विचारके बाद भी यह निश्चित नहीं हुआ कि तेरे तन की उपमा के लिये योग्य क्या है? कंचन, कदली, केसरी, करीन्द्र, कपोत और कुम्भ, कोकिल यह सब इनके सन्मुख कुछ भी नहीं है। सुधानिधि और सौदामिनी भी निरर्थक-से हैं। कुरंग, कीर, बंधूक-कुसुम, केकी और कमल सभी इसके आगे फीके हो जाते हैं। इन सभी में एक न एक दोष तो है ही। स्वामिनी राधे! परम रसिक मोहन तुझे इसीलिये 'परम भांवती' कहकर सम्बोधित करते हैं।

१६९

आली! तेरे वदन पर चपल नयन; कमल पर किलोल करते हुए दो खंजन-से रमणीक लगरहे हैं। यह कुंचित श्याम, चिकने केश ऐसे लगते हैं मानों रसलोलुप भंवर मंडरा रहे हों। तेरे अंग-प्रत्यंग की चारु सुषमा को कहां तक कहा जाय? मृदुल गोल कपोल पर झलमलाती हुई ताटंक की शोभा

प्रभु गोवर्धनधारी के हृदय में अकथनीय रस की वृद्धि कर देती है।

१७०

तेरे नेत्रों की सीमा नहीं है ? मन की सच बात तो यह है कि–अब मैं दृष्टि नहीं चुराऊंगी–अपलक तुझे देखती ही रहूंगी। तेरे कटाक्ष को देख कर कमल, मीन, मृग सभी अपने आपको भुला बैठे हैं। तेरा भ्रकुटि–विलास सचमुच गिरिधर को रिझानेवाला है।

युगल–स्वरूप वर्णन—

१७१

राधिका गिरिवरधर की जोड़ी बहुत ही अभिराम है। ऐसा लगता है कि–दोनों ने कोटि मन्मथ और रति की सुन्दरता को छीन लिया हो। श्यामसुन्दर भी नूतन वय हैं और वृषभानु–सुता भी नवल गौरी हैं। रसिकवर श्याम और रसिकनी राधा परस्पर मुख–निरीक्षण नहीं कर रहे है मानों–तृषित चकोरी इन्दु का सुधापान कररही है। युगल मूर्ति में अवर्णनीय प्रीति की वृद्धि हो रही है।

१७२

रसिकनी श्रीराधा सदा रस में ही गड़ी रहती है। यह वृषभानु–नंदिनी सोनजुही की लता–जैसी श्याम तमाल का अवलम्ब लेकर बढ़ी है। प्रियतम के संग विहार करने में उसने दक्षता कहां पाई कहा नहीं जा सकता ? उसने गिरिधर के संग ही क्रीडा–करने का अभ्यास किया है–ऐसा ज्ञात होता है।

छाक–[वनभोजन]—

१७३

सुबल सखा गोवर्द्धन पर चढ़ कर बुला रहा है कि–

"ओरी! छकहारियो! छाक जल्दी लेकर आवो, गिरिधर तुम्हारे आने की वाट जोह रहे हैं"।

वन में विलम्ब हो जाने से जब भूख लगी और उपरेना फेरकर सूचना दी, उसी समय छकहारी भी वहां पहुंची-और उसने प्रभु को प्रसन्न किया।

१७४

"विहारीलाल! आवो! सलोनी छाक आ गई है। चन्द्रावली ने इस पोटली में कुछ बांधकर भेजा है-इन दो तीन दोनियों में भी स्वादिष्ट वस्तुएँ हैं"

इस प्रकार ऊंचे हाथ हिलाकर सखी श्याम को वुलाती, छाक लेकर उनके आगे पहुंच जाती है, और गिरिधर को अनेक प्रकार से रिझाती है।

१७५

वन में घर-घर से खट्टे मीठे सलोने सभी प्रकार के पक्वान्नों की छाक आई है। यमुना-तट पर लता-मण्डप में मंडली बनाकर गोप ग्वाल सभी मिलकर जेंम रहे हैं, और स्वाद की सराहना करते जाते हैं। वलदाऊ और मोहन हाथों में दोना ले-लेकर सभी को बांटते जाते हैं-स्वयं आप भी सखाओं की तरफ देख २ कर चखते है और गोपियों के मन को मोह लेते हैं। टेंटी, शाक, संधाना, रोटी और गोरस तथा महेरी का स्वाद ले-लेकर रस-लंपट गिरिधर खाते और नाचते जाते हैं।

१७६

"अरे! श्यामढाक की गहरी छाया में वैठे तुम सब देर क्यों कर रहे हो? देखो मैं छाक लेकर आ गई। इधर देखो उमड़-घुमड़ कर चारों ओर से घटा उठ आई है और तुम सब निधड़क घूम-फिर रहे हो।"

भोजन—

१८३

"मोहन तिवारी में विराजे भोजनकर रहे हैं, अरी! अभी वहां मत जा, कईबार तुझे बरजा पर सिंहपोरी तक जाकर तू बार-बार लौट आती है"। इसी समय रोहिणी बाहिर आई और मुंह पर आंचल लगाकर हँसती हुई बोली "अरी! तुम बड़ी मदमाती हो, श्याम को देखने को बड़ी उतावली हो रही हो? कोई गरजती हो, कोई लरजती हो, कोई ताली बजाती हो। प्रभु गोवर्धनधर अभी-अभी तो थाली पर विराजे हैं। थोड़ा भोजन तो कर लेने दो?"

१८४

"आज मोहन हमारे घर भोजन करें व्रजरानी! ऐसी कृपा करो-उन्हें भेज देना घर दूर नहीं है। मैंने सब तयारी लगा ली है। हमने बड़े प्रेम से खट्टे-मीठे अनेक प्रकार के पक्वान्न बनाये है, जो श्यामसुन्दर को अच्छे लगते हैं"।

इस प्रकार की प्रेम प्रार्थना सुनकर रोहिणी ने जसोदा से कहा कि—आपने इसकी प्रेमभरी वाणी सुनी? यशोदा मन ही मन रहस्य समझकर मुसकाने लगीं। उन्होंने बलदाउ को और सखाओं को बुलाकर मिस बनाकर अलग भेज दिया। प्रभु गोवर्धन ने गोपियों के घर पधारकर उनका मनोरथ पूर्ण किया।

आवनी—

१८५

"अरी! बन से मदनगोपाल की आवनी तो देख? इनकी चाल देखकर मत्त ऐरावत भी लज्जित हो जाता है। श्यामल शरीर, कटि में पीत बसन और वक्षःस्थल पर वनमाला मन को हरलेती है। भौंह-रूपी धनुष पर तीखे लोचनों की चितवन कामदेव के

वाण समान हृदय में विंध जाती है। गोरज-मण्डित अलक और भाल पर कस्तूरी-तिलक रमणीय लगता है। नंद-कुवर गोवर्द्धनधर का सुन्दर हास्य जगत को मुग्ध कर लेता है"।

१८६

"देखो देखो! धेनुओं को साथ लेकर हरि वन से चले आ रहे हैं। ऐसा विदित होता है कि—संध्या समय पूर्व में पूर्ण चन्द्र का उदय हुआ हो। वृन्दावन-रूपी गगन में वालकवृन्द-रूपी नक्षत्रों की छटा देखते ही मन चुरा लेती है"।

इस रूप-सुधा का पान करके नयन चकोर सरस हो जाते हैं। गिरिधर प्रभु इस प्रकार व्रजजनों को आनन्द देते रहते हैं।

१८७

वन से आते समय मोहन ने चित्त हरलिया। सखी! मैं सायंकाल अपने घर निश्चिन्त बैठी थी कि-उनका दर्शन करते ही मुझे अपने वस्त्रों तक की सँभाल नहीं रही। श्यामसुन्दर का रूप देखकर धैर्य जाता रहा। प्रभु गोवर्धन-धर अंग-प्रत्यंग में प्रेम-सुधा से भरपूर हैं।

१८८

एरी! सखी! श्यामसुन्दर श्रीमस्तक पर लपेटा फेंटा धारण किये हैं। उस पर सोने की जरकशी कीहुई चंद्रिका शोभित है। तिरछी मोतियों की लड अलकावली पर लटक रही है। गोचारण से मुखारविन्द पर लगी गोरज औरभी कमनीय लगती है। इस प्रकार वन से वनठन कर आते हुए वनवारी गिरिधारी को व्रज-युवतियाँ निहारती हैं, और छवि पर तन-मन-धन न्यौछावर करती हैं।

१८९

सभी गाएं गोवर्धन से चरकर लौट आई हैं। श्रीनंद-नंदन

बछड़ा चरारहे थे, उन्होने वेणु बजाकर ज्योंही उन्हें बुलाया गोपबालकों के घेरे वे घिर न सकीं, और आतुर होकर दौड़ीं। मदनमोहन पर वात्सल्य उमड़ आने से उनके एनों से दूध की नदी-सी बह चली। व्रजराजकुंवर के सौन्दर्य को देखकर उनकी आँखे शीतल हो गई। वे प्रभु के चारों ओर चित्रलिखी-सी आकर खड़ी हो गई,

१९०

अरे ! गायों को जल्दी ही घेर लो। वे खादर में इधर उधर फैल रहीं हैं, उन्हें मुरली सुनाकर बुला लो। इन्होने जमुना में चार अंजुली भी पानी नहीं पिया-वे तृप्त हो गई। हुलकती हुंकारती बछड़ों की सुधिकर वे खिरक की ओर दौड़ पडी हैं। और भी जो-इधर उधर हों उन्हें घेर लो। अब दुहने का समय हो गया है चलो घर चलें।

१९१

गोपाल के वदन पर आरती उतारूं। चित्त की सुंदर बाती बनाऊं और अनेक युक्तियों के घी और कपूर मिलाकर उसे संजोऊं। आरती के समय ताल, डफ, शंख, मृदंग, झांझ, घंटा-आदि वाद्यों की सुन्दर ध्वनि करूं। जिव्हा से सरस यश गाकर अपने हाथों उन पर चंवर ढुलाऊं। कोटि-कोटि सूर्य के समान दमकते अंग-प्रत्यंग का दर्शन कर सभी लोकों का अन्धकार दूर करूं। इस प्रकार लाल गिरिधर के रूप को अपने नेत्रों से भर-भरकर देखूं।

आसक्ति-वर्णन—

१९२

नागरी ! तू नंद-भवन आने के लिये कितने उपाय ढूंढ निकालती है ? और वृथा की कितनी बातें बनाया करती है।

प्रातःकाल से लेकर सांझ तक तू अवसर ही देखा करती है, तू बड़ी चतुर है, टोकने पर तत्काल उत्तर दे देती है। तुझे अपने घर एक क्षण भी चैन नहीं पड़ता ? रोकने पर भी तू नहीं मानती ? मुझे जान पड़ता है कि—लाल गिरिधर से तेरा मन लगगया है।

१९३

अरी ! तू तो नैन की सैन से ही सब बातें कह देती है। ऐसा मालुम पड़ता है इनके भीतर बहुत-सी रसनाऐं और चालें भरी हुई हैं। व्रजसुन्दरि ! हम से इतना छल कपट क्यों ? मेरी विनतियों पर तूने थोड़ा भी ध्यान नहीं दिया। ये तेरे नेत्र बड़े चपल दूत हैं-बड़ी २ युक्तियाँ ढूंढ लेते हैं। तेरे मन में जैसी तरंग उठती है तू उसकी युक्ति भी निकाल लेती है ? सदा श्याम सुन्दर की घात लगाए रहती है। अपने सभी मनोरथ पूरेकर हृदय को सन्तुष्ट कर लेती है। यह निश्चय है कि-गिरिधरलाल के चित्त में दिन-रात तू बसी रहती है।

१९४

'तू नंदराई के घर क्यों आती जाती है- ये तेरा भेद क्या मुझे नहीं मालुम है ? अरी ग्वालिनी ! यह तो बता तेरी जाति क्या है ? सांझ-सवेरे तुझे यहीं देखती हूं-तुझे रात कैसे कटती होगी ? घर के कामधंधे तूने सभी छोड़ दिये, घर के स्वामी से भी तुझे संकोच नहीं आता ? सच है-तेरा मन मदनगोपाल से उरझ गया है, इससे तुझे घर में चैन नहीं पड़ता। नयनों से लाल गिरिधर के रूप का पान करती तू अघाती नहीं है ?

१९५

सखी ! श्याम-स्वरूप के निहारते ही तेरे नयन इकटक ही रह गये। नागरी ! तू ठिठक कर रह क्यों गई, एक डग भी न चल

सकी ? तब तू एसी लगी मानों--चित्र में चित्रित कर दी हो। तेरे सिर बड़ी कठिन मोहिनी पड़ गई है, चेताए बिना कब, किसी की शंका मानती है ? लाल गोवर्द्धनधर ने सचमुच ही तेरे तन, मन दोनों चुरा लिये हैं।

१९६

तूने ज्योंही स्मित हास्य किया – तू गोपाल के मन में समागई। मदनगोपाल तुझ मृगनयनी को देखते ही रीझ गये। उनके हृदय में तू जा बसी।

किशोरी ! तेरी गज सरीखी चाल, सूक्ष्म कटि, कसी हुई कंचुकी, हेम–सा वर्ण, और शरदचन्द्र–सा मोहक तेरा मुख है। सघन निकुंज में तुझे बुलाते हुए व्रजनायक चले गए।

यह सच है कि–ऐसी कौनसी स्त्री है ? जो–गिरिधर के मुख कमल को देखते ही आर्य–पथ से विचलित न हो जाय ?

१९७

मोहन ने कुछ मोहिनी विद्या–सी कर दी है ? तभी तुझ से मिले बिना रहा नहीं जाता। वास्तव में नई प्रीति बड़ी कठिन होती है। अरी ! मृगलोचनी ! जब से तू नंद–नंदन के साथ खेली तभी से तुझे घर–बार नहीं सुहाता, अकेली बन–बन में डोलती फिरती है। रातदिन तेरे प्राण वहीं अटके रहते हैं, वन निकुंज की द्रुमबल्लरी–सभी तू ढूंढती फिरती है। तू निश्चित ही गिरिधर की प्रीति में अटक कर कुल–मर्यादा को भी छोड़ बैठी है ?

१९८

सखी ! जब से मोहन से आँखें चार हुई–तभी से मैं ठगी–सी खडी रह गई, अंचल संभलना भी भूल गई। सहज ही नंद–घर आई थी कि सहसा श्यामसुंदर दीख

पड़े, बस टकटकी लग गई, पैरों ने आगे बढ़ने से जवाब दे दिया। प्रयत्न करने पर भी चित्त टस-से-मस न हुआ। मदनमोहन के स्नेह के कारण कामकाज भी छूट गया।

कुंभनदास कहते हैं कि—गिरिधर तो प्रेम रस के लोभी हैं तूने भी आर्य-पथ को अच्छा निबाहा ?

१९९

बिना देखे तेरे नेत्रों में चटपटी लगी रहती है। अरी! तेरे ऊपर नंदनंदन की ठगौरी तो नहीं पड़ गई है ? घर के सभी कामकाज छोड़ दिये, तुझ से एक घड़ी भी शान्त बैठा नहीं जाता ? आते-जाते किसी का डर भी नहीं लगता ? कठिन हिलग के कारण लोकलज्जा भी अब तुझे नहीं रही। प्रभु गोवर्द्धनधर ने मन चुराकर तुझे अपने वश करलिया है ?

२००

तेरे लोचनों में चटपटी-सी लगी रहती है। माई! मैं तुझे बराबर देखती हूं तू थोड़ा पलक लगाना भी नहीं सह सकती। श्यामसुन्दर की रूपमाधुरी देखकर तुझे अंगड़ाई आती है। यह तो बता-तू प्रिय गिरिधर से आँखों-आँखों में क्या बात करती रहती है ?

२०१

माई! देखो यह ग्वालिनी उलटी रई से रीती मथनियां में दही बिलोरही है। हाथों में नेत भी तो नहीं है, चंचल हाथों से योंहीं माखन निकाल रही है। गिरिधर के सुंदर रूप पर इसका चित्त चिहुंट गया है-इकटक उनके मुखकमल को देख रही है। इसी अकबकी में दही तो वह भूल गई है-और दूसरा ही पात्र धोने लगी है।

२०२

सखी! मनोहररूप यह सांवला नंद का लाला मेरे पीछे-पीछे लगा डोलता है, और तू मुझे ठपका दिया करती है? उसे तो दूसरों के अंग-स्पर्श की लालसा रहती है, कहने पर भी नहीं मानता। सच तो यह है कि-गोवर्धनधर श्याम मुझे बहुत प्यारे लगते हैं।

२०३

' प्रेम पूर्वक झुक-झुककर सोती हुई गोपी सुन्दरी के मुख से मुख मिलाकर श्यामसुन्दर सौन्दर्य देखते हैं। उसके जगने की शंका से ठिठक जाते हैं-फिर देखने लगते हैं। कभी आंचल पकड़कर खेचते हैं-कभी हाथ पकड़कर खेचते हैं-कभी हाथ पकड़ कपोल-स्पर्श करलेते हैं। अपने मन की चाहना पूरी करते हैं। इस प्रेमरस में कोई अनरस मालुम नही पड़ता, हृदय का ही प्रेम प्रगट होता है। बस, गिरिधर का ध्यान ही सब में श्रेष्ठ है, और सब रस फीके हैं।

२०४

प्रियतम श्याम बारबार वृषभानु-नंदिनी के रूप, रस, प्रेम की सराहना करते हैं। श्यामस्वरूप और गौरस्वरूप दोनों इस प्रकार मिले हैं-जैसे घन और दामिनी।

कुंभनदास कहते है कि-प्रभु गिरिधर सौन्दर्य के कारण श्रीराधा के वश में हो गये हैं। सखियाँ दोनों का गुणगान करती हैं।

२०५

अरी! माई! ज्योंही उनकी इकटक दृष्टि श्रीराधा के सुन्दर मुखचन्द्र पर पड़ी, वे गाय-दुहना भूल गये स्तब्ध रह

गए। नवल नागरी श्रीवृषभानु-कुमारी भी तो परम चतुर और लावण्यरूप हैं।

कुंभनदास कहते हैं कि- श्रीराधा की तिरछी भ्रकुटि के कुटिल कटाक्षों ने श्यामसुन्दर का मन हरलिया है।

आसक्ति-वचन

[प्रभु प्रति] २०६

अहो मोहन! तुम हृदय को परम प्रिय हो। नयनों के आगे से ओझल मत होओ। मैं जबतक जीती रहूं तबतक तुम्हें देखती रहूं। आपके पैरों पडती हूं-देखो दूसरे ठिकाने चित्त न लगा देना? मुझे तबतक चैन नहीं पडता जब तक आप अंकभर के मिल नहीं जाते। नन्दनन्दन! तुम तो परम रसिक हो। मेरे सभी दुःख मेट दो। घर आने-जाने रहने में प्रभु गोवर्द्धनधर! तुम्हें किसी से डरने की क्या आवश्यकता? तुम तो अरि-दमन हो।

२०७

लाल! तुम्हारी चितवन चित्त चुरा लेती है। नंदगाम और बरसाने के बीच में आना-जाना कठिन हो गया है। मैं मार्ग में आते-जाते डर जाती हूं। ललिता आदि सखियां और भी डरपा देती है। *

[सखी प्रति] २०८

छबीले गिरिधरलाल धौरी धेनु दुह रहे थे। उन्होने थोड़ा-सा मुडकर मुझे जो देखा तो उनका वदनकमल देख कर मैं भी अपने को भूल गई। कंकण, कुण्डलों की झलमलाहट, शरीर पर लगी चंदन की खौर, श्रीमस्तक पर पीत टिपारा

* यह पद स्पष्ट रूप में नही मिला।

और पीत पिछोरी से उनकी कान्ति भी दुगुनी होरही थी। सखि! क्या करूं? मुझे कल नहीं पडता, कुछ ठगौरी-सी लग गई है, अब तो श्यामसुन्दर को अंक भरकर न भेटूंगी तबतक चैन नहीं होगा।

२०९

माई! मेरे नयन आतुर हो रहे हैं-इन्हें श्यामसुन्दर के दर्शन कर लेनेदो। इन नयन चकोरों को वदनचन्द्र की किरणों का पान किये विना चैन कहां? दर्शन-बिना कितने दिन बीच में निकल गए। रोम-रोम में लालसा भर रही है। जब सुखदाता गिरिवरधरण से गले लगकर मिलूंगी तभी शान्ति हो सकती है।

२१०

अरी माई! अब मैं क्या करूं? कमलपत्र विशालनेत्र श्यामसुन्दर ने तो मेरा मन ही चुरा लिया है। बंधु-बांधव, लोक-कुटुम्ब, परिवार सभी ने मुझे कई वार समझाया-पर मैं तो मुग्ध हो गई हूं। यशोदा के घर जाए बिना रहा ही नहीं जाता। हृदय की तीव्र लगन के कारण मैने सभी लाज भुला डाली है। प्रभु गिरिवर-धारी ने मन्द मुसकान द्वारा मेरे ऊपर ऐसी ठगोरी डाली है कि-छुटकारा कठिन है।

२११

मेरे चित्त में तभी से कल नहीं पड़ती जब से उस श्याम का रूप निहारा है। अंग-अंग की शोभा का क्या कहना? आली! ऐसा लगता है मानों एक-एक अंश में कोटि कामदेव का प्रागट्य हो गया है। कन्हैया जब सुन्दर भेष धारणकर जारहे थे, उनके श्यामल अंग की छटा ने मेरा मन हरलिया, अब तो उनके विरह में एक-एक पहर कल्प के समान बीत रहा है।

२१२

नयनों से नयन मिलाकर कुछ संकेत देते हुए श्यामसुन्दर प्रीति-जोडकर वन में चले गए।

जब से नंदनंदन उसे दीख पड़े, तभी से उसे घर-आंगन काटने को दौडने लगा। मन अत्यन्त आतुर हो उठा क्षण-क्षण कल्प के सदृश्य व्यतीत होने लगा। वह मृगनयनी सज-सिंगारकर सबकी दृष्टि से बचती हुई कुंज-वन में जाकर लाल गिरिधर से जामिली।

२१३

इस मन की लगन बड़ी कठिन है। सजनी! देखो? इसी कारण सभी लाज छोड़ देनी पड़ी। धर्म जाओ, सभी लोग हँसो, और कुल को लांच्छन लगाओ, गाली दो-पर हृदय-हितकारी से मिले विना अब नही रहा जा सकता। संगीत रसिक मृग के समान रस का लोभी अपनी प्रिय वस्तु को एक क्षणभर भी छोड़ नहीं सकता-भले ही उससे अनिष्ट हो जाय? सच तो यह है-कि सहज स्नेह का मर्म तो गोवर्धनधर ह जानते हैं।

२१४

क्या करूं? वह स्वरूप मेरे हृदय से टलता ही नहीं है नंद-कुमार के विछोह के बाद रात-दिन में कभी नींद ही नः आती। उनका वह मिलन एक क्षणभर को भी नहीं भूलता चित्त में उनके गुणों का स्मरण होते ही नयनों से आंसू ढलक लगते हैं। कुछ अच्छा ही नही लगता, मन में तालावेली-र मची रहती है। विरह-अनल से जली जा रही हूं। अब ला गिरिधर के विना कौन समाधान कर सकता है?

२१५

सुंदर सॉवरे ने न जाने क्या करदिया। नेत्रद्वार से हृदय में घुसकर उन्होनें मन-माणिक चुरा लिया है। मार्ग में मुझ से दही छुड़ाकर उन्होने पी लिया, मुख-चुंबन कर मन्द मुसकाते हुए उन्होने मेरा स्पर्श कर लिया। सखी! उस मधुर मिलन को स्मरण कर अब पछिताती हूं कि-मैं संग ही क्यों न चली गई? लाल गिरिधर के बिना अब मेरा जीवन भी दूभर हो गया है।

२१६

मेरी ऑखों को तो अब यही टेव पड़ गई है। सखी! क्या करूं? कमल पर भँवरी के समान यह ऑखें वदन पर जा अटकती हैं। ठहर-ठहरकर यह प्रियतम के मुख का पान करती हैं-एक घड़ी भर भी विरत नहीं होतीं। ज्यों-ज्यों यत्न करती हूं त्यों-त्यों और भी कठोर बनती जाती हैं। प्रेमामृत से मत्त हो कर अब तो यह रूप-समुद्र में जा डूबीं हैं। गिरिधर का मुख देखते २ सारी निधि लुट जाती है।

२१७

माई री! नागर नंदकुमार मेरी ओर देखकर हँसे। मने देखा-उनका नव मेघ जैसा श्याम वर्ण, श्रीशोभासम्पन्न मुख और दामिनी जैसी दन्तावली दमक रही थी। नयन-द्वार से वह हृदय-भवन में आकर धँस बैठे। इस प्रकार लाल गिरिधर सदा के लिये मेरे प्राणों में आकर बस गये हैं।

२१८

मेरे लोचन करमराते हैं। गिरिधरन-छबीले को देखने के लिये बहुत प्रयत्न करते रहते हैं। घनश्याम जैसे शरीर में चन्द्रवदन देखने के लिये अधिक तृषित बने रहते हैं। चकोर

और चातक की भांति इनका भी किसी और से समाधान नहीं हो सकता, ये वस में नहीं रहते।

२१९

हरि के मधुर वचनों ने मोहनी-सी करदी है। ज्योंही इस मार्ग को छोड़ने को मुझ से कहा गया, काम के बाणों से शरीर घायल हो गया। सखी! शरद-कमल सदृश और चंचलता की सीमा इन नेत्रों के द्वारा परम सुजान श्याम ने जब से गूढ भाव का संकेत किया है, तब से कुछ भी अच्छा नही लगता, चित्त में चैन नहीं आता। मुझे तो मनोहारी गिरिधर ने अचानक ही ठग लिया है।

२२०

सजनी! मुझे मान करना आता ही नहीं है। वह चितवन, वह मधुर मंद मुसकान सभी दुःखों को भुला देती हैं। पल-भर उनके ओझल होते ही छटपटा जाती हूं-नेत्रों में चटपटी पड़ जाती है। प्रभु गिरिधर से तो रूस जाने पर भी बोलने को मन होता है।

२२१

सजनी! यदि मिलने की उत्कण्ठा हो तौ फिर कोई लाख बाधाएं डाले-उसके बिना कैसे रहा जा सकता है? दोनों ओर विरह व्यापता है, तभी कुछ काम बनता है। उस समय लोक-लाज, कुल-मर्यादा, इनमें से किसी की भी चित्त परवाह नहीं करता। मन में इस चोंप के लगजाने पर फिर कुछ अच्छा नहीं लगता। रसिक गिरिधरलाल को देखे बिना एक-एक पल कल्प के समान निकलता है।

२२२

माई! प्रेम तो किसी से भी न करै। वियोग में बड़ी

कठिनाई आ पड़ती है। उस समय जीना भी असंभव-सा हो जाता है। इस प्रेम में रत्ती-रत्ती संग्रह करना और हिल-मिलने पर सर्वस्व दान करदेना पड़ता है। एक निमेप के सुख के लिये युग-समान दुःख झेलना पड़ता है। जान समझकर भी विप जल क्यों पिया जाता है, कुछ समझ में नहीं आता ? गोवर्द्धनधर इस अवस्था को स्वयं जानते हैं, इसमें खेद उठाकर शरीर को छिजाना पड़ता है।

२२३

सखि ! चतुर नागर नन्दकुमार ने नयनों से नयन मिलाकर मेरा मन चुरा लिया है। कमलनयन झरोखा में बैठे थे, और मैं इधर उस गली से आरही थी-श्याम की मनोहर मूर्ति आँखो में आते ही मैं काम-बांणों से आहत हो गई। आली ! अब मैं वहाँ क्या मिस बनाकर जाऊं, जो उस सुजान से मिलाप हो सकै ? गोवर्द्धनधारी ने मुझे अचानक ही भरमा लिया है।

२२४

माई ! तुम देखो ? इन नेत्रों ने मेरा मर्वस्व हरकर हरि को समर्पित कर दिया है। घर के चोर को चोरी करने से कैसे रोका जाय ? क्या करूं अब तो मेरा बस ही नहीं रहा। तन, मन, बुद्धि और हृदय सभी परवश हो गये ! गिरिधर-बिना मेरा जीवन अब किसी प्रकार नहीं रह सकता।

२२५

अरी ललना ! श्याम मनोहर बन जाते २ मेरे घर के आगे जो बात कह गये-उसे कैसे पूरा करूं ? तभी से मुझे कुछ भी नहीं सुहाता। प्राणपति को देखे-बिना कल नहीं पड़ती। उधर

गोवर्द्धनधर मेरा मार्ग देख रहे हैं, इधर मेरा एक पल-भर नेत्र भी नहीं लगता।

२२६

मोहन के नेत्रों ने मेरा मन मोह लिया है। भृकुटि-विलास और चपल चितवन से ऐसा भान होता है मानों-वे कामदेव को नचा रहे हों। रसिक-शिरोमणि गोवर्द्धनधर ने अपने कटाक्ष द्वारा जो बात कही वह समझ नहीं पड़ी, अचानक उन्होंने मुझे ठग लिया है, अब तो सुखपूर्वक रहना कठिन हो गया है।

२२७

माई! इस नंद के ढोटा ने तो मुझे बहका लिया है। देखते ही कुछ टोना किया और मोहन मंत्र-सा पढ़ डाला है। विकल मन होकर इधर-उधर डोल रही हूं, बिना देखे रहा नहीं जाता। बाट, घाट, बन, बीथी-जहां भी ढूंढने जाती हूं लोग मुझे पागल बताते हैं। मेरा मन श्याम के सौन्दर्य-सागर में डूब गया है, ढूंढते २ हार गई। कि—गोवर्द्धनधर ने क्या बात समुझाकर कही थी।

२२८

सखि! जब से नयन भरकर नंदकुमार को देखा तभी से भूल गई हूं, पति-परिवार सब छूट गये हैं। अब देखे बिना मैं विकल हो रही हूं। सब अंग थक गये हैं, जब साँवरी मूर्ति की सुध आती है तब लोचनों में नीर भर-भर आता है। उस रूप-राशि की तो कोई सीमा ही नहीं है-उस कन्हाई से फिर कैसे मिलूं? मेरी प्यारी सजनी! एकबार फिर प्रभु गोवर्द्धनधर से तू मुझे किसी प्रकार मिला दे।

२२९

माई! अब तो ऐसा लगता है कि—सदा गिरिधर के गुण

गाती रहूं। मेरा तो यही व्रत है, अन्यत्र रुचि नहीं। लाडिले! एक वार आंगन में खेलने को आ जावो, तो थोडा-सा तुम्हारा दर्शन पालूं? मुझे तुम्हारे प्रति लगन लगगई है, इस कारण इसी लालच में पड़ी हुई हूं।

२३०

सुंदरि! मेरे लोचनों में टगटगी-सी लग गई है। लाल गिरिधर के नखशिख-अंग की शोभा देखते २ अनमनी-सी हो गई हूं। मैं प्रातः उठकर घर से दही-वेचने निकली कि—श्याम सुन्दर से मार्ग के अधबिच ही भेट हो गई। बस घर-व्यवहार मन्न भूल बैठी। ग्वालिनी! मैं मनसिज संकल्प से व्याकुल हो गई।

कुंभनदास कहते हैं कि— गोपी की ऐसी दशा देखकर प्रभु ने प्रीति कर उसे स्वीकार करलिया।

२३१

नंद-कुमार ने कमलदल लोचन की चपल चितवन से मेरा मन हरलिया। इससे बुद्धि भी ठिकाने नहीं रही, शक्ति न जानें कहां चली गई? अंग सब विकल हो गए। घर का काम-काज भी भूल गई। अब ऐसी दशा में लाल गिरिधर के बिना दूसरा कोई उपचार नहीं है।

२३२

रूप देखकर नेत्रों के पलक लगते ही नहीं हैं। गोवर्द्धन-धर के जिस २ अंग पर दृष्टि गई, वह वहीं जमकर रह गई। क्या कहूं? कुछ कहते भी नहीं बनता। उन्होंने दही क्या मांगा? मेरा चित्त चुरा लिया।

कुंभनदास कहते हैं कि—उस गोपी ने इस प्रकार प्रभु से मिलने की अपनी बात सखियों से कह डाली।

२३३

माई! मेरा मन तौ हरि के संग चला गया? किस को दोष दूं? उसे तौ नेत्रों ने परवश कर दिया। नंद-कुमार ज्योंही दीख पडे-नेत्रों ने उनके श्यामल स्वरूप को अपने भीतर धर लिया। मैं गिरिवरधरन से भी क्या कहूं? इन नेत्रों ने उन्हें बलात् अपने भीतर जो छिपा लिया है।

२३४

नंद-नंदन की बलिहारी जाऊं। उनके श्यामल, मृदुल तन की कान्ति देखकर क्यों न सुख उठाऊं? सभी लोक के पति, श्रीपति और ठाकुर का विमल यश अपनी रसना से गाते रहना चाहिये। परम रसिक प्रभु गिरिवरधर को तन-मन सर्वस्व निवेदन कर देना चाहिये।

२३५

मोहन की मनोहर मूर्ति मन में बसगई है। उनका अंग श्याम आकाश सदृश और मुख शोभायमान शरदकाल के पूर्ण चन्द्र-जैसा है। उन्हें गोप-वृन्द के साथ खेलते देखकर सखी! मेरे ऊपर काम-भुजंगम का विष-सा छा गया। अब तो रसिक गिरिधरलाल के प्रेमरस में मैं मग्न हो गई हूं-उन्हें जब देखूंगी तभी सुख होगा।

२३६

सखी! मेरा और उनका एक ही गांव का निवास है। तू ही बता मैं धीरज कैसे धरूं? यद्यपि मैं प्रयत्न करती हूं पर लोचन-भ्रमर रोकने पर भी नहीं रुकते। यहीं से उनका गौ-चराने जाना और वहीं से मेरा दही-बेचने जाना-बस देखते ही मैं पुलकित, गद्गदस्वर और आनन्द भरित हो जाती हूं। जब वे ओझल हो जाते हैं तौ एक-एक क्षण कल्प-समान

बीतता है, मैं विरह–संतप्त हो जाती हूं। अब तू ही बता ? मैं कुल–मर्यादा से कहां तक डरती रहूं ?

२३७

मेरी माई ! अब क्या करूं ? जब से नंद–नंदन दीख पड़े हैं, घर--आंगन कुछ भी नहीं सुहाता। 'तैने कुल की लाज छोड दी' यह कह कर माता–पिता त्रासते हैं–घर में तो यह दशा है, और बाहर–'देखो ! देखो कान्हा की सनेहिनी आई' ऐसी बातें लोग आपस में चलाया करते हैं। रात–दिन मुझे कल नहीं, घर–द्वार काटने को दोडते हैं। प्रभु गोवर्धनधर ने तो हँसकर मेरा चित्त चुरा लिया है।

२३८

सजनी ! मेरा मन मोहन से उलझ गया है, छुड़ाने पर भी नहीं छूटता। चारों ओर से प्रेम ने घेरा डाल रक्खा है। उनके शरीर में नख से शिख तक रंगीली आभा है–और मंद मुसकान में महान् रस झलकता है। मुझे लाल गिरिधर के बिना कोई नहीं सुहाता।

२३९

सखी ! इस लोचन–द्वार से भीतर आते अब उन्हें कौन रोके ? आँखो की पुतली भी उनही की पोलिया बन गई हैं। भीतर जाकर उन्होने अंजन रूपी छड़ लगाकर पलक रूपी कपाट दे दिये हैं। रूप–रस में छके रहकर हरि ने वहां रात दिन रहकर मनके सभी पात्रों को ढूंढ लिया है।

२४०

सदा गोवर्द्धनराय को देखती ही रहूँ। मनसा वचसा बस इन्हीं का हो जाना है। सुनो सखी ! मेरा मन उन्हीं के हाथ

बिक चुका है। सुंदर श्याम कमलदल लोचन लाल गिरिधर ज्योंही मेरी ओर मुंह कर मुसकराए बस उसी समय से नेत्रों के भीतर समा गए हैं।

२४१

अरी माई! श्याम तो मेरे संग लगा ही डोलता रहता है, मैं जहां जाती हूं वहीं वह आ पहुंचता है। बोले बिना ही मुझ से बोलने लगता है मैं क्या करूं? इन लोभी लोचनों ने बिना मोल के मुझे विवस कर लिया है। वह गोवर्धनधर हँस कर अपने हाथों मेरा घूंघट खोल देते हैं। मैं कुछ भी नहीं कह पाती।

२४२

मैंने मदनमोहन से प्रेम किया है—अब भले ही कोई मुंह मोड़ता रहे। इस व्रत से कभी टलनेवाली नहीं हूं—मैंने सभी से नाता तोड़ लिया है। भले ही सास रिसा जाओ, माता मुझे त्रास दो—मैंने तो तो पति से भी घट-स्फोट—सा कर लिया है। मैं गिरिधर से मिले बिना नहीं रहूंगी। अब तो सभी के साथ आर्य-मर्यादा का व्यवहार छोड़ दिया है।

२४३

मेरे वामांगों के फरकने से लाल के मिलने की बात मुझे मालुम पड़ गई है। आज प्रातः प्रिय आवेंगे एसी आनंद की बात सुनकर आँखे पहिले ही मिल आई। इस आनंद में मै हाथों को कंकण, हृदय को मोतियों का हार पारितोषक में दूंगी—जिन्होने प्रियतम की बात चलाई है। जब गिरिधर आवेगें तब सखी! में आनंद बधाई मनाऊंगी।

२४४

आली! 'संकेत क्या होता है' यह मैं क्या जानूं? श्याम सुन्दर का नाम ले-लेकर मुझे सभी चिढ़ाते हैं। सखी! न तो कानों

से सुना न आँखों से देखा ही कि वह कृष्णवर्ण है या श्वेतवर्ण। बात यह हैं कि—जिमका जिससे प्रेम होता है वह फिर कुछ सोचता विचारता नहीं है।

२४५

अरी सखी! मैं तो उनका मुख देखकर ही जीती हूं। मेरा न तो कोई सगा है न सम्बन्धी, न मैं किसी की कोई हूं—यह सब को सुनाए देती हूं। जो मेरे मन आवेगा वही करूंगी—तू भले ही कहा कर।

कुंभनदास कहते हैं कि— यह हिलग की बातें निवेरने (सुलझाने) से निवेड़ी (सुलझाई) नहीं जा सकतीं।

२४६

तूने तो व्रज-मोहन को मोह लिया है अब तू क्यों न ऐड़ी २ डोलेगी? वह वन में गाय चराना भूल गए। मैं पूछती हूं—तू ही बता वे कब किसी से बोलते हैं? उनका लकुट कहीं, मुरली कहीं, पीताम्बर कहीं पड़ा है, कहीं आभूषण खुले पड़े हैं—यह सब क्या है? तूने गिरिधर को वश कर लिया है अब यह बात प्रसिद्ध हो गई है।

२४७

मान—

सखी! तेरी ये मन को लुभानेवाली बातें जब तक सुनाती रहती हूँ तब तक गिरिधरलाल को आनन्द आता रहता है। थोड़े से भी समय के लिये घर आती हूँ उन्हें चटपटी-सी लग जाती है। उन्हें किसी प्रकार चैन नहीं पड़ता। वे बुलाने के लिये एकके बाद एक को भेजते रहते है। बारंबार यही चर्चा चलाया करते हैं—उन्हें और कुछ सुहाता नहीं है। प्रभु श्याम सुन्दर अत्यन्त आतुर है। तुम तो उनके प्रेम को प्रबुद्ध करनेवाली हो।

अरी ! देख, तुझे बुलाते हुए श्याम मनोहर कदम्ब खंडी में छांह में बैठे तेरी प्रतीक्षा कररहे है। वहां वृक्षों पर पुष्प फूले हैं, अलिकुल गुंजार और कोकिला मधूर कूजन कर रही है।

इस प्रकार दूती के वचन सुनकर व्रजकुंवरी के मन में उल्लास हो उठा और वह उत्कण्ठित हो कर रसिक कुंवर गिरिधर के समीप मिलने चली।

२४९

अब यही नेत्र तेरे दूतपना कर रहे हैं। नांगरी ! यह मैं जानती हूं, इसलिये मेरी बात तुझे अप्रिय लगती है। सच बात तो यह है कि प्रभु तेरे रस–वश हो गए हैं–सो कडवी मीठी–ऊंची नीची बात तुझ से नहीं कह सकती। तू गिरिधर लाल को जैसे नांच नचाती है–वे नांचते हैं। इतनी बात में ही ढीठ बनकर कहती हूं।

२५०

हरि का वदन देखते पलक नहीं लगता। वे नट–भेष धारण कर निकुंज–मण्डप में विराजे हैं। ऐसा मालुम पड़ता है मानों निष्कलंक चंद्र अपनी शोभा बिखेर रहा हो। यह अवसर बीत जायगा, विलम्ब मत कर। जो तुझे ठीक लगै तो मेरा कहा मान। प्रभु गिरिधर से शीघ्र-मिलने चल।

२५१

तुझे लेने के लिये मुझे गोपालने भेजा है। पर तू उत्तर भी नहीं देती ?-कुछ बोलती भी नहीं–और अधिक रिसाती जाती है। मैं तेरी प्रकृति समझ गई हूं–तू एसे ही अपनी जीत दिखाना चाहती है। अरी ! तैंनें अपने स्वभाव का अच्छा परिचय दिया जो आते ही लडाई ठान ली। नंदकुमार से तुझे

जो कहना है सो भले कह, तेरी मर्यादा रखने के लिये मैं नहीं बोलूंगी।

कुंभनदास कहते हैं कि—स्वामिनी ऊपर से ही सखी से रूखा व्यवहार कर रही हैं—भीतर तो उसका कहना भागया है। अन्त में वे बोली—'सखी! गिरिधरलाल सब घोष के पति और व्रज के ठाकुर हैं उनको नांहो कैसे की जाय?

२५२

तू नंदलाल को बहुत प्यारी लगती है, जब तू अपने मंदस्मित पूर्वक उनसे मिलती है। मदनगोपाल तो तुझे एक क्षण भी भूलते नहीं है। उनके हृदय में तू बसगई है। मृग-नयनी! तू श‍ृङ्गार साजकर वेश धारणकर, मांग सुधारकर, तन में चंदन लेपकर चल और उनसे शीघ्र मिलले। व्रज-भामिनि! तू कनकलता (सोनजुही) सदृश और श्यामसुन्दर तमाल सदृश हैं—दोनों का संमिलन कितना सुन्दर होगा? प्यारी! तू गिरिधर से मिल, जिससे तेरे तन—ताप की निवृत्ति हो।

२५३

अरी! मैं तुझे मनाती—मनाती हार गई पर तू न मानी? सीख सिखाते पहर बीत गया, पर तेरे ध्यान में एक भी बात न जँची। अपने रूपगुण के गर्व पर इतना क्यों इठला रही है? समझती ही नहीं, तू भोली—भाली ग्वालिनी ही है। प्रभु गोव-र्धनधर तो बहुनायिक हैं, उनसे अभिमान क्या करना?

२५४

अरी माई! मैं तुझ से कब की कह रही हूं—तू प्रियतम हरि के पास क्यों नहीं चलती? रात बीतने को आई पर तुझे तो एक 'नहीं—नहीं' की ही जक लगी है। तुझ से मिलने के लिये गोवर्द्धनधर कबके अकेले बन में बैठे हैं। बड़ा आश्चर्य

है कि-प्रभु मुझे बुलाते हैं ऐसा समझकर तू बार-बार बांह छुडा-कर बैठ जाती है।

२५५

सजनी! तुझे कान्ह निकुंज में बुला रहे हैं। देखो वसन्त ऋतु है-कानन में वृक्ष लता पुष्पित हो उठे हैं उन पर अलिकुल कल गुंजन कररहे हैं।

तू नील पट पहिर कर, नूपुरो कों उतार ले-इस समय के योग्य साज सजले। चन्द्र-प्रकाश होने के पहेल अंधियारी निशा में चुपचाप चलकर प्रभु गिरिधर से मिलले।

२५६

भामिनि! संकेत-स्थल पर हरि ने आने का वचन दिया था, अब क्यों व्याकुल होती है-थोड़ा ही दिन बाकी रहा है। प्रमुदित होकर नवल आभूषण वेश से श्रृंगार करले। अब क्यों मान धारण कर रक्खा है? देख, गिरिधर के मिले बिना एक पल भी नहीं रहा जायगा?

२५७

अरी! अब तो हरि ने तुझे बुलाया है-अब चली चल। वृथा क्यों हठ कर रही है? तुझ से कुछ अधिक कहती हूं तो तुझे रोप आ जाता है-मुख तमतमा उठता है-आँखों में आँसू भी आते हैं। मै मना रही हूं सखी! अब तो तू मान जा? देख मैं तेरे कबके पैर पड़ रही हूं? प्रभु गिरिधर से मिलने में ही आनन्द है- वृथा की बातें तू अपने मन में रखे हुए है।

२५८

सुंदरी? अब तू शीघ्र चल। देख? रात बीतने को आ गई है। विलम्ब मत कर और नंद-नंदन से मिलले। प्यारी! तू तो चतुर है-मन से वृथा की बातें निकाल दे।

श्यामसुन्दर तुझसे मिलने को अति आतुर हो रहे हैं। उन्हें एक २ क्षण युग-समान बीत रहा है। वे एकटक पंथ निहार रहे है। सखि! सुकुमार गोवर्द्धनधरण ही तो व्रज-युवतियों के मन-हरण करनेवाले हैं।

२६६

सखि! तू मेरी बात मान कर चल। नंदनंदन तेरी बाट जोह रहे हैं। व्याकुलता में एक-एक पल उन्हें कल्प-समान बीत रहा है। युवतिजनों के सन्तापहारी उनके मुखकमल को एकबार लोचन भरकर देख ले, और भामिनि! कुंवर रसिक नवल गिरिधरलाल को अंक भरकर भेट ले।

२६७

मनमोहन हरि ने तेरी सब बातें मान ली हैं। जब गिरि-धर प्रियतम एकान्त में बैठे थे, तभी मैंने उनके हाथ में तेरी पाती रख दी थी। भामिनी! दिन के बाद जबतक रात नही आई, तब तक धीरज धर।

कुंभनदास कहते हैं कि-इस प्रकार दूती के बचन सुनते ही उस युवती का हृदय शीतल हो गया।

२६८

तूने सीधे मुख से उनके साथ बात भी नहीं की? हरि तेरे भवन मान मनाने आए थे, पर तू तो बस मौन लेकर बैठ गई? अधिक मान अच्छा नहीं-कुछ तो मर्यादा होनी चाहिये। रात्रि के चारों पहर तू एक ही रस में मत्त रही। क्या करूं? अब पछताने से क्या हो? तूने गिरिधर से न मिलकर वियोग-पीड़ा सहकर वृथा अपने तन मन को काम की ज्वाला में झुलसा डाला?

२६९

सखी ! तुझ से हँसी-हँसी में कुछ कह दिया तो तू मान-कर के बैठ गई ? इतनी रिस क्यों करती है ? गोवर्धनधारी तो प्रिय और सुखनिधान हैं। अब मेरा कहा मान कर अटपटी चाल और अपना स्यानपन छोड़ दे। प्यारी ! तू स्वामी से इतना रूखा व्यवहार मत कर।

२७०

तेरे प्रियतम ने जो बात तुझ से कही उसको सुनकर अब क्यों रिसाती है ? प्राणनाथ और तेरे बीच में भेद डाले उसके सदृश अज्ञ कौन है ? अरी सयानी ! जिसके बिना रहा ही नहीं जाता, उससे क्रोध करना कैसा ? अब तो वही कर जिससे गिरिधर के हृदय से लिपट सके।

२७१

प्यारी ! सचमुच तू बड़ी अलकलडी-विचक्षण है। रात्रि-दिवस गिरिधरलाल के हृदय में ही गड़ी-सी रहती है। समीप रहने में ही तुझे सुख मिलता है। एक पल को भी साथ छोड़ती नहीं है। ब्रज-युवतियों में सब से श्रेष्ठ तू ही राधा स्वामिनी है।

२७२

तेरे मन की बातें कौन समझे ? भय की इसमें क्या बात थी ? ऐसी कौन युवती है जो नंद-नंदन के बुलाने पर न मानें ? तेरी और हरि की खूब मिलत चलती है इसीसे तू निधड़क बोलती है-यह मैं अच्छी तरह मन में समझती हूं। ब्रजसुंदरि ! गिरिवरधरण तेरे आगे अन्य को कुछ गिनते ही नहीं हैं।

२७३

प्यारी ! कहने से यह बात तुझे अच्छी नहीं लगती ? पर मैं सच कहती हूं नंद-नंदन बिना तुझ से रहा नहीं जायगा ? और फिर मुझे तू याद करेगी। राधे ! समझाने पर भी तू नहीं समझती—चतुर भी जब अनजान बनने लगें तो क्या किया जाय ? नटवेषधारी गोवर्धनधर निकुंज में बैठे हैं—एक बार उनके दर्शन तो करले।

२७४

मैं तुझे बरज रही हूं। तू प्रियतम से क्यों भेद पाड़ रही है ? सुख के निधान नंदनंदन को चलकर क्यों नहीं निहार लेती ? सखी ! झूठा कोप करने से लाभ क्या ? हठ छोड दे। अन्त में तो तुझे हार मानकर कमलनयन से मिलना ही पड़ेगा। समीप चल, अपना यौवन वृथा क्यों खोती है ?

वे प्रभु सभी व्रजाङ्गनाओं के प्रिय हैं—यह तेरे समझ में नहीं आता ? सखि ! अपने इस आचरण से रस में क्यों कुरस उत्पन्न करती है ? गिरिधर से अपना व्यवहार क्यों तोड़ती है—अपना भरा जल क्यों ढोलती है ?

२७५

अरी ! हाथ पर कपोल रखे तू अनमनी होकर क्यों बैठी है ? हलती, चलती, बोलती कुछ भी नहीं है, क्या मौन धारण कर रक्खा है ? तू जो कहेगी, श्यामसुन्दर उसे अवश्य मानेंगे। ऐसी कौनसी बात है, जिसके लिये इतना दिखावा हो रहा है ? गिरिधरलाल को तो सदा तेरा ही ध्यान बना रहता है, तू ही मृगनयनी उनके हृदय में बस रही है।

२७६

आली ! हरि मनमोहन अपने हृदय पर गुंजामणि की

माला धारण किये रहते हैं। दूसरे और सभी अमूल्य आभरण उन्होंने त्याग दिये हैं। उस माला की मणि को तेरा नासा-मौक्तिक, गुंजा की ललाई और श्यामता को तेरे अधर की अरुणिमा और अंजन की श्यामता मान रक्खा है। गोवर्धनधरलाल उसे ले कर मन-कर्म-वचन से तेरा रातदिन जप करते रहते हैं-यह बात मैं शपथ पूर्वक कहती हूं।

२७७

भामिनि! अब तू यह उलटफेर छोड़ क्यों नहीं देती? चंद्रमा पश्चिम की ओर धीरे २ खिसक रहा है। देख? देर हो रही है। सखि! अभी थोड़ी ही देर में तमचुर (ताम्रचूड-कुक्कट) की टेर सुन पड़ैगी उषःकाल हो जायगा। जब तुझे विरह व्यापेगा तब तू पछतायगी। इसलिये सुंदरी! मेरा वचन मानकर श्यामसुंदर से चलकर मिल। वे गिरिधरलाल ही तो तेरे जीवन-धन हैं।

२७८

"प्यारी! तुझे कान्ह कुमुदवन में बुला रहे हैं। वहां कदम्ब की छाया में अतिशय मनोहर ठौर बनी हुई है। मृगनयनी! उठ, अभिमान छोड़ दे-मैं तेरे पांव पड़ती हूं। यहां आए बड़ी देर हो गई है-चलो अब चलें"।

इतना कहकर दूती चलने लगी तभी नायिका ने उसकी बांह पकड़ कर कहा-गिरिधरलाल का त्रास मुझ से सहा नहीं जाता।

२७९

मदनगोपाल के सौन्दर्य को जब से देखा तभी से तेरा मान छूट गया था। विशाललोचन श्यामसुन्दर की चितवन ज्योंही तेरे चित्त में बसी थी तभी से तूने शपथ खाकर कहा था कि-"अब मैं कभी नहीं रूसूंगी"।

ऐसा सुनकर व्रजसुन्दरी गिरिधरलाल को सन्तुष्ट करने के लिये शृंगार साजकर उनके पास चली और जिस प्रकार तमाल द्रुम से वल्लरी लिपट जाती है—वह उसी प्रकार उनसे मिल गई।

२८०

"मैं सदा प्रियतम की रूख लिये रहूंगी—उन्हें अप्रसन्न नहीं होने दूंगी। वह जो कुछ आज्ञा करेंगे तदनुसार ही आचरण करूंगी। कभी उलटकर अप्रिय प्रत्युत्तर न दूंगी। मेरे मनमें यही एक बड़ा सोच है—जो एक पल को भी वियोग होगा तो कैसे सहा जा सकेगा? अब प्रभु गिरिधरलाल से कभी भूलकर भी मान न करूंगी"।

सखी! तूने कभी ऐसी प्रतिज्ञा की थी—यह जानकर ही मैं मनाने के लिये तेरे चरण पकड़ती हूं।

२८१

सखी! उठ चल, मनमोहन के मुखारविन्द का दर्शन क्यों नहीं करती? रंगीले गिरिधरलाल को देखे बिना वृथा समय क्यों खोती है? तुझे ध्यान नहीं है—अंजलि के जल के समान यह यौवन भी व्रजनाथ के सम्मिलन विना क्षण-क्षण क्षीण होता जाता है। अपने इन विशाल नयनों से उस मुखकमल को देखकर जीवन क्यों नहीं प्राप्त करती? यदि तू मेरा कहा मान लेती तो आज अनचाही बात क्यों होती? श्रीगिरिधर नागर वैकुण्ठ छोड़कर क्रीड़ा करने के लिये ही तो व्रज में आये हैं।

२८२

गिरिराज-धरण तुझे कितना सन्मान देते हैं? अरी! भोली भाली! तू अब हठ करना छोड़ दे। व्रजभामिनी! देख यामिनी बीत रही है—सबेरा हो रहा है। हरि को अपना ही प्रियतम समझ।

जो क्षण बीत गया वह फिर नहीं आता। प्रभु के वियोग से बढ़कर और क्या हानि हो सकती है ? लाल गोवर्धनधर तुझ से मन-कर्म-वचन से विनय करते हैं, अब उनके सामने घूंघट क्यों डालती है।

२८३

अपने अंग-प्रत्यंग छिपाकर चुपचाप मेरे संग चली चल। देख मौन धारण करले। अधरों पर हाथ धर ले क्योंकि तेरी दंत पंक्ति दामिनी-सी चमक उठती है। नूपुर और किंकिणी उतार दे-उनके कल शब्दों से खग-मृग चौंक उठेंगे। स्वामिनी ! अब शीघ्र चलकर मिल ले। गिरिधर लाल यहीं तेरे निकट तो हैं।

२८४

श्यामा ! चल, तुझे यमुना-तट के सघन कुंजों में घनश्याम बुला रहे हैं-वे तेरा ही नाम रट रहे हैं। चंचल मृगशावाक्षी ! शृंगार करले, और कंठ में मौलसिरी की माला धारण करले। चलकर सकल सुख-निधान श्रीगिरिधरलाल से भुज भरकर भेटले।

२८५

जो-तू धीरे-धीरे धरती पर पैर धरती हुई चलेगी तो अंधेरी रात में कोई पहिचान न सकेगा। देख अपने नूपुरों का कोलाहल मत होने देना ? चलकर देख, नवीन कुंज-दरी में डहडहे फूलों की शय्या की रचना हुई है। स्वामिनी ! अब तू शीघ्र ही रसिकराय गिरिवरधर से चलकर मिलले।

२८६

आली ! चल, तुझे नंदनंदन बन में बुला रहे हैं। चपल मृगलोचनी ! शृंगार कर कसुंभी परिधान धारण करले। यौवन के अनियारे नयन-पुष्प और वक्षोज-श्रीफल की अमोल भेंट

२९४

परस्पर-सम्मिलन—

"कामिनी राधे ! मदनगोपाल से मिलने के लिये शृंगार धारण कर कुंजवन में चलो। तुम्हारा समस्त नख-शिख शृंगार अत्यन्त अनुपम और दिव्य प्रतीत होता है। गजगामिनी ! तुम्हारा यौवन नवल और केहरी-सी कटि, कदली-सदृश जंघा युगल हैं। तुम्हारे मुखचन्द्र को देखकर निशा-भ्रम से चकई विछुड़ गई और कमल संपुटित हो गये हैं।"

सखी के इस कथन पर स्वामिनी जैसे ही प्रियतम के समीप जाकर खड़ी होकर उनके हृदय से संयुक्त हुई दोनों की घन-दामिनी सदृश अनुपम द्युति हो गई।

२९५

मोहनराय ने मृग के समान चपलनयनी राधा को हृदय से लगा लिया और मधुर रस-भरी प्रेम वार्ता की। नख-शिख पर्यन्त अनुपम सौन्दर्य से संयुक्त और सम्पूर्ण रसास्वाद की गतिविधि से परिचित श्रीराधा ने शरद-निशा में प्रभु गिरिधर को अपने कौशल से वश में करलिया।

२९६

"प्रियतम ! अब मैं तुम्हें किसी के घर न जाने दूंगी। गिरिधर प्यारे ! आप अनेक रमणियों के रमण कहलाते हो-मैं आपकी प्रतिज्ञा देखूंगी ? एक मैं ही अकेली हूं जो तुम्हारे पीछे इधर-उधर भटकती फिरती हूं, अब देखूं आप कहां और कैसे जाते हो ? मैं इतना और भी-कहती हूं कि-देखूं ? वह कौन है जो-मुझ से स्पर्द्धा कर सके"।

२९७

" कुंवर कन्हाई ! ऐसी रमणीय वेशभूषा बनाकर कहां पधार रहे हो ? ऐसी कौन कामिनी है जो तुम्हारे चित्त पर चढ़ गई है ? आपका मुखचन्द्र तो दूज के चन्द्र की भांति थोड़ा दीखकर ओझल हो जाता है। अरे ! थोड़े खड़े रहो, देखो ? आप तो चले ही जा रहे हो—तुम्हें ऐसा क्या पाठ पढ़ाया है ? देखो ! गोवर्द्धनधर ! कहीं आपकी ठकुराई की ठसक को ठेस न लग जाय ? "

२९८

अरी ! सारंगनयनी ! आज तैने सुंदर ढंग से आँखों में काजल आंजा है। यह गजवेली (शुद्ध लोहा) की खरसान चढ़ी कटारी जैसी तीखी हो गई हैं। जब तू कटाक्ष से निरीक्षण करती है तो नयनकोर (अपाङ्ग) में श्यामता और बढ़ जाती है—ऐसा लगता है मानों—श्याम के सुभग शरीर पर घात करने को घूंघट-ओट में बैठा हुआ मन्मथ-रूपी बहेलिया भ्रकुटि-धनुष पर तिलकबाण चढ़ाकर बैठा हो।

ऐसी सराहना सुनकर साज सजकर भामिनी ! गिरिधर रसिक सुजान से मिलने के लिये चली ।

२९९

शयन—

' देखो ! वहां झरोखें में दीपक का प्रकाश हो रहा है। हरि ऊंची चित्र-सारी (शाला) में पौढे हुए हैं। सुंदर वदन देखने के लिये ऐसा यत्न किया है, जो दीपक का प्रकाश होता रहे। दोनों प्रिया प्रियतम परस्पर सरस प्रेमालाप कर रहे हैं। नवल नागरी राधिका और नवल लाल गोवर्धनधारी की मधुर जोड़ी सौभाग्य-सुषमा की सीमा प्रतीत होती है।

३००

युगल स्वरूप शयन कर रहे हैं। त्रिविध पवन वह रहा है- उसी प्रकार शरद-निशा की चांदनी छिटक रही है। विविध पुष्पों की शय्या सुख और विलास को बढ़ानेवाली है। विकसित नवकुंज और तन पर तनसुख के वस्त्र शोभित हैं। युगलस्वरूप घन-दामिनी जैसे भासित हो रहे है। आनन्द विलास से प्रभु गोवर्द्धनधारी अतिशय आनन्दित हो रहे हैं॥

३०१

कुंज-सदन में युगल स्वरूप पौंढ़े हैं, सेवार्थ सखियां द्वार-पर विद्यमान हैं। दोनों स्वरूप परस्पर रसविलास विविध प्रेम-चेष्टाएँ कर प्रमुदित हो रहे हैं। लाल गिरिधर और स्वामिनी राधिका दोनों स्वरूप प्रातःकाल, नवकुंज से पदार्पण कर रहे हैं।

३०२

सुरंग पड़दा पड़ी हुइ रंगमहल की तिवारी में युगल स्वरूप पौंढ़े हुए हैं। प्रिया के आभरण जगजगा रहे हैं। प्रभु गोवर्द्धनधर भी रत्नभूषण धारण किये है और अपनी शोभा से कामदेव को मोहित कर रहे हैं।

३०३

"प्रियतम! रिमझिम २ मेह बरस रहा है, मैं उस ऊंची चित्रसारी में आपके पास कैसे आउं? बादल चारों ओर उमड़ घुमड़ रहे हैं-मेरी साड़ी भींज जायगी मुझे वहाँ ले चलो"

यह सुनकर प्रियतम ने अपना पीताम्बर उढ़ा दिया और उसे गोरवडा तिवारी में लेकर पधारे। दोनों परम आनन्दित हुए।

३०४

सुरतान्त—

अरी! तू अपने बिखरे केश बांधती क्यों नहीं? ये सुख-

चंद्र पर घिरे हुए बादलों के समान लगते हैं, और यह ऊपरसे कटि तट तक लटक आए हैं। तेरी अंग-अंग की शोभा अवर्णनीय है। रात्रि-जागरण से तेरा वेश अस्तव्यस्त हो गया है। तेरा उल्लास देखकर अनुमान होता है कि-तुझे व्रजयुवति-नरेश प्राणप्यारे गोवर्द्धन-धर मिले हैं ?

२०५

स्वामिनीजी के मांग में बिखरे हुए मोती ऐसी दीख रहे हैं मानों चन्द्र की पूजा करने को नक्षत्र आए हों ? उनका अंचल काम-नृप की ध्वजा जैसा उड़ रहा है। विरहरूपी राहु से छूट जाने पर द्विज-कला विमल हो गई है, हास्य झलकने लगा है। जिसे देखकर सुख होता है। इस शोभा को देखकर प्रभु गोवर्द्धनधर सौन्दर्य सुधा का पान करने लगते हैं।

२०६

प्यारी ? तेरे नयन रसम से हैं-वे रात्रि के उनींदे हैं। काम-कला की विपरीत बातें छिपाने से नहीं छिपती ? मुख पर जंभाई, चलने में, बोलने में सभी में आलस्य की छटा झलकती है। इन सब लक्षणों से प्रेमपूर्वक प्रियतम गिरिधर के मिलने की प्रतीति होती है।

२०७

सखी री ! तू जागरण से अलसाई हुई है। क्या चोर के भय से तुझे नींद नहीं आई ? या तू अकेली कुंज में बसी ? घरवालों के विरोध से रूसकर तू सांझ होने के पहिले ही वन में जा बैठी ? ऐसा भी कई कहते हैं। तेरे पास जो मोतियों की माला है-यह गिरिधर की है, यह मैं अच्छी तरह जानती हूं। तुझे पैरों में पड़ी मिल गई होगी ?।

३०८

प्यारी ! आज तेरा मुख प्रमुदित है, और नयन अरुण-राग से रंजित हो रहे हैं। ऐसा लगता है कि शरद्-कमल पर उन्मत्त खंजन युगल लड़ रहे हों ! सच है-रसिक शिरोमणि गिरिधर के शीतल कर-स्पर्श हो जाने से तू फूली २ क्यों न फिरैगी ?।

३०९

आली ! तू बिथरी हुई अलकें क्यों नहीं सँभारती ? तेरी भ्रकुटी कमान जैसी चढी हुई है और नयन रतनारे हो रहे हैं, सो-रात्रि को तेरे पलक नहीं लगे ऐसा लगता हैं ? मत्त गजेन्द्र-सी चाल और रोमाञ्च अन्तःसुख को प्रकट कर रहे हैं। तू गिरिधर के साथ ऐसी मिली है जैसे-चन्द्रमा की झलक।

३१०

मेरी समझ में आ गया है ! सखी ? तू प्राणप्यारे मे मिल कर अपना मनोरथ पूर्ण करचुकी है। क्रीडा की रस-मत्तता के कारण सारी रात्रि तेरी पलक से पलक नहीं मिली, गोवर्धनधर को प्राप्त कर तूने अब अपना हृदय शीतल कर लिया है।

३११

सखी ? तूने रसिक-शिरोमणि नंदलाल को प्राप्त कर विविध भांति से अपना मनोवाच्छित पूरा कर लिया है ! निकुंज में आनन्द-प्राप्ति का सौभाग्य और सुधा-रस तुझे ही मिला है। राधिके ! तू सचमुच बड़ी भाग्यवती है-जो त्रिभुवन-पति श्याम को आकृष्ट कर लिया और गोवर्धनधर ने हँसकर तुझे कंठ से लगा लिया है।

३१२

प्यारी ! तेरी डगमगी चाल है, वेणी खुली हुई है, तेरे कुछ और ही ढंग दीखते हैं ! अधरों का रंग उड़ा हुआ है,

नख-चिन्ह, मरगजी माला और टूटा हुआ मुक्ताहार है। अंचल में जहाँ तहाँ पीक लग रही है। यह सब देखकर सखियाँ भी कुछ कानाफूंसी कर रही हैं। सुन्दरी! ऐसा लगता है कि गिरिधरलाल से कहीं तेरा मिलाप हो गया है?

३१३

प्रियतम से मिलन के आनन्द को यह तेरे अलसाए नयन ही बतला रहे हैं। यह श्यामसुन्दर के रूप रस–स्पर्श से लास्य–सा कर रहे हैं, दीर्घता में आगे बढ़ते २ यह नंदनंदन के पास पहुंच जाना चाहते हैं–पर श्रवणों ने इनका मार्ग रोक दिया है। प्रभु गिरिधर की प्रीति–रस से मस्त होकर यह चारों ओर फेरा कर रहे हैं–अपनी चंचलता दिखा रहे हैं।

३१४

माई! तेरा प्रसन्न होना ठीक ही है। गिरिधरलाल के शरीर-स्पर्श से तेरा मन चाव से भर गया है। सखी! तेरा दाव लग गया, जो श्यामसुन्दर निभृत निकुंज में तुझे अकेले मिल गये? वे नंदकुमार सचमुच आनंद–सागर और रसिकवर ही तो हैं।

३१५

अब तो तेरा मनचाहा हो गया? अब तू क्यों न फूलेगी? गिरिधरलाल को मनाकर तूने रूप–सुधा का पान कर अपने हृदय का विरह–दुःख मिटा लिया। उनके त्रिविध विहार और रस–रंग द्वारा कालिंदी–कूल पर तुझे सुख मिल गया। रस–निधान नंदनंदन के मिलने से तू आनन्द–मग्न हो गई है,, अब तेरा पांव पृथ्वी पर क्यों पड़ने लगा?

३१६

ब्रजसुन्दरि! यह तो बता, आज रसिक गोपाल को तू कैसे मन भागई? मृगनयनी! सोलहों शृंगार सजकर तू ऐसे ही

३०८

प्यारी ! आज तेरा मुख प्रमुदित है, और नयन अरुण-राग से रंजित हो रहे हैं। ऐसा लगता है कि शरद्-कमल पर उन्मत्त खंजन युगल लड़ रहे हों ! सच है-रसिक शिरोमणि गिरिधर के शीतल कर-स्पर्श हो जाने से तू फूली २ क्यों न फिरैगी ?।

३०९

आली ! तू बिथरी हुई अलकें क्यों नहीं सँभारती ? तेरी भृकुटी कमान जैसी चढी हुई है और नयन रतनारे हो रहे हैं, सो-रात्रि को तेरे पलक नहीं लगे ऐसा लगता है ? मत्त गजेन्द्र-सी चाल और रोमाञ्च अन्तःसुख को प्रकट कर रहे हैं। तू गिरिधर के साथ ऐसी मिली है जैसे-चन्द्रमा की झलक।

३१०

मेरी समझ में आ गया है ! सखी ? तू प्राणप्यारे से मिल कर अपना मनोरथ पूर्ण करचुकी है। क्रीडा की रस-मत्तता के कारण सारी रात्रि तेरी पलक से पलक नहीं मिली, गोवर्धनधर को प्राप्त कर तूने अब अपना हृदय शीतल कर लिया है।

३११

सखी ? तूने रसिक-शिरोमणि नंदलाल को प्राप्त कर विविध भांति से अपना मनोवाच्छित पूरा कर लिया है ! निकुंज में आनन्द-प्राप्ति का सौभाग्य और सुधा-रस तुझे ही मिला है। राधिके ! तू सचमुच बड़ी भाग्यवती है-जो त्रिभुवन-पति श्याम को आकृष्ट कर लिया और गोवर्धनधर ने हँसकर तुझे कंठ से लगा लिया है।

३१२

प्यारी ! तेरी डगमगी चाल है, वेणी खुली हुई है, तेरे कुछ और ही ढंग दीखते हैं ! अधरों का रंग उड़ा हुआ है,

नख-चिन्ह, मरगजी माला और टूटा हुआ मुक्ताहार है। अंचल में जहाँ तहाँ पीक लग रही है। यह सब देखकर सखियाँ भी कुछ कानाफूंसी कर रही हैं। सुन्दरी ? ऐसा लगता है कि गिरिधरलाल से कहीं तेरा मिलाप हो गया है ?

३१३

प्रियतम से मिलन के आनन्द को यह तेरे अलसाए नयन ही बतला रहे हैं। यह श्यामसुन्दर के रूप रस–स्पर्श से लास्य–सा कर रहे हैं, दीर्घता में आगे बढ़ते २ यह नंदनंदन के पास पहुंच जाना चाहते हैं–पर श्रवणों ने इनका मार्ग रोक दिया है। प्रभु गिरिधर की प्रीति–रस से मस्त होकर यह चारों ओर फेरा कर रहे हैं–अपनी चंचलता दिखा रहे हैं।

३१४

माई ! तेरा प्रसन्न होना ठीक ही है। गिरिधरलाल के शरीर-स्पर्श से तेरा मन चाव से भर गया है। सखी ! तेरा दाव लग गया, जो श्यामसुन्दर निभृत निकुंज में तुझे अकेले मिल गये? वे नंदकुमार सचमुच आनंद–सागर और रसिकवर ही तो हैं।

३१५

अब तो तेरा मनचाहा हो गया ? अब तू क्यों न फूलेगी ? गिरिधरलाल को मनाकर तूने रूप–सुधा का पान कर अपने हृदय का विरह–दुःख मिटा लिया। उनके विविध विहार और रस–रंग द्वारा कालिंदी–कूल पर तुझे सुख मिल गया। रस–निधान नंदनंदन के मिलने से तू आनन्द–मग्न हो गई है, अब तेरा पांव पृथ्वी पर क्यों पड़ने लगा ?

३१६

व्रजसुन्दरि ! यह तो बता, आज रसिक गोपाल को तू कैसे मन भागई ? मृगनयनी ! सोलहों शृंगार सजकर तू ऐसे ही

३०८

प्यारी ! आज तेरा मुख प्रमुदित है, और नयन अरुण-राग से रंजित हो रहे हैं। ऐसा लगता है कि शरद्-कमल पर उन्मत्त खंजन युगल लड़ रहे हों ! सच है-रसिक शिरोमणि गिरिधर के शीतल कर-स्पर्श हो जाने से तू फूली २ क्यों न फिरेगी ?।

३०९

आली ! तू बिथरी हुई अलकें क्यों नहीं सँभारती ? तेरी भ्रकुटी कमान जैसी चढी हुई है और नयन रतनारे हो रहे हैं, सो-रात्रि को तेरे पलक नहीं लगे ऐसा लगता हैं ? मत्त गजेन्द्र-सी चाल और रोमाञ्च अन्तःसुख को प्रकट कर रहे हैं। तू गिरिधर के साथ ऐसी मिली है जैसे-चन्द्रमा की झलक।

३१०

मेरी समझ में आ गया है ! सखी ? तू प्राणप्यारे से मिल कर अपना मनोरथ पूर्ण करचुकी है। क्रीडा की रस-मत्तता के कारण सारी रात्रि तेरी पलक से पलक नहीं मिली, गोवर्धनधर को प्राप्त कर तूने अब अपना हृदय शीतल कर लिया है।

३११

सखी ? तूने रसिक-शिरोमणि नंदलाल को प्राप्त कर विविध भांति से अपना मनोवाञ्छित पूरा कर लिया है ! निकुंज में आनन्द-प्राप्ति का सौभाग्य और सुधा-रस तुझे ही मिला है। राधिके ! तू सचमुच बड़ी भाग्यवती है-जो त्रिभुवन-पति श्याम को आकृष्ट कर लिया और गोवर्धनधर ने हँसकर तुझे कंठ से लगा लिया है।

३१२

प्यारी ! तेरी डगमगी चाल है, वेणी खुली हुई है, तेरे कुछ और ही ढंग दीखते हैं ! अधरों का रंग उड़ा हुआ है,

नख-चिन्ह, मरगजी माला और टूटा हुआ मुक्ताहार है। अंचल में जहाँ तहाँ पीक लग रही है। यह सब देखकर सखियाँ भी कुछ कानाफूंसी कर रही हैं। सुन्दरी ? ऐसा लगता है कि गिरिधरलाल से कहीं तेरा मिलाप हो गया है ?

३१३

प्रियतम से मिलन के आनन्द को यह तेरे अलसाए नयन ही बतला रहे हैं। यह श्यामसुन्दर के रूप रस-स्पर्श से लास्य-सा कर रहे हैं, दीर्घता में आगे बढ़ते २ यह नंदनंदन के पास पहुंच जाना चाहते हैं-पर श्रवणों ने इनका मार्ग रोक दिया है। प्रभु गिरिधर की प्रीति-रस से मस्त होकर यह चारों ओर फेरा कर रहे हैं-अपनी चंचलता दिखा रहे हैं।

३१४

माई! तेरा प्रसन्न होना ठीक ही है। गिरिधरलाल के शरीर-स्पर्श से तेरा मन चाव से भर गया है। सखी! तेरा दाव लग गया, जो श्यामसुन्दर निभृत निकुंज में तुझे अकेले मिल गये? वे नंदकुमार सचमुच आनंद-सागर और रसिकवर ही तो हैं।

३१५

अब तो तेरा मनचाहा हो गया ? अब तू क्यों न फूलेगी ? गिरिधरलाल को मनाकर तूने रूप-सुधा का पान कर अपने हृदय का विरह-दुःख मिटा लिया। उनके त्रिविध विहार और रस-रंग द्वारा कालिंदी-कूल पर तुझे सुख मिल गया। रस-निधान नंदनंदन के मिलने से तू आनन्द-मग्न हो गई है,, अब तेरा पांव पृथ्वी पर क्यों पड़ने लगा ?

३१६

व्रजसुन्दरि! यह तो बता, आज रसिक गोपाल को तू कैसे मन भागई ? मृगनयनी! सोलहों शृंगार सजकर तू ऐसे ही

भली जल्दी चली आ रही है ? तेरा लाल लहँगा, झूमक साड़ी कसूंबी रंग की है–सो क्या प्रियतम के लिये ही इस रंग में उसे रंगाया है ? तेरे नेत्र रममसे और सालस्य हैं। अंग–अंग से शोभा बिखर रही है। प्रभु गोवर्द्धनधर ने तुझे आज अपना लिया है ?

३१७

श्रीराधे ! आज तुम्हारी चूनरी अधिक सुन्दर लग रही है। परम गुण–प्रवीण मोहन इसकी वार–वार सराहना कर रहे थे। इसी प्रकार तेरे लोचनों में अंजन, भाल में तिलक, मांग में सेंदुर और शरीर पर वस्त्र सभी सुन्दर हैं। वास्तव में तू गिरिधर-लाल के प्रेम–रस–रंग में सरावोर सनी हुई है।

३१८

वृषभानु–किशोरी राधा सोकर उठी हैं, अंगड़ाई लेते समय शरीर को मोड़ते हुए उन्होंने अपनी कोमल भुजाओं को मिलाकर ऊपर उठाया–उस समय उन दोनों के बीच मुख ऐसा लगा मानों सनाल कमल–युग ने अपना वैर लेने को चन्द्रमा को बांध लिया हो। युगल वक्षोज, ऐसे लगते हैं मानों भ्रमर सहित दो कमल कोश निःशंक हो कर ऊंचे उठ आए हों, शरीरकी शोभा और मुखपर प्रमुदित दोनों नेत्रों और उनकी अरुण–कटाक्ष–छटा ने त्रिभुवन की शोभा को चुरा लिया है। ऐसा लगता है मानों–चंद्र पर दो कमल एकत्रित हो रहे हों–सरसता देखते ही बनती है।

३१९

अरी ! आज तू फूली–फूली–सी क्यों डोल रही है ? मृगनयनी ! आज तेरा मुखचंद्र विशेष उल्लसित हो रहा है ? चोली कंचुकी, लाल रंग का लहँगा, उस पर रगमगी साड़ी कैसी फव रही है ? नूपुरों की रुनझुन, कटि में किंकिणी, मलकती हुई

चाल कुछ विचित्रा-सी ही है। नेत्रों में सुढंगी काजल और भाल पर तिलक-विन्दी बांकपन से भरी हुई मांग के साथ अनोखी दीखती है। सखी! ऐसा लगता है कि-तू आज गिरिधरलाल के प्रेम में रंग-सी गई है।

३२०

भामिनी! तेरे केशों में बिथुरे हुए कुसुम, रात्रि में नीले आकाश में छिटके हुए तारों-जैसे शोभा दे रहे हैं। मुख पर सहज छूटी हुई अलक-लट, चंद्र को छिपा देनेवाली घन-घटा से क्या कम है? वक्षस्थल पर विलुलित मोतियों की माला मानसरोवर-सी और दोनों ओर वक्षोज, तट पर बैठे हुए वियोगी चक्रवाक-से जान पड़ते हैं। सखी! तूने मनोमोहक सौन्दर्य से गोवर्द्धन-धर को सहज ही वश में कर लिया है[?].

खण्डिता (वञ्चिता)—

३२१

लाल गिरिवरधर! तुम संध्या समय आने को कह गए थे, और अब सवेरा होते २ आपके दर्शन हुए हैं? रात्रिभर तारा गिनते-गिनते नेत्र व्याकुल हो गए, चार पहर चार युग से बीते हैं। आपने अच्छा किया जो केलि चिन्हों को मिटा डाला? पर अधर तो रूखे हैं, और वक्ष पर नख-आभूषण आदि के चिन्ह स्पष्ट दीख रहे हैं। रसिक शिरोमणि गिरिधर! यह आपके कैसे ढंग हैं?

३२२

लालन! तुम इतनी देर तक कहां रहे? सारी रात तुम्हारा पंथ निहारते २ मेरी आँखों में दाह हो गया। उसीके होकर रह गये जिसने आपको भुलावा दिया था? गिरिधर! आपने संध्या समय दिये हुए अपने वचनों का अच्छा परिपालन किया?

३२३

मोहन! आपके लोचन रात्रि–जागरण से उनींदे और रसमसे हो रहे हैं। आप लज्जित क्यों होते हो? लालन! कहिये तो आपने रात्रि में कहां निवास किया? डगमगाती चाल, आलस और जंभाई, अस्तव्यस्त वस्त्राभूषण, स्पष्ट ही तो दीख रहे हैं। गिरिधर! ऐसा विदित होता है मानों–किसीने तुम्हें भुज–पाश में जकड़ कर हृदय में कस कर बांध लिया हो।

३२४

श्यामसुन्दर! कहिये तो रात्रि कहाँ व्यतीत की? जो अब अरुणोदय पर आ सके हो? इसमें संकोच की बात क्या? आप तो सचमुच ताम्रचूड (मुरगा) का बोल सुनते ही उठ कर दौड़ आए? आपकी आँखे देखकर साक्षी की क्या जरूरत? क्रीडा के चिन्ह सभी तो स्पष्ट हैं? प्रभु गिरिधर! अब छिपते क्यों हो? मेरी समझ में सब आ गया है।

३२५

लाल! आज रात्रि कहाँ बसे? जो उषःकाल होते ही डगमगाते पैरों से भागे आए हो? अभी तो तमचुर और चिड़ियाँ बोल रहीं है, इतने सबेरे क्यों उठ बैठे? अधरों पर काजल, लटपटी पाग, मरगजी माला, अरुण नेत्र और जँभाई से मालुम होता है–आपने जागकर रात बिताई है? श्याम! चिन्हों को छिपाने से क्या लाभ? ये तो स्पष्ट ही है कि—आप किसी चतुर नागरी के फँदे में फँस गए थे।

३२६

मैं तो आपके पैर पूजती हूं। प्रिय! तुम्हे बातें बनाना अच्छा आता है। अरुण अधरों पर श्यामलता और गति में लटपटापन कैसा है? कपोलों पर पान का रंग और वक्षस्थल पर पत्र–रचना

कैसी है ? गिरिधरलाल ? अब तो आप जहाँ रात्रि को जगे हो, वहीं जाकर सुख दो तो ठीक है। प्रभु ! अटपटी देना छोड़ दो, अब आप पर कौन विश्वास करेगा ?

३२७

लालन ! तुम्हारी इन बातों से मन कैसे मान सकता है ? बना-बनाकर बात उससे कहिये जो आपकी लीला न जानता हो ? बहुत छिपाने पर भी चिन्ह नहीं छिपेंगे, वे स्पष्ट दीख रहे हैं। प्रभु गोवर्द्धनधर ! तुम तो बड़े भोले लगते हो ?

३२८

नंद-नंदन ! संध्या समय दिये हुए वचन आपके सत्य निकले ? रात्रिभर जागकर आप प्रातः होते ही बहुत शीघ्र आ गए। हड़बड़ी में आपने पीत पट भूलकर नील पट ओढ़ लिया ? यह भी सावधानी का काम किया है। प्रभु गोवर्धनधर ! आपने अपने वचनों का अच्छा प्रतिपालन किया ?

३२९

लाल ! आज आप अनुराग से रंजित होकर जागरण कर किस के रंग में पगे हो ? लाल नयन, मरगजी माला, शिथिल चाल-ढाल तो दीख ही रही है। आपकी अंग-प्रत्यंग की छवि का क्या वर्णन किया जाय ? अलल-गलल आपके बोल भी सुहावने हैं। प्रिय प्रभु गोवर्धन-धर ! आप बड़े भले लगते हो ? आपके यह हाल कैसे है ?

३३०

गिरिधर ! रात्रि में आप किसके भवन में जागरण करते रहे ? संकोच मत करो, प्रियतम ! कुछ तो कहो ? आप मेरे घर पधारिये, मैं अपने पलकों से मार्ग साफ करूंगी, मेरे भाग्य आकर जगाइए। रगमगे पाग के पेंच खुल रहे हैं, अलकें बिखर

रहीं हैं; पीत पट खिसका जा रहा है, जरा इसे तो सँभाल लीजिये। प्रभु गोवर्द्धनधर! आपकी छवि का क्या वर्णन करूं? बस देखती रहूं और सुख पाती रहूं—यही इच्छा होती है।

३३१

मोहन! आप बोलते क्यों नहीं हो? हमसे क्यों लजा रहे हो? मैंने वहां से आते देखकर ही आपको पहिचान लिया था। भुज—मूल पर कर्णफूल के और कंकण के चिन्ह पहिचाने हुए हैं। प्रभु गिरिधर! आपके रंग—ढग मुझ से क्या छिपे हुए है? सब जाने-पहिचाने हैं।

३३२

श्यामसुंदर! आप निशा में कहां जगे हो? उस स्थल पर बिना गुण की माला (गड़े हुए मोतियों के चिन्ह) अधर पर अंजन, भाल में महावर और कपोल पर पीक के चिन्ह तो हैं ही। रगमगी चाल, शिथिल अंग, अस्फुट वचन और वक्ष पर अंकित नखरेखा, पींठ पर गडे हुए कंकण के आकार और विह्वल चितवन से आपके रात्रि—जागरण का भान होता है। रात्रि—भर आपके पलक नहीं लगे है?

सत्य बात कहिये, संकोच क्यों? कहिये तो वह बड़भागिनी कौन है? जिसके प्रीति—फंद में आप फंस गये थे, किसके अनुराग में रंगे थे। गिरिधर! यह सब होते हुए भी आप शपथ खाकर अपनी निर्दोषता प्रमाणित करना चाहते हो?

३३३

अपने भवन में गोपी सिसक सिसक कर कह रही है कि— 'नंद—सुत व्रजराज सांवले को किसी चतुर व्रज—नागरी ने मोहित कर लिया है। चार मास के लिये आनन्द—विहार और निवास अब वहीं हो गया है। वे मुझ पर अब कब कृपा करेंगे? मैं

विधाता से अचरा पसार कर वर मांगती हूं। गोवर्धनधर! अब तो शीतकाल भी दोनों हाथ झाड़कर चला गया है, अब भी आपका आगमन नहीं हुआ ?

विरह [द्वितीय अवस्था]—

२३४

वह दिन कब आयगा ? जब मैं नयन भरकर सुखदाता श्याम-सुन्दर के मनोहर अंग-प्रत्यंग का दर्शन करूंगी। गोप-वृन्द को संग लेकर प्रतिदिन वृन्दावन में विहार करना और गोदुग्ध का तथा ब्रांट-ब्रांटकर पयःफेन-धैया का पान करना-स्मरण हो आता है। हाय! सुख की नींद सोए बिना कितने दिन बीत गए ? अब तो गिरिधर के बिना किसी प्रकार भी मन में चैन नहीं पड़ता।

२३५

अब तो दिन-रात पहाड़-से भारी हो गये ? जब से हरि मधपुरी चले गए, तब से इनका अन्त ही नहीं आता। ऐसा लगता है कि-विधाता ने युग के समान नया एक २ पहर बनाया है, जो बीतता ही नहीं है-जागते २ अकुला जाती हूं। वियोग के पहर मित्र के समान पीछा छोड़ते ही नहीं हैं। व्रजवासी वैसे ही अत्यन्त दीन-हीन हैं, फिर विरह से व्याकुल हो उठे हैं, एसे प्राण-विहीन हो गए हैं ? जैसे पाला पड़ने से कमल। नंदनंदन के विछोह से अनेक सन्ताप उठाने पडे है। गिरिधर के विना दोनों आँखों में आँसू छल-छलाए ही रहते हैं।

२३६

विरह बाण की चोट जिस को लगती है, वही जान सकता है ? यह दुःख तो भोगने से ही समझ पड़ता है, कहने से समझ

में नहीं आता। जैसे बहेलिया का विष से बुझा तीर थोड़ासा भी लगने से नखसख-पीडा पहुंचाता है-वही इसकी स्थिति है। बहुत यत्न करने पर रातदिन एक पल भर भी चैन नहीं पडता। इस मार्मिक व्यथा को लाल गिरिधर के बिना और कौन पहिचान सकता है ?।

३३७

आह ! तरुणकिशोर रसिक नंद-नंदन के मुखकमल को-जिस पर कुछ २ रोमरेखा भीज रही है- बिना देखे आज कितने दिन बीत गए ? अनुपम कोटि चन्द्र को लजाने वाली वह मुख-शोभा, शरीर का लावण्य, तरछी चितवन, स्मित हास्य और विचित्र नट-रूप का स्मरण करते ही हृदय मसोस जाता है। नंद-कुंवर के संग मिलकर खेलने की उत्कण्ठा होती है। लाल गिरिधर के बिना जीवन-जन्म का कोई मूल्य नहीं है।

३३८

जब से प्रियतम का बिछोह हुआ ? तभी से मेरी नींद भी विलीन हो गई ? भूलकर भी कभी ऑख नहीं लगी। मुझे रात्रि युग के समान हो गई है। आहार-बिहार शृंगार सभी से ग्लानि-सी हो गई है, चित्त की चिन्ता एक पल भी नहीं घटती।

कुंभनदास कहते हैं-प्रभु गोवर्द्धन के विरह में गोपिका सूखकर पीली पड़ गई है-उसे प्रतिदिन नई पीडा उठानी पड़ती है।

३३९

"वह दिन चले गये जब हरि मुझे अपने पास बैठा लेते थे। अहा ! एक दिन अर्द्धरात्रि में उन्होंने गिरि-शिखर पर चढकर वेणुनाद द्वारा बुलाया था। अपने करकमलों से विविध कुसुमों को वेणी में गूंथा और मेरी मांग सँवारी थी। जब प्रेम

से परस्पर अंग-निरीक्षण करते थे ! कितना सुख मालुम पड़ता था-अब वह कहां" ?

यह सब बातें उनसे एकान्त में कहना जब कोई समीप न हो-कहना प्रभु गोवर्द्धनधर ! आप के ये रंग-ढंग कैसे हैं ?

३४०

माधव ! इतने दिन योंही निकल गए । अरे ! गोकुल और मथुरा में कितनी दूरी थी ? इसे थोड़ा भी तो नहीं विचारा ? न कभी संदेसा आया न पत्र पाया। आपको स्मृति भी नहीं रही ? प्रीति एक तिनके का सहारा था, रहा-सहा वह भी टूट गया। प्रभु गिरिधर के विना एक-एक क्षण कल्प के समान व्यतीत हो रहा है।

३४१

गोपाल ! तुम्हारे मिले विना कुलवधू ब्रज की सुन्दरियाँ अत्यन्त आतुर और विरह से विह्वल हो गई हैं। उन्हें शीतल चन्द्र सूर्य के समान संतापदायक हो रहा है, किरणें तीखी लग रही हैं, कमलपत्र सर्प-विष जैसे दाहक हो गये हैं। चंदन, पुष्प आदि शीतल उपचारों से शरीर में ज्वाला-सी लग जाती है। घनश्याम ! आपके विना यह ब्रजबालाएँ ग्रीष्मऋतु में कनकलता के समान सूख गई हैं। गिरिधरलाल ! आप अधरामृत का सिंचनकर उन्हें जीवन-दान दीजिये।

३४२

काली घनघोर घटा देख कर विरहिणी ब्रजनारियां मूर्च्छित हो धरती पर बेसुध गिर जाती हैं। कोयल की कूक और बिजली की कौंध ने घेर-घेर कर विरहिणियों को झुलसा दिया है। सुख-निधान प्रभु गिरिवरधर ! आप गोपियों की रक्षा क्यों नहीं करते ?

३४३

अंधियारी रात्रि में जब बिजली कौंध जाती है, तब हरि के बिना सूनी सेज पर सखी ! मैं डरकर उचट पड़ती हूं । जैसे २ प्रीतम की सुरति आती है, औंधती हुई गागर के समान नेत्रों से आंसू निकल पड़ते हैं। प्रभु गिरिधर के बिना अब नींद भी प्रति क्षण छाती रौंधती हुई चली जाती है ।

३४४

सखि री ! प्रियतम नहीं आए ? मुझे जगते २ ही रात बीत जाती है । चारों पहर बैठी २ अकुलाते नेत्रों से दशों दिशाएं देखती रहती हूं । मैं तो तेरे भरोसे पर रही, समझा था तू गिरिधरलाल को लेने गई थी ? तूने मुझ से कपट तो नहीं किया था ? आली ! चातक को घनरस की प्यास के समान मुझे भी प्रभु की चाह लगी हुई है, उनके बिना अब मैं रह नहीं सकती ?

३४५

नयन–घन नीर बरसाए बिना अब एक घड़ी भर को भी शान्त नहीं रहते ? व्रज में वियोगाश्रु की वर्षा निरन्तर होती रहती है । विरहरूपी इन्द्र रातदिन बरसाये ही जा रहा है, ऊर्ध्व श्वासरूपी पवन के तेज झकोरे चलने लगते हैं, और उरः स्थली भींज–भींजकर लबालब भर गई है । अबम्बर– वस्त्ररूपी आकाश, द्रुमरूप भुजाएँ और स्तन–रूप ऊंची भूमि भी बूड़ी जा रही है । पैर अटक जाते हैं, मन पथिक थक जाता है, चंन्दन रूपी कींच मच गई है । सभी ऋतु अब मिटकर वर्षा बन गई हैं–हरि ने यह क्या उलटी बात कर दी है ? लाल गिरिधर के बिना तो सभी नीति–मर्यादा टलती जा रही हैं ?

३४६

माई ! देखो वर्षा की अगवानी होने लगी, कुंजों में दादुर,

मोर, पपीहा बोलने लगे। आकाश में बक-पंक्तियाँ उड़ने लगीं। घुमड़ते बादल देख और उनकी गर्जना सुनकर सयानी ! तू ही ही बता ? कैसे जिऊं, इस समय तो प्रभु गोवर्द्धनधर ही सुख शान्ति दे सकते हैं।

३४७

अरी ! वर्षा ऋतु आ गई इधर-उधर चातक मोर बोलने लग गए। उमड़-घुमड़ कर उठते काले बादलों के बीच सफेद बक-पंक्ति कैसी उज्वल लगती है ? हा ! हरि के संयोग बिना यह दिन कैसे पूरे होंगें ? दादुर की रट से रात्रि में नींद भी नहीं आती। प्रभु गिरिधर ने अब भी इधर आनेका विचार नहीं किया, क्या उनका बिछोह ही मेरे हिस्से में पडा है ?

३४८

अरी माई ! इन चौमासे की रातों, वर्षा की बूंदो आदि से कैसे पार पाऊं ? नन्दकिशोर से वियोग जो आ पड़ा है ? जब दामिनी कौंध जाती है, अकेली शय्या पर डरप जाती हूं। चारों ओर गरजते घन देखकर तो रहा नहीं जाता। सखी ! तू गिरिधर से मुझे मिला दे, जो-सदा उनके अंक से लगी रहूं।

३४९

चारों ओर बादल उड़ल पड़े हैं। शय्या पर गिरिधर के वियोग में रात्रि में डरप जाती हूं। कहां यह मनोरम ऋतु और कहां प्रियतम का वियोग ? विधाता ने न जाने किस ईर्ष्या से मेरे भाग्य में इसे लिख डाला है ? अब तो यह नयन -युगल प्रियदर्शन की तृपा से परितप्त हो उठे हैं।

३५०

आली ! श्रावण का महिना आ गया, अब कैसे ढांढस

बांधूं ? चातक, कोयल, मयूरों का बोल सुन २ कर कान जल उठे है। चारों ओर पहाड के समान ऊंचे २ बादल उठ रहे है–इनका घनश्याम वर्ण देखकर धैर्य कैसे बांधा जाय ? आली ! अब तो प्रभु गिरिधर से मिलन, हो ऐसा कोई उपाय जल्दी कर।

३५१

मार्ग देखते–देखते यह लो ! सावन ही आ गया ? अवधि के दिन कभी के पूरे हो गए। अब भी प्रियतम का आगमन नहीं हुआ ? घन की गर्जना कैसे सही जाय ? इस पर चातक की पियू–पियू की रट सुन पड़ती है। वह कैसे सही जाय ? हा ! वह समय कब आवेगा ? जब मनभावन गिरिधर के नयनभर कर दर्शन कर सकूंगी ?

३५२

हरि समीप नहीं है, यह हरियाला सावन का महिना कैसे निकलेगा ? अंधियारी रात्रि में जैसे २ चंचला चमकती है–मेघ की गर्जना होती है, वैसे २ मुझे चित्त में डर लगता है। चारों दिशाओं में उठते हुए बादलों को देखकर धैर्य भी तो नहीं बंधता ? प्रभु गिरिधर के विरह में किसी प्रकार चैन नहीं पडता अब क्या किया जाय ?

३५३

माई ! बन में मोरों का शोर सुनकर अब मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता। श्याम घटा, और उड़ती हुई बगुलाओं की कतार देखकर नयनों में आंसू भर २ आते है। बादलों की गड़गड़ाहट बिजली की तड़तड़ाहट, और भयंकर अन्धकार से चित्त डरप जाता है, मैं बेचेन हो जाती हूं। गोपाल–बिना सूनी सेज देख कर नींद नहीं आनी, चौंक २ पड़ती हूं, चंदन चन्द्रमा, शीतल वायु और पुष्पमालाऐं विष–समान लगती हैं–इससे तो

मन और भी जलने लगता है मदन-दुःखमोचन प्रभु गिरिधर अब न जानें कबतक मुझे मिलेंगे ?

३५४

अंधियारी रात्रि और उसमें भी यह बिजली क्षणक्षण में चमक २ कर डरपा जाती है। बूंदों के पड़ने चारों ओर घन की गरजन तरजन से हृदय और भी व्याकुल हो जाता है, आँख नहीं लगती और नींद में चौंक पड़ती हूं। समझ में नहीं आता ? रसिकबर लाल श्रीगोवर्द्धनधारी कब मिलेंगे ?

३५५

अब लो वर्षा भी आगई। गोपीनाथ ने शीघ्र ही लौट आने को कहाथा, पर अबतक न आए ? न जानें किस मुहूर्त में वे पधारे थे ? घन गरजने और चातक-मोर बोलने लगे-अब कुछ भी अच्छा नहीं लगता। प्रातःकाल से पंथ निहारते प्रतीक्षा करते दिन निकल जाता है, रात्रि हो जाती है। प्रभु गिरिधरलाल प्रियतम के बिना कैसे रहा जाय ? तू ही बता। उनके बिना सारा ब्रज शून्य लग रहा है।

३५६

दूसरों को सामीप्य और मेरे बांटे में वियोग पड़ा है। आली ? सभी कोई अपनी २ सुख की नींद सोते और उठते हैं-मैं चारों ओर मार्ग देखा करती हूं। समझ में नहीं आता ? विधाता ने किस अपराध पर क्रोधित होकर मेरे भाग्य में एसे अंक लिखे हैं। तृपाकुल चातक घन के लिये जैसे रट लगाता रहता है। वैसे ही 'गिरिधरलाल' 'गिरिधरलाल' की रट रात-दिन मुझे लगी रहती है।

३५७

इस वियोग की रचना न जाने किसने की है ? इससे बढ़ कर संसार में कोई दूसरी पीडा नहीं है। इसमें हृदय जलता और भस्म होता रहता है। एक २ पल युग समान बीतता है, जीना कठिन हो जाता है। प्रभु गोवर्द्धन जबसे इस व्रज से पधारे हैं तभी से तन, मन, प्राण सभी वे अपने संग ले गए, ऐसा मालुम पडता है।

३५८

जिस दिन से हरि हमें छोड़ गए, तब से भूलकर भी आँखों में नींद नहीं आई। वे युवतियाँ धन्य हैं जो स्वप्न में भी प्रियतम को निहार कर एक क्षण भी विरह से छुटकारा पा लेती हैं। यह शीतलोपचार चंदन, चंद्रमा की किरणें तो अग्नि के समान और भी हृदय जलाया करती हैं। गिरिधरलाल के बिना अब तन की तपन कौन बुझा सकता है ?

३५९

गोविंद आप तो वृन्दावन की साध हैं। लोचनों को अगाध तृप्त करने वाली वह मनोहर भूमि हैं—अगाध तृप्ति के स्थल हैं। प्रभु ! यह तो बताओ ? आपको इस क्षार समुद्र का निवास कैसे प्रिय लगता है, राधिका के वल्लभ आपको कालिंदी के समीप जो सुख मिलता है वह वहाँ कहाँ ? सभी व्रजवासी आपके पैरों पडते है—एक बार आप व्रज में आइये। प्रभु गोवर्धनधर ! आपके बिना सर्वत्र शोक ही शोक छाया हुआ है।

३६०

गोपाल ! सुनिये ? एक व्रज की सुंदरी आपसे मिलने को तरस रही है। मुझे मिला देने को बार-बार कहती है, सचमुच उसके चित्त में बहुत आर्ति है। रातदिन तुम्हारा नाम जपती

रहती है। समझाने पर भी उसके चित्त में कोई बात नहीं बैठती। चित्त श्यामल-तन में चिहुंट गया है, लोक-लाज का अब उसे कोई डर नहीं रहा, क्षणभर को उसे चैन नहीं। वह अतिशय आतुर और विरहिणी हो रही है। प्रभु गोवर्धनधर! आपके विना वह अपने शरीर को योंही गला रही है।

३६१

मोहन! एकवार इधर देख लोगे तो तुम्हारा क्या विगड-जायगा? आपने तो अपना मन चल-दल (पीपल) के पत्ते के समान चंचल कर लिया है-कभी ठहरता ही नहीं, जबतक इकटक तुम्हारा मुख देखती रहती हूं तभीतक मुख मिलता है-दृष्टि से ओझल होते हृदय व्याकुल हो जाता है। प्रभु आप इतने क्यों विमन हो गये हो? देखो २ उसका शरीर गल गया है।

३६२

बात कहने जैसी हो तो कही भी जाय? प्राणनाथ के वियोग की व्यथा तो हृदय में ही समझी सकती है। उसे दूसरे को कैसे बताया जा सकता है। बताया भी जाय तो उसका दूसरों को क्या अनुभव होगा?

इति लीला-पद

卐

卐 प्रकीर्ण विभाग के कुछ पदों को छोड़कर बहुत से पद 'कुंभनदास' कृत प्रतीत नहीं होते। किसी विशेष शृंगार या प्रसंग के लिये प्रचलित पदों की तुक लेकर इनकी रचना की गई है। प्रस्तुत कारण और किसी विशेष भाव के द्योतक न होने से सं ३६३ से ४०१ तक पदों का सरल भावार्थ नहीं लिखा गया।

शरदुत्सव,
सं २०१०.

भावानुवादक,
पो कण्ठमणि शास्त्री

इति

श्रीकुंभनदास कृत

पद-संग्रह

तथा

सरल भावार्थ

स

मा

प्त

“ कुंभनदास कृत–पदसंग्रह ”

प्रतीक–अनुक्रमणिका

[१ प्रस्तुत अनुक्रमणिका में कोष्ठान्तर्गत प्रतीकें पाठान्तर की प्रतीकें है। प्रारंभिक रूपान्तर के परिचयार्थ उनका देना आवश्यक समझा गया है।

२ बड़े टाइप की प्रतीकवाले पद वार्तासे सम्बन्धित हैं, तदर्थ विद्याविभाग द्वारा प्रकाशित ‘ अष्टछाप ’ वार्ता [स १९९७ का संस्करण] देखी जा सकती है।

३ जिन प्रतीकों के आगे * चिन्ह और सख्या के स्थान पर शून्य दिया गया है, वे असम्बद्ध और अस्वाभाविक होनेसे प्रक्षिप्त हैं। संग्रह में उन्हें स्थान नहीं दिया गया है।]

※